कोठारीजी श्रीबलवन्तसिंहजी

भूतपूर्व प्रधान राज्य मेवाड़

का

जीवनचरित्र

लेखक तथा प्रकाशक

तेजसिंह कोठारी बी० ए०
सिटी तथा रेलवे मैजिस्ट्रेट और मैनेजर, स्टेट बैंक
उदयपुर

प्रस्तावनालेखक

महामहोपाध्याय, साहित्यवाचस्पति रायबहादुर
डा० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा
अजमेर

प्रथमबार १०००] October, 1939 [वि० सं० १९९६

कोठारीजी श्रीबलवन्तसिंहजी

(भूतपूर्व प्रधान राज्य मेवाड़ और मेम्बर राज श्रीमहद्राजसभा)

कोठारीजी श्रीबलवन्तसिंहजी

भूतपूर्व प्रधान राज्य मेवाड

का

जीवनचरित्र

हिज़ हाइनेस महाराजाधिराज महाराणाजी साहिब श्रीभूपालसिंहजी साहिब बहादुर जी० सी० एस० आई०, के० सी० आई० ई०
(राज्य मेवाड, उदयपुर)

समर्पण

मेवाड़नाथ के स्वामिभक्त सेवक स्वनामधन्य
स्वर्गस्थ पूज्य पितामह का जीवनचरित्र
उन्हीं के स्वामी एवं आधार

आर्य्य-कुल-कमल-दिवाकर महीमहेन्द्र मेदपाटेश्वर महा-
राजाधिराज महाराणाजी साहब श्रीभूपालसिंहजी
साहब बहादुर जी० सी० एस० आइ०,
के० सी० आइ० ई०
के कर कमलों में
सादर समर्पित ।

लेखक के दो शब्द ।

इस संसार में जो जन्म लेता है, वह एक दिन अवश्यमेव मरता है। अंतर केवलमात्र यही रह जाता है कि सामान्य प्राणी वास्तव में मर जाते हैं और महापुरुष अपने इस स्थूल शरीर से मरते हुए भी यशरूपी शरीर से नित्य अमर बने रहते हैं। ऐसे महापुरुषों को अमर बनाये रखने और उनके उज्ज्वल चरित्रों से संसार के समक्ष गौरवान्वित चरित्रचित्रण करते रहने के लिए केवलमात्र इतिहास ही एक ऐसा साधन है, जो उन्हें नित्य अमर बनाये रखता है और भावी जनसमुदाय के समक्ष ऐसे उत्तम उदाहरणों से उन्हें भी निरंतर उन्नत करता रहता है। यदि राम कृष्ण जैसे अवतार; राणा प्रताप, सांगा, शिवाजी जैसे अनुपम वीर; महाराणी पद्मिनी, अहल्या, मीराबाई जैसी आदर्शचरित्रा स्त्रियां, एवं महात्मा तुलसी, सूर, कबीर जैसे भक्त-जनों के चरित्र आज संसार के समक्ष विद्यमान न होते तो भारतवर्ष किन महापुरुषों के चरित्रों का अवलंबन ले अपने को धन्य मानता ?

सेवक-समुदाय के लिए स्वामी की तन, मन एवं धन से एक निश्चल भाव एवं अदम्य उत्साह के साथ सेवा करना ही परम धर्म है और इसी में उसका कल्याण है।

स्वर्गस्थ पूज्य पितामह में स्वामिभक्ति के अंकुर अनुपम थे और इन्हीं भावों को लेते हुए उन्होंने मुझे कई बार आज्ञा की कि अपने पूर्वज मेदपाटेश्वरों की सेवा में तत्पर रहे। इसी में अपना पूर्ण कल्याण माना।

भावी संतान इन सब बातों को भूल जायगी और कौनसा साधन रहेगा, जिससे वे मेदपाठेश्वरों की असीम कृपाओं से परिचित होंगे; अतः इसका कुछ वृत्तान्त ऐतिहासिक रूप में लिखा हुआ रह जाय, तो भावी संतान के लिए भी उन्नति का आश्रय हो और अपने धर्म को समझते हुए उनका भी परम कल्याण हो सके।

पूज्य पितामह की आज्ञानुसार इसकी खोज करने और कुछ वृत्तान्त तैयार करने की मेरी भी प्रबल इच्छा हुई; किन्तु इतिहास लिखना, पुस्तकें या लेख लिखना यह इतिहासवेत्ताओं, ग्रंथकारों एवं लेखकों का कार्य है। मेरे जैसा अल्पज्ञ व्यक्ति पूज्य पितामह एवं उनके पूर्वजों का वृत्तान्त लिखने में कैसे समर्थ हो सकता है। जिन पूज्य पितामह ने चार मेदपाठेश्वरों की अपूर्व भक्ति से सेवा की, अपने आपको नित्य अखंड धर्म पर स्थिर रक्खा, और स्वामिसेवा ही में अपना सब कुछ मान सेवा करते हुए पूर्ण स्वामिभक्ति का परिचय दिया, वीर कोठारी भीमजी ने असीम सेवाधर्म का परिचय देते हुए अपने स्वामी एवं देश के लिए अपने प्राणों को युद्ध की बलिवेदी पर न्योछावर किया, कोठारी चोहितजी एवं चतुर्भुजजी ने तत्कालीन मेदपाठेश्वरों की एकनिष्ठ स्वामिभक्ति से प्रधानपद पर रहकर सेवा बजाई, जिन कोठारी केशरीसिंहजी ने अनेक दुःखों के झकोरे खाने पर भी नित्य अपने सत्य पथ पर आरूढ रह स्वामिधर्म का पालन किया, उन्हीं के वंशज एवं सुपुत्र पूज्य पितामह कोठारीजी श्रीबलवन्तसिंहजी का जीवनवृत्तान्त अथवा जीवनचरित्र लिखना मेरी शक्ति से बाहर है। परम पिता परमात्मा की भक्ति के अधिकारी बड़े बड़े संत महात्मा ही हो सकते हैं किन्तु अपनी अपनी भावना और सामर्थ्यानुसार छोटे से छोटा भक्त कैसा ही क्षुद्रातिक्षुद्र क्यों न हो पत्र, पुष्प, जल इत्यादि से वह सेवा में लगा रहता है और परमात्मा दया कर उसकी सेवा स्वीकार करते हैं।

उन्हीं भावों को लेकर पुष्प की जगह एक पाँखरी मानते हुए भी यदि पूज्य पितामह जैसे स्वात्माभिमानी एवं स्वामिभक्त सेवक के जीवन वृत्तान्त को पढ़कर पाठकगण रोचकता प्रदर्शित कर सकें, मेदपाठेश्वरों के सत्य गुणगान करने में मुझे कुछ भी सफलता प्राप्त हुई और जिन पूज्य पितामह का अपूर्व ऋण मुझ पर होते हुए उनकी कुछ भी सेवा इस वृत्तान्त के लिखने से हो सके एवं भावी संतानों को भी ऐसे सचरित्र के पठन, श्रवण एवं मनन से किसी भी अंश में लाभ हो और वे पूर्वजों के समान सदा मेदपाठेश्वरों के स्वामिभक्त सेवक बने रहकर धर्मपथ पर दृढ रह अपने इहलोक और परलोक सुधारने में सहायता ले सकें तो मैं अपने आपको कृतकृत्य मानूँगा।

पूज्य पितामह की आज्ञानुसार मैंने इस वृत्तान्त को लिखने की पाँच सात वर्षों से इच्छा की, कुछ सामग्री इकट्ठी भी की किन्तु आलस्य एवं मेरे भाग्य दोष से वह इच्छा अब तक पूर्ण न हो सकी। पूज्य पितामह के स्वर्गवास पर इस इच्छा ने मेरे मनमन्दिर में प्रबल आग्रह किया और आलस्य के लिए मेरी आत्मा ने मुझे बहुत झिड़का। अत: इन गत महीनों में जहा तक हो सका, मैंने इसे शीघ्र समाप्त करने का प्रयत्न किया। पूर्व का इतिहास प्रायः अंधकार में था किन्तु वीरविनोद, रायबहादुर गौरीशंकरजी हीराचन्दजी ओझा कृत उदयपुर राज्य का इतिहास, गुरजा की ख्यात, ओसवाल इतिहास एवं पूज्य पितामह के बनवाये हुए फुटकर नोटों से इसके संकलन में बड़ी सहायता मिली। अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार मैंने पूज्य पितामह का जीवनचरित्र, पूज्य पितामह के पूर्वज एवं वंशजों के वृत्तान्त सहित आप सज्जनों के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है।

इस पुस्तक को पाच परिच्छेदों में विभक्त किया है। पहले परिच्छेद में पूज्य प्रपितामह कोठारी केशरीसिंहजी से पूर्व का संक्षिप्त वृत्तान्त, जो

उपलब्ध हो सका, दिया गया है। दूसरे परिच्छेद में कोठारी केशरीसिंहजी की जीवनी दी है, और तीसरे परिच्छेद में हमारे चरित्रनायक के जीवनचरित्र को पाठकों के समक्ष रक्खा है। चतुर्थ में पूज्य पिताश्री गिरधारीसिंहजी की जीवनी पर प्रकाश डाला है, और पाँचवें परिच्छेद में कोठारीजी के निजी रिश्तेदार, स्नेही, मित्र एवं मुख्य संबन्धियों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

इस जीवनचरित्र के लिखने में मेरा मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि पूर्वजों के एवं पूज्य पितामह के जीवन की घटनाओं का इसमें संक्षिप्त रूप से समावेश हो जाय, स्वामिभक्ति के बीज सदा इस वंश में विद्यमान रहें और पूर्वजों के चरित्रों का मनन एवं अनुकरण करते हुए भावी संतान भी सुमार्गगामी हो। मैं एक अपूर्ण हूँ। मैं न लेखक हूँ, न कवि, न विद्वान् और न ग्रंथकार। मैं केवलमात्र मेदपाटेश्वरों का एक छोटे से छोटा सेवक एवं पूज्य पितामह का चिर ऋणी पौत्र हूँ। त्रुटियों का रहना निश्चित है। यदि पाठकों में से किसी के भी चित्त को इसके श्रवण, मनन एवं पठन से किसी भी अंश में आघात पहुँचे तो मैं प्रथम ही उनसे क्षमाप्रार्थी हूँ। आशा है, उदारहृदय पाठक मुझको क्षमा करेंगे। यह भी पाठकों से विनय कर देना आवश्यक है कि मेरे लिखने में कोई वास्तविक त्रुटि एवं ऐतिहासिक दृष्टि से भिन्नता दृष्टिगोचर हो तो कृपया वे मुझे सप्रमाण सूचित करें ताकि इसके द्वितीय संस्करण में सारासार का निर्णय कर शोधन कर दिया जाय।

अन्त में उन ग्रन्थकर्ताओं का जिनके ग्रन्थ मुझे इसके निर्माण में आधारभूत हुए, जिन जिन सज्जनों से इसमें परामर्श एवं सहायता मिली, और जिन्होंने अपने अमूल्य समय को देकर इसमें सहयोग दिया, जिन मेदपाटेश्वरों वर्तमान महाराजाधिराज महाराणा साहब श्रीभूपालसिंहजी साहब बहादुर G C. S I; K. C. I. E. की

असीम कृपा से इसका निर्माण हो सका, एवं समर्पण स्वीकार फरमाया, परमपितृभक्त पूज्य पिताश्री ने इसमें सहयोग तथा स्वीकृति दी, और महामहोपाध्याय रायबहादुर साहित्यवाचस्पति डाक्टर गौरीशंकरजी हीराचन्द्रजी ओझा ने अपना अमूल्य समय देकर इस पुस्तक का अवलोकन कर प्रस्तावना लिखने का कष्ट किया, उनके प्रति हार्दिक धन्यवाद अर्पण करते हुए मैं नित्य कृतज्ञ रहूँगा। साथ ही कुँवर तेजसिंहजी महता दीवान रियासत मेवाड, पुरोहित देवनाथजी दरबारप्रबन्धक (Master of Ceremony) और खेमपुर ठाकुर दधिवाडिया करनीदानजी जिन्होंने इस पुस्तक के कितनेक स्थान पर संशोधन आदि में योग दिया, एवं चित्तौड निवासी घीसुलालजी सेठिया जिन्होंने प्रेसकापी तैयार कराने आदि कार्यों में सहायता दी, और मेरे परममित्र लाहौर निवासी सेठ खजाचीरामजी जैन ने स्नेह प्रदर्शित करते हुए पुस्तक को सुन्दर बनाने एवं छपाई आदि में अत्यधिक परिश्रम लिया है; उन सब का अनुगृहीत होते हुए नामोल्लेख करना आवश्यक समझता हूँ।

उदयपुर
चैत्र कृष्णा ११ शुक्रवार
वि० संवत् १९९५

विनीत
तेजसिंह कोठारी

प्रस्तावना

महान् पुरुषों की जीवनियाँ इतिहास का अंग हैं। उसी की भित्ति पर इतिहास का निर्माण होता है। महत् पुरुषो की जीवनियो के अध्ययन से मानवी जीवन पर अच्छा प्रभाव पडता है और चरित्र-निर्माण में सहायता मिलती है। भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से विद्वान् और योग्य व्यक्ति होते आये हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश उनके जीवन की घटनाओ को सग्रह कर उनके चरित्र-लेखन की ओर बहुत कम प्रयत्न हुआ है, जिससे कई अशो में यहाँ का इतिहास अपूर्ण मिलता है और उनके नाम भी लोग भूलते जाते हैं।

राजपूताना वीर पुरुषो की जन्मभूमि है। यहाँ के शासक वीर और स्वतंत्रता-प्रेमी हुए हैं, जिनकी अमर गाथाओ से यहाँ का इतिहास परिपूर्ण है। यहाँ और भी कितने ही व्यक्ति ऐसे हुए हैं, जिन्होंने देश की बड़ी सेवाएँ की हैं। यह सचमुच दुःख का विषय है कि उनकी सेवाओ और महान् कार्यों का बहुत ही कम उल्लेख मिलता है। इसका अधिकाश दोष उनके उत्तराधिकारियों पर ही है, जिनकी शिथिलता और अकर्मण्यता के फलस्वरूप उनके गौरवशाली पूर्वजों की कीर्ति अब तक अप्रकाशित है।

उदयपुर राज्य के मंत्रियों में ब्राह्मण, वैश्य और कायस्थ जातियो की प्रधानता रही है, परन्तु उनमें से केवल थोड़े व्यक्तियो के नाम ही सुने जाते हैं। इनमें ओसवाल जाति के कोठारी केसरीसिंह का वश उदयपुर के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस वंश का प्राचीन इतिहास अधकार में विलीन है। उन्नीसवीं शताब्दी में यह वंश बिलकुल अवनति को प्राप्त हो गया था, परन्तु कोठारी केसरीसिंह जैसे कर्मठ व्यक्ति ने उक्त वंश का पुनरुत्थान किया। यह प्रारम में बड़ा सामान्य व्यक्ति था और सीमित आय से किसी प्रकार जीवन व्यतीत करता था। उसकी सचाई और कार्यतत्परता से उसके भाग्य ने एक बार ही पलटा खाया और विक्रम संवत् १८६८ (ईस्वी संवत् १८४१) में महाराणा स्वरूपसिंह के गद्दीनशीन होते ही यह उसका विश्वासपात्र बन गया। उस समय

राज्य ऋण-ग्रस्त था एवं सरदारों के ख़िराज का बखेड़ा भी चल रहा था, जिससे महाराणा को पूरी चिन्ता थी। ऐसे समय में महाराणा को राज्य-प्रबन्ध सुधारने की इच्छा हुई। उसने महता रामसिंह को, जिसने महाराणा सरदारसिंह और स्वरूपसिंह को मेवाड़ का स्वामी बनाने में पूरी सहायता दी थी, प्रधान पद से हटाकर महता शेरसिंह को अपना प्रधान बनाया, जो बच्छावत महता अगरचन्द का पौत्र और प्रबन्धकुशल व्यक्ति था। वह महाराणा भीमसिंह और जवानसिंह के समय प्रधान मंत्री के पद पर रह चुका था, इसलिए उसको इस महत्त्वपूर्ण पद के उत्तरदायित्व का पूरा अनुभव था। उसने महाराणा की इच्छानुसार मन्त्री होते ही क़र्जदारों का फ़ैसला करवा दिया और ऐसी व्यवस्था की कि शीघ्र ही राज्यकोष धन से परिपूर्ण हो गया। वस्तुतः उस समय राज्य की आर्थिक स्थिति सुधारने के विषय में जो प्रबन्ध किया गया, उसमें कोठारी केसरीसिंह का भी हाथ था और अर्थसम्बन्धी मामलों में अधिकतर उक्त महाराणा उसकी ही सलाह पर चलता था क्योंकि वह उसका निजी सलाहकार था।

महाराणा के इस नवीन प्रबन्ध में कोठारी केसरीसिंह की पदोन्नति की गई। राज्यकोष का प्रबन्ध उसके ज्येष्ठ भ्राता छगनलाल को और टकसाल का तथा चुंगी एवं कुछ परगनों का प्रबन्ध केसरीसिंह को सौंपा गया। महाराणा व्यवसाय द्वारा राजकीय निधि बढ़ाना चाहता था, अतएव शेरसिंह की राय से स्टेट बैंक (सरकारी दुकान) स्थापित किया गया, जिसका अध्यक्ष भी केसरीसिंह हुआ। उस (केसरीसिंह) ने इन दायित्वपूर्ण पदों का कार्य बड़ी योग्यता और ईमानदारी से किया। उसकी सत्यवादिता और कर्तव्यपरायणता का महाराणा पर पूरा प्रभाव पड़ा और प्रतिदिन उस पर उसका विश्वास बढ़ता गया। फलतः थोड़े समय में ही उसे महाराणा की तरफ़ से जागीर मिल गई। उसकी निष्कपट स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर उक्त महाराणा ने विक्रम संवत् १९१६ (ईस्वी सं० १८५९) में उसको महता गोकुलचन्द्र के स्थान में प्रधान मंत्री बनाया और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाकर जागीर में भी अच्छी वृद्धि की।

प्रधान मंत्री का पद बड़ा दायित्वपूर्ण होता है। उसे एक साथ ही महाराणा, पोलिटिकल आफ़िसरों, सरदारों और प्रजा की प्रसन्नता का ध्यान रखना पड़ता है। केसरीसिंह ने इन चारों बातों को लक्ष्य में रखकर अपनी कार्यशैली निश्चित की और सदा निर्भीकता का परिचय दिया, जिससे उसके कई शत्रु भी पैदा हो गये परन्तु उसने अपने सुपुर्द किये हुए कार्य में किसी प्रकार की कमी नहीं आने दी। महाराणा स्वरूपसिंह का परलोकवास होने पर उसके दत्तक

पुन महाराणा शभुसिंह की बाल्यावस्था के कारण रीजेन्सी कौंसिल के समय स्वार्थी लोगो ने लाभ उठाना चाहा। इस बात को केसरीसिंह ने सहन नहीं किया और जबरदस्त विरोध किया, जिस पर उसके विरोधियो ने उस पर मिथ्या दोष लगाकर उसको गिराने का प्रयत्न किया। उस समय उसको प्रधान मत्री के पद से पृथक् कर निर्वासित भी कर दिया गया, परन्तु उसकी सच्चाई ने सदा उसका साथ दिया और अन्त में सारे अभियोग मिथ्या प्रमाणित हुए, एव उसको पुन पहले की सी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

कोठारी केसरीसिंह को पुन॰ प्रधान मत्री के पद पर नियुक्त हुए थोड़ा ही समय हुआ था कि *वि॰ सं॰ १९२५, ई॰ सन् १८६८ में राजपूताने में भीषण अकाल* पड़ा। उस समय उसके उत्तम प्रबध की सर्वत्र प्रशसा हुई। महाराणा स्वरूपसिंह के समय में सरदारो का बखेड़ा आरम्भ हुआ, जो उत्तरोत्तर बढता ही गया परन्तु केसरीसिंह के प्रयत्न से सब सरदार शान्त होकर राजभक्त बने रहे। शासन विभाग में नवीन परिपाटी का आरभ एव महकमाखास की स्थापना भी उसके समय में ही हुई। उसने सारे मेवाड में नाज के बजाय हासिल नकद लेने का प्रबन्ध किया, जो कई वर्षों तक उसके पीछे भी चलता रहा। महाराणा शभुसिंह की भी केसरीसिंह पर पूरी कृपा रही। उक्त महाराणा ने कुछ लोगों के बहकाने से केसरीसिंह से दड लेना चाहा। *यद्यपि वह निरपराध था तो भी महाराणा* की आज्ञा का पालन कर उसने दड की रकम भर दी। इसका उक्त महाराणा पर अच्छा प्रभाव पडा।

केसरीसिंह यद्यपि जैनधर्मावलबी था तथापि उदयपुर के महाराणाओ के उपास्य देव 'शिव' होने के कारण उसकी शैव धर्म के प्रति भी भावना बढी। उसके तथा उसके ज्येष्ठ भ्राता छगनलाल के कोई पुत्र न था। इसलिए उसने अपने कुटुम्बियो में से बलवतसिंह को दत्तक ले लिया। वि॰ स॰ १९२८ मे केसरीसिंह की मृत्यु हुई।

*कोठारी बलवन्तसिंह का जन्म भी साधारण घर में हुआ था और विद्या*ध्ययन भी साधारण ही था, परन्तु वह होनहार और प्रतिभाशाली था। इसलिए उस पर भी महाराणा शभुसिंह की कृपा केसरीसिंह के समान ही रही और छगनलाल उसका अभिभावक *बनाया गया, जो सरल प्रकृति और बुद्धिमान् था।* हिन्दी का आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त वह राज्यसेवा में प्रविष्ट हुआ। उसको उन्नति के आसन पर स्थित करने का श्रेय स्वर्गवासी महामहोपाध्याय

कविराजा श्यामलदास को है, जिसका महाराणा सज्जनसिंह पर पूरा प्रभाव था। बलवन्तसिंह ने छोटे अहलकार के पद से कार्य आरंभ कर क्रमशः हर एक सीगे की थोड़े समय में ही अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली। महाराणा सज्जनसिंह की भी कृपा उस पर उत्तरोत्तर बढ़ती गई। यथा अवसर उसे हाकिम ज़िला, पुलिस, फ़ौजदारी, चुंगी आदि के दायित्वपूर्ण पद सौंपे गये, जिनका कार्य उसने भली प्रकार किया। इससे उसके अनुभव में वृद्धि तो हुई ही, साथ ही उसका मानसिक विकास भी हुआ। फिर महाराणा ने देवस्थान का पृथक् महकमा स्थापित कर उसे उसका अधिकारी नियत किया। वि० सं० १९३८ (ई० सं० १८८१) में उक्त महाराणा को अंग्रेज़ सरकार की ओर से जी० सी० एस० आई० का तमग़ा मिलने का चित्तौड़ में बृहद् दरबार हुआ और स्वयं लार्ड रिपन ने आकर वह तमग़ा महाराणा को भेंट किया। इस दरबार का अधिकांश प्रबन्ध बलवन्तसिंह के निरीक्षण में हुआ था।

महाराणा फ़तहसिंह के प्रारंभिक समय में दस वर्ष तक प्रधान पद पर राय महता पन्नालाल सी० आई० ई० रहा, जो बड़ा ही कार्यदक्ष व्यक्ति था। उसके छः मास के लिए छुट्टी जाने पर उसके स्थान में कोठारी बलवन्तसिंह और सहीवाला अर्जुनसिंह नियत किये गये, पर महाराणा ने सारा कार्य अपने हाथ में रक्खा और उसके दोनों मंत्री केवल सलाहकार ही रहे। अर्जुनसिंह भी पूर्ण अनुभवी व्यक्ति था, परन्तु उसकी अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण प्रधान मंत्री के पद का अधिकांश उत्तरदायित्व बलवन्तसिंह पर ही रहा। महाराणा फ़तहसिंह प्राचीन विचार का प्रेमी और मंत्रियों के हाथ की कठपुतली बनकर शासन करने वाला राजा न था। वह प्रत्येक कार्य मनोयोग और पूरी छानबीन पूर्वक करता था। सुयोग से उसको बलवन्तसिंह जैसा आदमी मिल गया, जो उक्त महाराणा की प्रकृति के अनुरूप पूरी जाँच-पड़ताल के बाद ही अपना मन्तव्य प्रकट कर उत्तरदायित्व का भली प्रकार पालन करता था। वह कोई ऐसा कार्य अपने हाथ से नहीं करता, जो महाराणा की इच्छा के प्रतिकूल हो और उसके विरोधियों को आवाज़ उठाने का मौका मिले। उसने समय समय पर सौंपे जाने वाले सारे महत्त्व के कार्यों को बड़ी उत्तमता से सम्पन्न किया।

दस वर्ष तक कोठारी बलवन्तसिंह और सहीवाला अर्जुनसिंह ने प्रधान मंत्री का कार्य किया। फिर बलवन्तसिंह ने स्वास्थ्य की ख़राबी और अर्जुनसिंह ने वृद्धावस्था के कारण त्यागपत्र दे दिया, जिनको महाराणा ने स्वीकार कर लिया पर कुछ ही समय बाद फिर प्रधान मंत्री के पद का कार्य उसे ही करना

पड़ा। महाराणा फतहसिंह ने अपनी गद्दीनशीनी के प्रारंभिक काल मे उसको महद्राजसभा का सदस्य नियत किया था और देवस्थान के महकमे के अतिरिक्त सरकारी दुकान का प्रबन्ध भी उसको सौंपा था तथा शिक्षाविभाग की कमेटी का वह एक सदस्य नियत किया गया। वि० सं० १९७२ से सं० १९८६ तक उसके सुपुर्द केवल स्टेट बैंक का ही कार्य रहा।

वि० सं० १९८७ में महाराणा फतहसिंह का देहान्त हो जाने पर उसके युवराज महाराजकुमार श्रीभूपालसिंहजी राज्यासीन हुए। इन्होंने बलवन्तसिंह को पुराने जटिल मुकद्दमों को, जो भूतपूर्व महाराणा के समय से चले आते थे, फैसला करने के लिए महद्राजसभा के स्पेशल इजलास का सदस्य नियत किया। इस कार्य को वह मृत्यु के कुछ समय पूर्व तक करता रहा। वर्तमान महाराणा साहब भी उससे सदा प्रसन्न रहे और उसको ताजीम का सम्मान प्रदान किया।

कोठारी बलवन्तसिंह प्राचीन संस्कृति का उपासक था। हिन्दी और उर्दू का उसे अच्छा ज्ञान था और अंग्रेजी का कुछ अध्ययन उसने मेरे पास किया था। आधुनिक शिक्षापद्धति को वह हितकर न समझता था। जैनधर्म मे साधु सम्प्रदाय का पक्का अनुयायी होने पर भी शैव धर्म के प्रति भी उसकी पूरी आस्था थी। आहाड के समीप प्राचीन गंगोद्भव नामक स्थान के जीर्णोद्धार कराने मे उसका पूरा हाथ रहा, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह आजीवन पर्यन्त राजभक्त बना रहा और उसने वर्षों तक कई महत्त्वपूर्ण पदों पर अवैतनिक रूप से काम किया। वह बड़ा विवेकशील और गंभीर पुरुष था। खानपान, छुआछूत आदि का वह पूरा ध्यान रखता था। उसका आचरण शुद्ध था और वह कभी कोई ऐसा कार्य नहीं करता था, जो लोक, समाज एवं संस्कृति के प्रतिकूल हो। प्राचीन शासन-पद्धति का पक्का अनुयायी होने पर भी समाज हितकारी कार्यों मे सदा आगे रहता था। उसने उदयपुर के ओसवालों के विधवा फंड, स्थानकवासी स्कूल एवं जीवदयाप्रसारक कार्यों में समय समय पर पूरी सहायता दी थी। यह अवश्य कहा जा सकता है कि वह रूढ़िवाद का भक्त था और उसके समय मे शासनशैली प्राचीन ही रही तो भी निर्धन मेवाड़वासियों पर किसी प्रकार का कर नहीं लगा।

बाहर के बड़े बड़े व्यक्तियों से उसकी मित्रता थी। उसके चेहरे से रोब टपकता था। उसने अपनी बम्बई यात्रा के समय भारत के महान् नेता महात्मा

गांधी से भी मुलाकात की थी और स्वर्गीय सर प्रभाशंकर पट्टनी जैसे प्रखर राजनीतिज्ञ ने भी भावनगर की यात्रा के समय उसका वड़ा आदर किया था।

उसके एक पुत्र गिरधारीसिंह, तीन पौत्र और एक प्रपौत्र है। गिरधारीसिंह मेवाड़ में कई ज़िलों का हाकिम रह चुका है और इस समय उदयपुर में गिरवा ज़िले का हाकिम और महद्राजसभा का सदस्य है। तीन पौत्रों में से तेजसिंह बी० ए० सिटी मैजिस्ट्रेट और स्टेट बैंक (सरकारी दुकान) का मैनेजर है। शेष की अवस्था अभी छोटी है।

स्वर्गीय कोठारी बलवन्तसिंह का यह सविस्तर चरित्र तेजसिंह ने लिखा है। इसमें उसके जीवन की अधिकांश घटनाओं का उल्लेख किया गया है, जिनमें कुछ गृहकलह की घटनाओं और मेवाड़ के इतिहाससम्बन्धी बातों का भी समावेश है। उनको अवलोकन करने से पाया जाता है कि उसकी हत्या करने का भी प्रयत्न किया गया था। इन आपत्तियों को उसने धैर्य के साथ सहकर कष्टसहिष्णुता का परिचय दिया था। उसके मुख से निकले हुए शब्द सदा नपे तुले होते थे और वह जो कार्य करता था, पूर्ण सोच विचार के साथ करता था, जिसमें कभी किसी को ऐतराज़ करने की गुंजाइश न होती थी। कुछ लोग उसके विचार संकुचित मनोवृत्ति के बतलाते हैं और कहा करते हैं कि उस समय शासनकार्य बहुत पिछड़ गया था परन्तु इसका कारण कार्य की अधिकता थी। उसका शरीर सुदृढ़ और मुखमुद्रा गंभीर थी। यद्यपि उसके मंत्रित्व काल में शासन कार्य में उत्तरदायित्वपूर्ण शासनप्रणाली का आभास किञ्चित् भी नहीं था तो भी मेवाड़ की प्रजा का उस पर पूरा विश्वास था।

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि कोठारी बलवन्तसिंह के सुयोग्य पौत्र तेजसिंह ने अपने अनेकगुणसम्पन्न पितामह की यह जीवनी प्रकाशित कर श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।

अजमेर
शीतलासप्तमी सं० १९९५

विषयसूची

पहला परिच्छेद

दूसरा परिच्छेद

तीसरा परिच्छेद

पृष्ठ

पृष्ठ

चौथा परिच्छेद

पृष्ठ

कोठारीजी की संतति

पाँचवाँ परिच्छेद

चित्र-सूची

पहला परिच्छेद

ऐसी प्रसिद्धि है कि प्राचीन काल में राठौरवंशी आमोलनाथ नाम का राजा राज्य करता था। उसका प्रपौत्र युवनाश्व नाम का राजा हुआ। एक दिन युवनाश्व जंगल में शिकार खेलने के लिये बहुत दूर निकल गया। फौज व साथी लोग सब पीछे रह गये और सूर्यास्त हो गया। जंगल में जाते जाते राजा को अचानक एक ऋषीश्वर के दर्शन हुए। राजा ऋषीश्वर के पास गया। उसे सम्मुख आया देख ऋषीश्वर ने कहा कि हे युवनाश्व, आओ। ऋषि के मुख से अपना नाम सुन राजा को ऋषि चमत्कारी मालूम हुए। क्योंकि पूर्व की जान पहचान के बिना सहसा राजा को उसके नाम से सम्बोधित किया गया था। रात्रि भर राजा वहीं पर रहा। राजा के विनयादि गुणों से प्रसन्न होकर महात्मा ने उसे पुत्रोत्पत्ति का वरदान दिया। वरदान प्राप्त कर राजा घर लौट आया। समय पूर्ण होने पर ऋषि के वर से राजा युवनाश्व के पुत्रोत्पत्ति हुई।

कोठारी वंश की उत्पत्ति।

युवनाश्व की दसवीं पीढी में पाडुसेन नाम का एक महाप्रतापी राजा हुआ। उन दिनों इनकी राजधानी मथुरा में थी। अशुभ कर्मों के उदय से राजा को गलित कुष्ठ की प्रबल वेदना हुई। दौरान वि० सं० १००१ में भट्टारक धनेश्वर सूरिजी विचरते हुए मथुरा में पधारे। राजा सपरिवार मुनि के दर्शनार्थ गया और धर्मोपदेश श्रवण कर अपनी असह्य गलित-कुष्ठ-वेदना की निवृत्ति के लिये मुनिराज से प्रार्थना की। मुनि के आशीर्वाद से उनका दारुण कष्ट दूर हो गया। अन गोडगढ देश के नागानेडा गाँव मे राजा की इच्छानुसार मुनिश्री ने वि० सं० १००१ मे उसे जैन धर्म अंगीकार कराया और ओसवाल जाति मे सम्मिलित किया। वहां पर उन्होंने भगवान ऋषभदेव का देवालय बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा भट्टारक शान्तिसूरीश्वर द्वारा करवाई। उसी समय से ऋषभ गोत्र की उत्पत्ति हुई और इसके साथ ही साथ स्थान स्थान पर श्रीऋषभदेवजी की सेवा सामग्री व संरक्षण के लिये कोठार स्थापित किये गये। इससे इनका उपटंक कोठारी हुआ। इन्हीं कारणों से इनकी कुलदेवी अम्बिका का पूजन आश्विन और चैत्र शुक्ला ६ को नौ नैरत में होना प्रारम्भ हुआ[1]। संवाटी

---

1 अब पूजन विधि आश्विन व चैत्र शुक्ला १० को होता है।

सोनियाना जो नाणावेड़ा के पास ही में है वहां के क्षेत्रपाल भैरव की मान्यता मानी जाती है तथा वैशाख और माघ शुक्ला ५ के दिन रात्रि-जागरण किया जाकर निम्न पद्यात्मक कहावत कही जाती है जो अब तक कोठारियों में प्रसिद्ध है।

विछिया दांतज वलिया। घोडा घूंघर माल।
रेंट्यो चरख्यो ना फिरे। वाजो सब ही टाल ॥१॥

इसके अतिरिक्त पीलिया, पालना व मकोडावाली सांकल घर की वनवाने की रोक होने से प्रायः पीहर से बनवाई जाती है। इन रुकावटों के लिये ऐसी दंत-कथा प्रसिद्ध है कि जैन-धर्म अंगीकार करने पर बलिदान वंद कर कुलदेवी के प्रसादनार्थ यह रोक निज वंश में प्रचलित की गई है।

प्रायः वहुत-सा पूर्व का इतिहास अंधकार में पाया जाता है। उससे यह वंश भी वंचित नहीं है। न साल संवत् का ही संतोपजनक पूरा पता मिलता है। ऐसी स्थिति में प्राचीन इतिहास के विषय में विशेष गहरे न उतर जो कुछ वृत्तान्त उपलब्ध हो सका, उसी के अनुसार यहां पर कुछ लिखा जाता है।

राजा पांडुसेन से लेकर उन्नीस पीढ़ी तक तो राज्योपभोग किया। वीसवीं पीढ़ी में कोठारी मालणसीजी हुए। उन्होंने शाह पद प्राप्त किया।

मालणसीजी के तृतीय पुत्र का नाम तिहुणाजी था। इन्होंने विक्रमसंवत् १३२४ में सोलह गाँवों में मंदिर वनवा भट्टारक शान्तिसूरीश्वरजी से प्रतिष्ठा करवाई और (बिम्व) प्रतिमाएँ स्थापित कीं। जिन जिन गाँवों में मंदिर बनवाये, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ जोयणगांव २ फलोदी ३ मंडोवर ४ मोथराजी ५ मलस्यावावड़ी ६ नाडोल ७ जालोर ८ मेडता ९ कुंभलमेर १० खंडवा ११ वाणारसी १२ पांड़ीव १३ नादेसमा १४ पुर १५ चित्रकोट १६ नाणावेड़ा।

चोहितजी का प्रधान वनाये जाना।

उन्हीं मथुरा के राजा पांडुसेन की छब्बीसवीं पीढ़ी में कोठारी दीपाजी की भार्या चापलदेवी से खेताजी एवं चोहितजी नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। यही चोहितजी महाराणा कुंभाजी के समय कुम्भलगढ़ में, जो मेवाड़ की राजधानी थी, प्रधान पद पर नियुक्त हुए किन्तु महाराणा कुंभाजी के समय मे ही ये कुम्भलगढ़ से मेरते चले आये और वहीं बस गये। मेरते मे इन्होंने श्री धर्मनाथजी का मंदिर वनवा वि० सं० १५५४ में इसकी प्रतिष्ठा भट्टारक शान्तिसूरीश्वरजी से करवाई। साथ में वाग, वावड़ी और माताजी का देवालय भी वनवाया। उन्हीं चोहितजी के पुत्र

महाराणाजी श्रीकुम्भाजी (कुम्भकर्ण)
(इनके राजत्व में कोठारी चोहितजी ने कुम्भलगढ़ में प्रधाना किया)

महाराणाजी श्रीसंग्रामसिंहजी (द्वितीय)
(इनके समय कोठारी भीमजी ने युद्ध की वलिवेदी पर
अपने प्राण न्योछावर किये)

प्रसिद्ध रणधीरजी हुए। उन्हीं के समय से कोठारी शब्द के साथ रनधीरोत विशेषण लगा अर्थात् रनधीरोत कोठारी कहे जाने लगे।

इधर खेताजी के पुत्र ऊदाजी की भार्या नाथीदेवी से चार पुत्र—अम्बाजी, लखाजी, चापोजी, चोलाजी—हुए। कोठारी चोलाजी मेरते से राठोड कुपाजी के साथ खोड आये। कोठारी चोलाजी के चार पुत्रों में से माडनजी सवत् १६१३ मे मारवाड के राठोड कुपाजी की बेटी के साथ, जो महाराणा उदयसिंहजी को व्याही थी, दहेज में आये। स० १६७७ में उक्त महाराणा ने डहलाणा नामक एक गाँव जागीर में दिया, जो सवत् १६५३ में महाराणा अमरसिंहजी प्रथम ने वापिस ले लिया। किन्तु महाराणा जगत्सिंहजी प्रथम ने यह गाँव (डहलाणा) और इसके साथ आसाहोली नामक एक और गाँव जागीर में प्रदान किया।

कोठारी माडनजी के पुत्र मेरूदासजी और मेरूदासजी के ४ पुत्र—दूदाजी, दुर्जनसालजी, वेरीसालजी व ईसरजी हुए। इनका विशेष वृत्तान्त अज्ञात है। ज्येष्ठ पुत्र दूदाजी के तीन पुत्र—खेमराजजी, हेमराजजी और शोभाचद्रजी हुए। इनमें से खेमराजजी और हेमराजजी को महाराणा सग्रामसिंहजी द्वितीय ने अपने राज्य-काल में हाथी का सम्मान प्रदान किया। कोठारी खेमराजजी के दो पुत्र—भीमजी व रूपजी हुए। इनमें से भीमजी का वृत्तान्त विशेष उल्लेखनीय है।

भीमजी की आदर्श वीरता एवम् स्वामिभक्ति।

कोठारी भीमजी को महाराणा अमरसिंहजी ने अपने निजी कामकाज पर अपने पास रक्खा। महाराणा सग्रामसिंहजी द्वितीय की भीमजी पर इतनी विशेष कृपा थी कि वे उनको सदा अपना मुख्य एव पूर्ण विश्वस्त सेवक समझते थे, तथा फ़ौजबख्शी का काम भी इन्हीं के सुपुर्द किया। महाराणा सग्रामसिंहजी द्वितीय के समय वेगू के रावत देवीसिंहजी के साथ भीमजी की घनिष्ठ मित्रता थी, और महाराणा का वेगू रावतजी पर पूर्ण विश्वास था। जब भी कोई राजकीय जटिल समस्या उपस्थित होती, तो महाराणा उसका भार वेगू रावतजी व कोठारीजी पर छोड दिया करते थे। इन्हीं महाराणा के शासनकाल में मुग़ल-सम्राट् औरगज़ेब की मृत्यु हो गई। औरगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् महाराणाजी श्री अमरसिंहजी द्वितीय ने माडल, पुर आदि परगनों पर अधिकार कर लिया था परन्तु वज़ीर ज़ुलफ़ीकारख़ा ने जो हिंदू राजाओं का कट्टर विरोधी था, शाहज़ादा अज़ीमुश्शान के विरोध करने पर भी पुर, माडल, वग़ैरह परगने मेवाती रणबाज़ख़ा को और माडलगढ का परगना नागोर के राव इन्द्रसिंह को जागीर में दिलवा दिया। शाहज़ादा मुइज़ुद्दीन और वज़ीर ज़ुलफ़ीकारख़ा के उत्साहित करने से रणबाज़ख़ा शाही सेना की सहायता लेकर इन

परगनों पर अधिकार करने के लिये रवाना हो गया। उसके साथ हाथी घोड़े पैदल आदि असंख्य सैन्यदल था। जब इस आक्रमण का समाचार महाराणा को मिला तो वे चिन्तित हुए। और उन्होंने शीघ्र ही यह निश्चय किया कि वेगूं रावत देवीसिंहजी इस कार्य के लिये नितान्त उपयुक्त हैं। यद्यपि असंख्य रिपुदल के सामने राजपूत मुट्ठी भर थे, तथापि वेगूं रावतजी को भेजना निश्चित हुआ। आज्ञा पाकर उसी क्षण रावतजी सेना सजा युद्ध में जाने की तैयारी करने लगे। अकस्मात् रावतजी को उसी रात बड़े ज़ोरों से ज्वर हो आया। और उनकी हालत प्रातःकाल युद्धक्षेत्र में जाने की न रही। अतः उन्होंने अपने विश्वासपात्र कोठारीजी को बुलवाया और कहा—वीर कोठारीजी! इस समय ज्वर हो आने के कारण मेरी हालत युद्ध-क्षेत्र में जाने के लायक नहीं है। अतः प्रातःकाल ही आप मेरे स्थान पर सैन्यदल को ले युद्ध-क्षेत्र में जाइये और विजयी होकर लौटिये। कोठारीजी बिना किसी हिचकिचाहट के युद्ध क्षेत्र में जाने के लिये तैयार हो गये, और रावतजी को कहा कि आप निश्चिंत रहिये। मेवाड़ तो मेरी भी मातृ-भूमि है। इस पर मुग़लों का आक्रमण मैं भी कैसे देख सकता हूँ। प्रातःकाल होने पर कोठारीजी महलों में गये तो महाराणा ने इतने तड़के हाज़िर होने का कारण पूछा। कोठारीजी ने कहा—नाथ! रावतजी को ज़ोरों से ज्वर चढ़ रहा है। अतः उनके स्थान पर सेवक युद्ध पर जा रहा है। इस पर महाराणा ने कहा—"कोठारीजी, शाबाश! बहुत अच्छी बात है। युद्ध मे जाओ और शत्रु का मान मर्दन कर विजयी हो शीघ्र लौटो"। तब भीमजी स्वामी से विदा ले रवाना होने लगे। उस समय वहां बहुत से राजपूत सरदार व योद्धा खड़े खड़े वार्तालाप कर रहे थे। उनमें से एक ने कोठारीजी को कहा कि आप युद्ध मे तो जा रहे हैं किन्तु वहां आटा नहीं तोलना है। इस पर वीर कोठारीजी मुस्कराये और उत्तर देने लगे—"वीरो, चिन्ता न करो। इतने दिन तो एक हाथ से आटा तोलता था, किन्तु आज युद्धक्षेत्र में जब मैं दोनों हाथों से आटा तोलूंगा तो उसे देखकर आप लोग भी चकित हो जाओगे"। यह कह स्वामी से विदा ले अपने सैन्य-दल सहित कोठारीजी युद्धक्षेत्र में जा डटे। दोनों दलों मे घमासान युद्ध होने लगा। थोड़े ही समय मे जिधर देखो उधर लाशें ही लाशें नज़र आने लगीं। बड़े बड़े बलवान् शूरवीर योद्धा मारे गये। वीर कोठारीजी ने युद्ध के प्रारम्भ में ही घोड़े की बाग (लगाम) कमर से बाँध कर दोनों हाथों में तलवार लेकर कहा—"हे राजपूत वीरो, अब मेरा आटा तोलना देखो" इतना कहकर आप मेवातियों पर अपना घोड़ा दौड़ाकर दोनों हाथों से शत्रु-दल का संहार करने लगे। आप जिधर निकल गये, बस उधर का ही सफ़ाया हो गया। आप थे तो अकेले किन्तु आपने अनेकों शत्रुओं को मार डाला और बहुतों को घायल कर दिया। इस प्रकार इनकी अपूर्व वीरता देखकर यवनों के भी होश उड़ गये। किसी का भी साहस

नहीं होता था कि इनके सम्मुख आवे। ये लोग आगे बढ़कर निर्भय हो खेत की मूली की तरह यवनों का संहार कर रहे थे। इतने ही में अचानक एक तीर आया और वीर भीमजी के कलेजे में घुस गया। [1]कोठारीजी एक दम घोडे पर से गिर पडे

१ कोठारी भीमजी युद्ध में असीम वीरता एवं स्वामिभक्ति का परिचय देते हुए मारे गये, इसमें किसी का मतभेद नहीं है अलबत्ता रा० ब० म० म० पंडित गौरीशंकरजी ओझा कृत 'उदयपुर राज्य का इतिहास' जिल्द दूसरी पृष्ठ ६११ पर इस युद्ध का वर्णन है। उसमें लिखा है कि "ऐसी प्रसिद्धि है कि बेगू का रावत देवीसिंह किसी कारण से युद्ध में न जा सका इसलिये उसने अपने कोठारी भीमसी महाजन की अध्यक्षता में अपना सैन्य भेजा। राजपूत सरदारों ने उपहास के तौर पर उसे कहा—'कोठारीजी, यहाँ आटा नहीं तोलना है'। उत्तर में कोठारी ने कहा—'मैं दोनों हाथों से आटा तोलूं, उस वक्त देखना'। युद्ध के प्रारंभ में ही उसने घोड़े की बाग कमर से बाँध ली और दोनों हाथों में तलवार लेकर कहा कि—सरदारो, अब मेरा आटा तोलना देखो। इतना कहते ही वह मेवातियों पर अपना घोड़ा दौड़ाकर दोनों हाथों से प्रहार करता हुआ आगे बढ़ा और बड़ी वीरतापूर्वक लड़कर मारा गया। उसके लड़ने के विषय का एक प्राचीन गीत हमें मिला है, जिससे पाया जाता है कि उसने कई शत्रुओं को मारकर वीरगति प्राप्त की और अपना तथा अपने स्वामी का नाम उज्ज्वल किया।"

इसी प्रकार वीरविनोद भाग २ प्रकरण ११ पृष्ठ ९३९–९४० में इस युद्ध का उल्लेख है। वहाँ भीमजी के विषय में इस प्रकार वर्णन है—"जब कभी मेवाड़ के महाराणा दबाये गये तब कुल बादशाही ताकत काम में लानी पड़ती थी, जिसमें भी अकबर जहाँगीर शाहजहाँ और आलमगीर के वक्त राजपूताना के दूसरे राजा शाहीफ़ौजों के शरीक होते थे। वह सब इस वक्त महाराणा के विरुद्ध नहीं थे, लेकिन रणबाजखां को बड़े शाहजादा और मीरबख्शी जुल्फ़िकारखां की हिमायत का ज़ोर था। उसने कुछ न सोचा और वह राजपूताना में बेधड़क चला आया। महाराणा संग्रामसिंह को जब यह खबर मिली कि पुर, माण्डल और बधनौर के परगनों से हमारे आदमियों को निकालकर नव्वाब रणबाजखां वहां अपना कब्ज़ा करेगा, तो फौरन महाराणा ने अपने अहल्कार और सरदारों को एकत्रित किया। सब ने एकमत होकर लड़ने की सलाह दी। दिल्ली से वकील किशोरदास ने शाहज़ादा अज़ीमुश्शान व महाबतखां के इशारह से लिख भेजा था कि मेवातियों को गारत कर देना। महाराणा ने फौज की तय्यारी का हुक्म दिया। इस फ़ौज में शाहपुरा का कुंवर उमेदसिंह, बधनौर का ठाकुर जयसिंह, बाठरडा का रावत महासिंह, देवगढ़ का रावत संग्रामसिंह, मन्दवर के रावत केसरीसिंह का भाई सामन्तसिंह व बानसी का रावत गंगदास वगैरह बहुत से सरदार थे।

बेगू का रावत देवीसिंह किसी सबब से नहीं आया और अपने स्थान पर कामदार कोठारी के साथ जमईयत भिजवा दी जिस को देखकर सब राजपूत सरदार मुसकराये और रावत गंगदास ने कहा—

और इस प्रकार हँसते २ अपना जीवन स्वामी और देश के लिये युद्ध की बलिवेदी पर न्योछावर करते हुए उन्होंने आदर्श सेवा-धर्म का परिचय दिया। इसी विषय में एक प्राचीन गीत रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकरजी हीराचंदजी ओझा से प्राप्त हुआ है, जो पाठकों के विनोदार्थ नीचे दिया जाता है—

"कोठारी जी, यहाँ आटा नहीं तोलना है"। तब कोठारीजी ने जवाब दिया—"मैं दोनों हाथों से आटा तोलूंगा उस वक्त आप देखना"। परमेश्वर की इच्छा से खारी नदी के उत्तर दोनों फ़ौजों का मुकाबला हुआ।

(१) तो शुरू ही में बेगूं के कोठारी ने घोड़े की बाग कमर से बांधकर दोनों हाथों में तलवारें ले लीं और कहा कि—"सरदारो, मेरा आटा तोलना देखो"। उस दिलेर कोठारी ने मेवातियों पर एकदम घोड़े दौड़ा दिये। यह देखकर सरदारों ने भी हमला कर दिया, क्योंकि सरदार लोग भी यह जानते थे कि कोठारी की तलवार पहिले चलने में हमारी हतक है। नव्वाब रणबाजखां और उसके भाई नाहरखां व जोरावरखां के नायब दीनदारखां वगैरह मेवातियों ने भी बड़ी बहादुरी के साथ मुकाबला किया। ऐसा मशहूर है कि रणबाजखां के साथ पांच हजार आदमी कमान चलाने में नामी तीरन्दाज़ हाथी और घोड़ों पर सवार थे लेकिन बीस हज़ार बहादुर राजपूत चारो तरफ से एकदम टूट पड़े। तीरन्दाज़ दूसरी बार कमान पर तीर न चढ़ा सके। बर्छा, कटार, तलवार और खञ्जर के वार होने लगे। अंत में नव्वाब रणबाजखां अपने भाई नाहरखां व दूसरे भाई बेटों समेत मारा गया और दीनदारखां अपने बेटे समेत जख़्मी होकर अजमेर पहुँचा। इस युद्ध में शाही फ़ौज में से बहुत कम आदमी जीते बचे और राजपूत भी बहुत मारे गये"।

उपरोक्त लेख के पढ़ने से पाठकों को सहसा यही भास होता है कि भीमजी बेगूं के होंगे, किन्तु इनका बेगूं का होना नहीं माना जा सकता क्योकि इनके लिये पुस्तक में 'कोठारी' या 'कामदार कोठारी' के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इसका कारण यह पाया जाता है कि बेगूं रावत देवीसिंहजी और कोठारी भीमजी मे परस्पर घनिष्ठ मित्रता थी और आपत्ति एवं देशसेवा के अवसर उपस्थित होने पर एक मित्र अपने परम एवं विश्वस्त मित्र को ही अपने स्थानापन्न करता है, इसमे कोई सन्देह नही है। कई सरदारों की सेनायें भेजी गई, उसमें भीमजी के अधीन बेगूं की सेना की गई। इसका भी मुख्य कारण बेगूं रावतजी का भीमजी के साथ घनिष्ठ मित्रता का व्यवहार ही मानना पड़ेगा। या यह भी संभव हो सकता है कि किसी कारणवश बेगूं रावतजी ने इन्हें अपना विश्वस्त मित्र होने से अपने ठिकाने के कार्य के लिए रियासत से मांगा हो और वे उनके अधीन रहकर उस परिस्थिति में ठिकाने की ओर से युद्ध मे गये हो।

(२) कोठारी भीमजी का महाराणा अमरसिंहजी की सेवा मे रहना और पुन. महाराणा संग्रामसिंहजी की इन पर असीम कृपा होना कितनेक लेख इत्यादि से भी यही सिद्ध है।

गीत

कुलाछात भीमानमो पार्थ रूपी कलह,
उडडा छोक कर अमर उत्राणी।
छुडाला छोहकरा तणी देह छातिया
अभग महरातिया वाध आणी ॥१॥

राण रे हुकम घमसाण लेणा रटक,
धरा मेरातणी सत्रल धड़की।
छोडती नहीं कथ गलत्राह छोरऑ
जोरुआ खानरी भली भड़की ॥२॥

अभनवा दूद भीमा तणा उजागर,
जिका अखिआत संसार जाणी।
फौज वाधी मसण करे नह फेरणी
असी विध मेरणी वाध आणी ॥३॥

चदे पेज वीज रिच सिंधुआराजिया,
जीतियो सुजस दल पेल जुद्धरो।
वाणिये वालग जैम ग्गल घाढिया
रावता बरावर लडयो रूद्रो ॥४॥

पाड़तो पठाणा झाडतो पाद्रे,
रुधर कर वाहला धरा रेले।
अमुहा सामुहा नदे उतावलो
सूरमो सत्रारा जम्यो सेले ॥५॥

---

(३) जहां शब्द 'कामदार कोठारी' का प्रयोग हुआ है वहा ऐमा नहीं लिखा है कि घेंगू रावत का कामदार, या बेगू निवासी भीमजी, या बेंगू रावतजी के सेवक। केवल 'कामदार' शब्द मे ही इनके लिये बेगू का होना नहीं कहा जा सकता। वैश्य होने से भी 'कामदार' शब्द का प्रयोग होना सभव है।

(४) जो प्राचीन गीत पडित गौरीशकर जी से उपलब्ध हुआ है, उसमें भी भीमजी के लिये 'कुलगछत' (क्षत्रियकुलोत्पन्न) और आगे 'वणिक्' (बनिया) होना लिखा है। इससे राना पांडुसेन के वशज अर्थात् क्षत्रियों से वैश्य होना प्रकट है।

लोह वोहां करण पादरे लड़ाई,
चंचला चढ़ाई करे चढ़ियो।
वाढ़ दीधा घणां श्रर वाढ़िया
पाड़ मेवातियां नीठ पड़ियो ॥६॥

वदे दीवाण दोय राहा सारा वधै,
जलहले पृथी सर नाम जाणो।
रावतां रूप सर देवी सिंघ राजियो
रीझियो सुणे संग्राम राणो ॥७॥

भावार्थ—हे क्षत्रियकुलोत्पन्न कुलछत्र भीम, तुझको नमस्कार है। तू युद्ध में अर्जुन के समान है। युद्ध में जो भालो से जूझ-जूझकर लड़ने वाले थे और जिन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता था, ऐसे मेवातियो की स्त्रियों को तू बॉध लाया ॥१॥

महाराणा की आज्ञा से घमासान युद्ध के लिए जब तू चला तो मेरों की बलवान् भूमि (मेरवाड़ा) भयभीत हो धूजने लगी। वालकों एवं अपने पतियों की गलबॉही जो नहीं छोड़ती थी, ऐसी यवन-स्त्रियों की तूने भली प्रकार से भर्त्सना की ॥२॥

हे खेमा के उजागर पुत्र ! तू वीर माता के दूध से पोषित है, इस बात को सारा संसार जान गया है। शत्रुओं की सेना जो कभी पीछा सामना न कर सके ऐसी उसकी दशा कर उनकी स्त्रियो मेरणियो को तू बॉध लाया है ॥३॥

---

(५) कोठारी भीमजी के लिये इसी गीत में खेमा के पुत्र होना लिखा है और वंशवृक्ष से भी भीमजी के पिता का नाम 'खेमराज' ही आता है।

(६) यह निर्विवाद सिद्ध है और प्राय. देखा जाता है कि जो मनुष्य जिस कारण से प्रसिद्धि मे आता है और जिससे विशेष संपर्क रहता है, वह उसी से प्रसिद्ध हो जाता है। वेगूं रावत देवीसिहजी और भीमजी की असीम और घनिष्ठ मित्रता एवं वेगूं की सेना का संचालन करने के कारण उनके वेगूं की ओर के होने का लेख मिलना प्रतीत होता है।

(७) किसी किसी पट्टे परवाने मे प्रतदुवे कोठारी भीमा का सं० १८०० के लगभग तक होना पाया गया है, किन्तु वे कोई अन्य भीमाजी हैं क्योकि कोठारी भीमजी का युद्ध मे वीर गति प्राप्त करना और उनका मृत्यु भोज संवत् १७७९ मे होना सिद्ध है। फिर संवत् १८०० के लगभग तक इनका नाम पट्टे परवानों में नही हो सकता है।

वाजी बदकर नक्कारे बजवाये और युद्ध में शत्रुदल को हटाकर विजय के साथ सुयश प्राप्त किया। उस वणिक् ने बालरे खेतों के समान दुष्टों को काटा—साफ किया और रुद्र रूप होकर रावतों (बडे बड़े उमरावों) के समान लड़ा ॥४॥

पठानों का नाश करते हुए पृथ्वी को खून से तर कर दिया। शत्रुओं के सामने यह वीर वेगपूर्वक बढता था और घुड़सवारों पर वह जमा हुआ सेल (भाला) चलाता था ॥५॥

युद्धक्षेत्र में शत्रुओं पर शस्त्र प्रहार करने के लिये अश्वारोही हो तूने चढाई की और अपनी तरवार की धार से अनेक शत्रुओं को काट डाला, तथा मेवातियों को गिराकर स्वयं भी युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥६॥

स्वयं दीवाण, (महाराणा) एवं दोनों ओर के अर्थात् हिन्दू एवं मुसलमान भी प्रशंसा करने लगे और इस प्रकार इस वीर का नाम पृथ्वीतल पर प्रकाशमान हो गया। जब महाराणा को इस वीर भीमसी की वीरता पर मुग्ध हो प्रशंसा करते हुए सुना तो रावतों में श्रेष्ठ देवीसिंह को भी बड़ी ही प्रसन्नता हुई ॥७॥

इसी युद्ध के वर्णन में कितनेक बडे सुन्दर एवं वीर-रस के दोहे और सोरठे भी पाठकों के मनोरंजनार्थ वीरविनोद से उद्धृत किये जाते हैं, जिनमें अन्य वीरो की वीरता वर्णन की गई है—

॥ माहव तो रण में मरे गंग मरे घर आय ॥

अर्थ—कवि ताना मारता है कि महासिंह जो कम उम्र का था, लडाई में मारा गया और गंगदास बुड्ढा जो कि लड़ाई में मारे जाने लायक था घर आकर मौत से मरा।

दोहा

बाघनवाड़ा बीच में जबर करी जेसींग।
वडंगमार रणबाजखा धज वड राखी धींग ॥१॥

रण मारयो रणबाजखाँ यूँ आखे संसार।
तिण माथे जैसींग दे तें बाही तरवार ॥२॥

अर्थ—बाघनवाड़ा गाँव के बीच में जयसिंह ने जबरदस्ती की और घोड़े समेत रणबाजखाँ को मारकर तीरन चोख रक्खी ॥१॥

जहान कहता है कि लड़ाई में रणबाजखाँ को मारा। उसके सिर पर जयसिंह दे, तूने तलवार मारी ॥२॥

सोरठा

अमलां भांगा आज, कर मन्हवारां जग कहे ।
वाह खाग रणवाज, यूँ कहवो माहव अधिक ॥१॥

तें वाही इकतार, मुगलां रे सिर माहवा ।
धजवढ़ हन्दी धार, सातकोस लग सीस वद ॥२॥

जे पग लागे जाण, रणसामां रणवाजरा ।
उद्दक पृथी अडाण, करदेसूँ माहव कहे ॥३॥

अर्थ—दुनिया कहती है कि आज अमल और भॉग की मनुहार करनी चाहिए. लेकिन महासिंह का यह कहना खूब है कि ऐ रणवाजखाँ, तलवार चला ॥१॥

ऐ महासिंह ! तूने मुग़लों के सिर पर एक ढंग से तलवार चलाई, ऐ सीसोदिया ! जिस तलवार की धार सात कोस तक चलाई ॥२॥

महासिंह कहता है कि रणवाजखाँ के जितने कदम लड़ाई में मेवाड़ की तरफ पड़े उतनी जमीन और कुएँ ब्राह्मणों को संकल्प कर दूँगा अर्थात् नव्वाब को एक कदम भी आगे न वढ़ने दूँगा ॥३॥

चतुर्भुजजी का प्रधान वनाये जाना।

भीमजी के दो पुत्र—चतुर्भुजजी व चेनरामजी हुए। इनमें से ज्येष्ठ पुत्र चतुर्भुजजी ने महाराणा जगतसिंहजी द्वितीय तथा राजसिंहजी द्वितीय के समय में प्रधान पद का उच्च सम्मान प्राप्त कर प्रधान का कार्य सफलतापूर्वक किया। कोठारी चतुर्भुजजी ने सं० १७७६ में अपने पिता भीमजी का मृत्यु-भोज किया। उसमें छः हज़ार रुपये खर्च किये और डसलाना मे चालीस हज़ार रुपये ख़र्च कर एक वावड़ी वनवाई।

दिनो के फेर।

कोठारी चतुर्भुजजी के मनसपजी नामक एक पुत्र थे, किन्तु उनका स्वर्गवास चतुर्भुजजी की मौजूदगी में ही हो गया। अतः चेनरामजी के तीनों पुत्रों—शिवलालजी, मोतीरामजी व जोतमानजी—में से ज्येष्ठ पुत्र शिवलालजी चतुर्भुजजी के यहां गोद आये और शिवलालजी के पुत्र पन्नालालजी हुए। शिवलालजी तक तो आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन होना पाया नहीं जाता। किन्तु पन्नालालजी के समय में स्थिति वहुत गिर गई। इस प्रकार स्थिति में एकदम परिवर्तन होने का कोई कारण तो मालूम नहीं, किन्तु यह बात निश्चित है कि पन्नालालजी ने राज्य का कोई अपराध नहीं किया था परन्तु भाग्यवश ही समय ने पलटा खाया।

महाराणाजी श्रीजगतसिंहजी द्वितीय
(इनके समय कोठारी चतुर्भुजजी ने प्रधाना किया)

महाराणाजी श्रीराजसिंहजी (द्वितीय)

(इनके समय कोठारी चतुर्भुजजी प्रधान हुए)

पन्नालालजी के दो पुत्र—छगनलालजी व केशरीसिंहजी हुए। पन्नालालजी शीतलनाथजी के मंदिर के पास कोडियो की दुकान माडकर अपनी जीविका उपार्जन करते थे, और कुछ समय वागोर की हवेली की नौकरी की। उनके वृद्ध हो जाने पर इनके दोनों पुत्र छगनलालजी व केशरीसिंहजी को भी इसी साधन का अवलम्बन लेना पडा तथा अपने वृद्ध पिता के सहायकरूप होकर इन दोनो भाइयों ने भी प्रारंभिक अठारह-बीस वर्ष इसी स्थिति में बिताये जिसका वर्णन आगे किया जायगा।

दूसरा परिच्छेद

कोठारीजी श्रीकेशरीसिंहजी
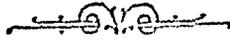
कोठारीजी का जन्म व प्रारंभिक जीवनकाल।

कोठारी पन्नालालजी के कनिष्ठ पुत्र केशरीसिंहजी का जन्म सं० १८८०, वैशाख शुक्ला ६ भौमवार, पुनर्वसु नक्षत्र, शुक्ल योग सूर्योदय से १ घड़ी १५ पल पर प्रातःकाल में हुआ। उस समय कोठारी पन्नालालजी की आर्थिक स्थिति गिरी हुई थी। ऐसी हालत में केशरीसिंहजी का पठन-पाठन भी मामूली ही हुआ। और प्रायः वे तथा उनके बड़े भाई छगनलालजी अपने पिता के साथ कोडियों की दुकान पर ही काम किया करते थे। किन्तु ऐसा सिद्धान्त है कि जो कुछ ईश्वर करता है वह अच्छा ही करता है। इसी के अनुसार एक दिन कोडियों की थैली जिसमें कुल १०) अथवा १५) रुपयों का माल होगा कोई चुरा कर ले गया। घर पर जाकर देखा तो शाम को खाने का भी प्रबन्ध न था। पन्नालालजी और उनके दोनों पुत्र बड़े चिन्तित हुए। ऐसी दशा में केशरीसिंहजी ने अपने एक मित्र से एक रुपया उधार मांगा, लेकिन कहावत है कि "संकट के समय शरीर के कपड़े भी वैरी हो जाते हैं"। इसी के अनुसार केशरीसिंहजी के मित्र ने एक रुपया देने से इन्कार कर दिया, किन्तु इस इन्कारी का ही कारण समझना चाहिये कि कोठारीजी के लिये आगे बढ़ने का मार्ग खुल गया। एक रुपया भी उधार न मिलने पर केशरीसिंहजी ने सोचा कि अब दस पन्द्रह रुपयों का प्रबन्ध कर पुनः कोडियों की दुकान जमाना कठिन है। इसलिये छगनलालजी व केशरीसिंहजी ने थोड़े दिन भट संपतरामजी के यहां नौकरी कर ली, परन्तु कुछ ही दिनों बाद बागोर की हवेली जाकर स्वरूपसिंहजी के पास जो महाराणा सरदारसिंहजी के समय बागोर की हवेली में थे, नौकर हुए। संयोगवश महाराणा सरदारसिंहजी के राज्यकाल में ही स्वरूपसिंहजी व उनके भाइयों में अनबन हो जाने से स्वरूपसिंहजी को विपत्ति के कुछ दिन देखने पड़े। इन विपत्ति के दिनों में छगनलालजी व केशरीसिंहजी ने तन, मन एवं धन से भी महाराज स्वरूपसिंहजी की सेवा बजाई।

कोठारीजी श्रीकेसरीसिंहजी
(भूतपूर्व प्रधान राज्य मेवाड़ और मेम्बर रिजेन्सी कौंसिल)

महाराणाजी श्रीस्वरूपसिंहजी

स० १८६६ के ज्येष्ठ में महाराणा सरदारसिंहजी बीमार हो गये और आषाढ शुक्ला ७ वि० स० १८६६ को उनका स्वर्गवास हो गया। आषाढ शुक्ला ८ को महाराणा स्वरूपसिंहजी राज्यासन पर विराजे। उनके साथ ही साथ इन दोनों भाइयों के भाग्योदय का भी श्रीगणेश हुआ। साथ ही कोठारी पन्नालालजी को टकसाल और हुकूमत राजनगर की सेवा सुपुर्द की गई।

भाग्योदय का श्रीगणेश।

केशरीसिंहजी ने अपने भाग्योदय के पश्चात् जिस मित्र ने एक रुपया देने से इन्कार किया था उसके घर जाकर उसकी भूरि भूरि प्रशसा की। तथा उसका खूब उपकार माना और उससे कहा कि मित्र, आपके प्रति मेरा प्रेम पहले से भी अधिक समझिये। यह सब उसी एक रुपये की इन्कारी का फल है कि मेरे दिन फिरे। यदि आपके द्वारा एक रुपया मिल जाता तो न तो वह कोडियों की दुकान छूटती और न हमारा भाग्योदय ही होता। यह सुनकर मित्र को बडी लज्जा आई। फिर भी केशरीसिंहजी ने उसे गले लगाया और अपनी उन्नति के काल मे जिस तरह से हो सका उसे लाभ पहुँचा उपकार मानते हुए मित्रता का बदला दिया।

अपने मित्र के प्रति कृतज्ञता।

महाराणा स्वरूपसिंहजी के राज्यासनस्थ होने पर दोनों भाई राज्यसेवा मे रहने लगे और सवत् १६०७, माघ शुक्ला ५ को रावली दुकान नये सर मुकर्रर कर उक्त महाराणा साहब ने केशरीसिंहजी को इसका अध्यक्ष नियुक्त किया। और प्रारम्भ मे नौ हजार रुपया बतौर जमा-बन्दी शिलक में दिये गये, जिसका काम बढते बढते आज तक लाखों रुपयों के व्याज की राज्य मे आमदनी हो चुकी है। और सर्व साधारण को आवश्यकता पडने पर यहा से सूद पर हज़ारों रुपये दिये जाते हैं, इससे उनकी आवश्यकता की पूर्ति होकर राज्य में भी व्याज की काफ़ी आय होती है। सवत् १६०७ के श्रावण शुक्ला १३ के दिन टकसाल (mint) का काम भी कोठारी केशरीसिंहजी के सुपुर्द किया गया। सवत् १६०८ श्रावण कृष्णा १ के दिन देश दाण का काम जो पहले सेठजी के मुकाते था, वह मुकाता तोडकर केशरीसिंहजी के सुपुर्द किया गया। रावली दुकान तथा दाण (चुगी) का प्रबन्ध सुचारु रूप से होने के कारण प्रसन्न होकर महाराणा साहब ने श्री एकलिंगजी के सब काम की निगरानी व शहर पटे का काम भी केशरीसिंहजी के सुपुर्द कर दिया। और उन्हें पूर्ण विश्वासपात्र समझ राजकीय कार्य सम्बन्धी सलाह मशवरा मे भी शामिल रखना शुरू किया। इन सेवाओं से प्रसन्न हो सवत् १६१६ के श्रावण में नेतावला नामक गाव जागीर

कोठारीजी के अधीनस्थ सेवाएं होकर प्रधान पद पर नियुक्ति और जागीर का मिलना।

में वख्शा। और दिन प्रति दिन इनकी बढ़ती हुई सेवा और स्वामिभक्ति के कारण संवत् १६१६ के कार्त्तिक कृष्णा २ को महाराणा साहब स्वरूपसिंहजी ने कोठारी केशरीसिंहजी को प्रधान पद पर नियुक्त किया। और जागीर में बोराव नामक ग्राम मय उसके मजरों के वख्शा[1]। जिस दिन केशरीसिंहजी को प्रधान पद पर नियुक्त किया गया था, उस दिन श्री जी हुजूर का विराजना गोवर्द्धनविलास के महलों में था। सो प्रधानगी का दस्तूर व नजर निछरावल वहीं पर हुई व श्रीजी में से उनके निज करकमल से

१ कोठारीजी को जागीरी में जो गाँव मिले, उनके पट्टों की नकलें—

श्रीगणेसजी प्रसादात् श्रीरामो जयति श्रीएकलिंगजी प्रसादात्

भाला

सही

स्वस्ति श्री उदयपुर सुथाने महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सरूपसिंघजी आदेशात् कोठारी केसरीचंद पनालालकस्य १ अग्रं-गामनेतावलो प्रगणे ऊंठालारे रेपटका १००० ऊपत रुः २००० हाल ऊपत रुपया ८२५) अखरे सवा आठसे म्हे थोहे पटे मय्या हुवो हे सो अमल करजे तागीर खालस।थी साख सीयालुथी प्रवानगी महेता गोपालदास लिपता पंचोली रामसींघ सुरतसींघोत संवत् १९१६ वर्षे सावनवदि १३ गुरे

कोठारी केसरीचंद पनालाल राकस्य

श्रीगणेसजी प्रसादात् श्रीरामो जयति श्रीएकलिंगजी प्रसादात्

भाला

सही

महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सरूपसिंघजी आदेशात् कोठारी केसरीसींघ पनालालोतकस्य

१ अग्रं अलेरे ग्रास रेपटका ६५२५ ऊपत रुपया ९१००) हाल ऊपत रुपया ४७८५) म्हेथोहे पटे मय्या हुवाहे सो अमल करावजे—

गामारीवीगत

	रेपटका	ऊपत	हाल ऊपत
गामनेतावलोप्रगणे ऊठालारे पहली पटेहेसो सावत	१०००)	२०००)	८२५)
गामबोरवाए प्रगणे बोरवाएरे पटा रागामां सुदी ऊपत रु० ३९९०) म्हे पड़लापड़रा रुपया ३०) रोकड़ के भंडार भराऐ सो बाद बाकी रुपया ३९६०)	५५२५)	७१००)	३९६०)
	६५२५)	९१००)	४७८५)

प्रवानगी म्हेता गोपालदास लीपता पंचोली रामसींघ सुरतसीघोंत संवत् १९१८ वर्षे आसोजवदि १० रवे

कोठारी केसरीसींघ पनालालोतकस्य

तिलक निकाल मोती के अक्षत लगाये और सोने की दावात पट्टा वही सुनहरी पट्टे का भगा सिरोपाव मोतियो की कंठी, सिरपेच, मोती चोकडा, हाथी, पालकी बलाया घोडे तीन, सोने की छडी एक, सोने का घोटा एक, चादी की छडी एक, चादी का घोटा एक, पावों में पहनने के सोने के तोडे, नाव में विराजने की छतरी के मोडे, पीछे की बैठक, इत्यादि प्रधानगी का सब ही सम्मान बख्शा गया। गोवर्द्धनविलास से कोठारीजी को शहर में उनकी हवेली तक पहुचाने के लिये अपने काका शिवरती के महाराज दलसिंहजी को साथ दे दोनों को हाथी पर बैठाकर भेजा। साथ अपने विश्वस्त सेवक ढींकडिया तेजरामजी भी घोडे पर चढा भेजे गये। इस उच्च सम्मान के साथ केशरीसिंहजी को हवेली पहुचाया गया, जहा उनके दस्तूर के अनुसार उनको कोठारीजी ने नेग दिये।

हवेली और वाडी का मिलना।

स० १६१६ कार्तिक शुक्ला में ही निवास के लिये कोतवाली चबूतरे के पास वाली हवेली, जिसमें पहले शाह शिवलालजी गलूडिया रहते थे, बख्शी। और देहली दरवाजे के बाहर की बाडी भी बख्शी। यह हवेली बिलकुल बेमरम्मत पडत तलिये के माफिक हो रही थी, जिसपर केशरीसिंहजी ने पद्रह हजार रुपये लगा उसी समय रहने योग्य ज़रूरी इमारत बनवाई।

आगरे के जलसे में कोठारीजी का भेजा जाना।

वि० स० १६१६ मार्गशीर्ष कृष्णा ४ को आगरे लाट साहब के आम दरबार के जलसे में महाराणा स्वरूपसिंहजी ने बेदले राव बख्तसिंहजी और कोठारी केशरीसिंहजी को भेजा। कोठारीजी के साथ लवाजमा इस माफिक दिया गया—बलाया घोडे तीन, गहना गज गाव सहित, हथिनी खासा सवारी की पवनपुरी जिस पर होदा दात का, काच के डाबा का और भूल बनाती फूल की कटमा काम की, हथिनी एक दूसरी, नगारा, निशान, छडी घोटा सोना का, छडीदार, घोटावाला, पलटन का निशान, छडी दो चॉदी की, घोटा एक चादी का, खासा पायगा, और रिसाले का सवार ५०, छब्बा, अडानी, जलेबदार, डेरा की लाल रग की कनातें वाडे की, चादनी एक टाटवा पीले काम की जिसकी चोबें चादी की, मेवाड की हद बाहर चँवर उडाने की इजाज़त, ढोलिये का पहरा पर अका के जमादार, सरदार ५, चाबुक सवार १, जुजरवा के ऊँट सात, और सरदारों में से जामोली वालों के बेट, लाम्बे ठाकुर बाघसिंहजी तथा परचुनी पहरा, वगैरह कुल लवाजमा राज्य से साथ दिया और इतने लवाजमें से कोठारीजी को भेजा गया लेकिन इन दिनों मेवाड के एजेंट नीमच की छावनी रहत थे। इसलिये वहा पर एजेंट शोर साहब से मुलाकात की, तो उन्होंने जरूरत न समझ कोठारीजी को वहा

कि लाट साहब के नाम लिखकर अब आपका आगरे जाना मुल्तवी रक्खा गया है। इसलिये आगरे जाना नहीं हुआ। नीमच की छावनी ही मुकाम रहा। फिर सीख देने के लिये एजेंट साहब कोठारीजी के डेरे आये। तब लाल कनात के वाडे में ज़रदोज़ी चांदणी चांदी की चोवों की खड़ी करा बिछायत कर कुरसियों पर मुलाकात की गई और वेदले रावजी और कोठारीजी तथा अन्य सरदार भी यथास्थान बैठे। फिर वेश्याओं का नृत्य हुआ और इत्रपान हुआ। इसके बाद एजेंट साहब रवाना होकर डेरे गये और वेदले रावजी व कोठारीजी वगैरह भी मार्गशीर्ष सुदि १३ को वापस उदयपुर आ गये।

दूसरी बार स्वर्ण सम्मान।

सं० १९१७ मार्गशीर्ष कृष्णा ३ को महाराणा साहब स्वरूपसिंहजी ने प्रसन्न होकर दूसरी बार फिर पैरों मे पहनने के सोने के तोड़े इनायत किये।

श्री दरबार का मेहमान होना।

सं० १९१७ माघ वदि १३ को महाराणा साहब स्वरूपसिंहजी की पधरावणी केशरीसिंहजी के यहां हुई। उसमें करीब बीस हज़ार रुपये खर्च हुए और उस समय उक्त महाराणा साहब ने होकार की कलंगी[1], सरपेच, मोती चोकड़ा पोंचे, मोतियों की कंठी और परशादी सरपाव बख्शा। इसी प्रकार इनके ज्येष्ठ भ्राता कोठारी छगनलालजी को भी मोतियों की कंठी, पोंचे व सरोपाव आदि बख्श सम्मानित किया। और उनके अधीन २५ अहलकारों को दुशाले व सोने के कड़े जोड़ी हाथों मे पहनने के बख्शे गये। केशरीसिंहजी की तरफ़ से श्री जी हजूर में सिरोपाव तथा धारण का गहना और घोड़ा गहना समेत करीब दस हज़ार रुपयों का सामान नज़र किया और कंठियें ४ मोतियों की तथा सरोपाव तो बड़े कामेती पासवानों में से सहीवाला अर्जुनसिंहजी, महता गोपालदासजी, ढींकड़िया उदेरामजी व ढींकड़िया नाथूलालजी को दिये और दूसरों को भी यथायोग्य सिरोपाव दिये।

दरबार की पधरावणी और कोठारीजी का उच्च सम्मान।

सं० १९१७ चैत्र कृष्णा ८ शीतला अष्टमी के दिन महाराणाजी श्री स्वरूपसिंह जी की पधरावणी कोठारीजी के यहां हुई। इस पधरावणी पर सिरोपाव जेवर वगैरह तो कायदे माफ़िक कोठारीजी की तरफ़ से नज़र किये गये और श्रीजी की तरफ़ से भी यथायोग्य सरोपाव वगैरह बख्शीश हुए। किन्तु श्री दरबार ने ख़ावन्दी फ़रमा कोठारी जी को [2]ताजीम व कोठारणजी (कोठारीजी की धर्मपत्नी) को

---

१ यह होकार की कलंगी का सम्मान मुख्य एवं नियमित सरदारों को ही प्राप्त है।

२ मेवाड़ में प्रधान की इज्जत ऊँचे दरजे की बरती जाती है। लेकिन पुराने प्रधानों

महाराणा साहब की बीमारी, उत्तराधिकारी की नियुक्ति और स्वर्गप्रस्थान।

संवत् १९१८ के ज्येष्ठ मास में महाराणा साहब श्रीस्वरूपसिंहजी रोगग्रस्त हुए। इसी वर्ष आश्विन में महाराणा साहब ने गोद लेना निश्चय कर आश्विन शुदि १० के दिन कोठारीजी और पाँच चार अन्य हाज़िर रहने वालों की उपस्थिति में पहले माला और जानवरों की पुस्तकों से शकुन लिये कि गोद आज लेना ठीक है या दीपावली को। शकुन उसी दिन के आये और उसी दिन शंभुसिंहजी को गोद ले लिया। उपस्थित सरदार उमरावों को हुकुम दिया कि उत्तराधिकारी शंभुसिंहजी को नज़र की जाय। इस पर कुरावड रावत ईश्वरीसिंहजी ने उज्र किया कि जब तक सलुम्बर रावत केशरीसिंहजी न आ जावें तब तक शम्भुसिंहजी उत्तराधिकारी न माने जावेंगे किन्तु बेदले राव बख्तसिंहजी ने ज़ोर देकर अर्ज़ की कि शम्भुसिंहजी तो हकदार हैं। अगर हुज़ूर अपने हाथ से ग़ैर हकदार को भी वलिअहद बना देंगे तो वही मेवाड़ पर राज्य करेगा और उन्होंने नज़र कर दी। कोठारीजी ने भी इसका पूरा समर्थन करते हुए नज़र की। महाराणा साहिब ने शम्भुसिंहजी को राज्य कार्य भार के विषय में मुनासिब हिदायतें कीं। श्री दरबार को दीपावली से बीमारी अधिक बढ़ी और कार्तिक शुक्ला ४ के दिन चार लाख रुपया संकल्प किया और ३६ हज़ार रुपयों में हेम का गोला बनवाकर दान करने के लिये पलंग के नीचे रखवाया। पुरोहितजी को हुकुम दिया कि मुझे अन्तिम समय गोशाला मे ले जाना। उन दिनों नाड़ी को अच्छी तरह समझने वाले वैद्य मौजूद थे। कोठारीजी हर वक्त श्री दरबार के पास हाज़िर रहते थे। कार्तिक शुक्ला १२ को पहर रात गये बावाजी वल्लभदासजी ने नाड़ी देखकर कोठारीजी से कहा कि नाड़ी तीन दिन की है। उनका यही कहना ठीक निकला और महाराणा साहब को तकलीफ़ बढ़ती गई। कार्तिक शुक्ला १४ संवत् १९१८ की पिछली रात्रि को स्वर्गवास हो गया। दूसरे दिन कार्तिक शुक्ला १५ को आपका दाह-संस्कार हुआ। बैकुण्ठी के साथ घोड़े पर पासवानजी एजांबाई भी ज़ेवर की थालियां लुटाते हुए चलती रहीं। गोवर्द्धनविलास से कृष्णपोल होकर भट्यानी चोहट्टे से जगदीश के चौक में आकर थोड़ा ज़ेवर श्री जगदीश के भेट किया। थोड़ा अम्बा माता वगैरह मन्दिरों पर भेजा व कितना ही गरीबों को लुटाया। जगदीश के चौक से सरेबाज़ार सवारी आ रही थी तब इस दरमियान किसी पुरुष का तीन दोहे पढ़कर सुनाना मशहूर है, और उसे एजांबाई ने एक तश्तरी भरकर ज़ेवर देना भी प्रसिद्ध है। दोहे ये थे :—

एजां साँचों सत कियो, मोती बरणां अंग।
लाखों द्रव्य लुटायके, चली हिन्दुपति संग ॥१॥

नहि जयपुर नहि जोधपुर, नहि पृथ्वी पर भूप।
कलियुग ने सतयुग कियो, सांचो धनी स्वरूप ॥२॥

महाराणाजी श्रीशंभुसिंहजी

पड़ा दिलरा ऊजला, साचो राज स्वरूप।
कोठारी करडो मिल्यो, वएथा राज का रूप ॥३॥

महाराणा साहब की मृत्यु से सारे शहर में हाहाकार मच गया। सती प्रथा बंद हो चुकी थी। पासवानजी के सती होने के सबब इसका दारमदार आसींद रावतजी व महता गोपालदासजी पर रक्खा गया। फलत आसींद रावतजी को आसींद व महता गोपालदासजी को खरोड़े जाना पड़ा किन्तु गोपालदासजी खरोड़े से कोठारिये चले गये।

कोठारीजी की पंच सरदारी तथा कौंसिल में नियुक्ति।

प्रत्येक अनुभवशील व्यक्ति भली प्रकार जानता है कि गद्दी पलटे के समय मुख्यतया रईस की नाबालिगी की अवस्था होती है तब राज्य में सैकड़ों परिवर्तन होना मामूली बात है। महाराणा स्वरूपसिंहजी के स्वर्गवास के पश्चात् महाराणा शम्भुसिंहजी गद्दी पर विराजे। उस वक्त शम्भुसिंहजी की उम्र केवल १३ वर्ष ही की थी। इसलिये एजेंटी की तजवीज हुई। और रेज़ीडेंट जार्ज लारेंस साहब, एजेंट टेलर साहब नसीराबाद से उदयपुर आये। रियासती इन्तज़ाम बगैरा देख व कोठारीजी की सलाहों पर पूरा विश्वास करते हुए कोठारीजी को तो बदस्तूर प्रधान बहाल रक्खा और पंच सरदारी कौंसिल कायम हुई। उसमें कोठारीजी भी मेम्बर मुकर्रर हुए। और इस कौंसिल के विषय में एक [1]खरीता बतौर इत्तला के महाराणा साहब के नाम लिखा।

1 जो खरीता महाराणा साहब के नाम लिखा गया था, उसकी नकल श्री वीरविनोद पृष्ठ २०५९ से उद्धृत की जाती है —

नम्बर २७

सिद्ध श्री उदयपुर शुभस्थाने सर्वोपमा विराजमान लायक महाराजाधिराज महाराणाजी श्री शंभुसिंहजी साहब बहादुर एतान मुकाम राजस्थानीय टेलर साहब बहादुर लिखी सलाम बान्चना [illegible] भला है आपका सदा भला चाहिये अपरंच जो कि साहब आली शुआन नवाब गवर्नर जनरल बहादुर [illegible] से बवजह [illegible] आपके दाना [illegible] रियासत दरबार उदयपुर का [illegible] मंजूर हुआ इस वास्ते आठ आदमी उसमें एक तो [illegible] बदनसिंहजी बेदला व रावजी श्री रणजीतसिंहजी [illegible] व [illegible] श्री [illegible]सिंहजी [illegible] श्री [illegible]सिंहजी [illegible] व रावजी श्री [illegible]सिंहजी [illegible] गये। कोठारीजी श्री केसरीसिंहजी व महताजी श्री [illegible]सिंहजी व पुरोहितजी श्री [illegible] मुकर्रर किये गये थे [illegible] हर एक मुकदमा दरबार उदयपुर [illegible] उनको अर्जी कर [illegible] हुए। [illegible] एक हुक्म के मुताबिक इन्तज़ाम [illegible] हुक्म

कोठारीजी का राजनगर पेशवाई के लिये जाना।

संवत् १६१८ पौष कृष्णा ४ को राजपूताना के एजेंट गवर्नर जनरल जार्ज लारेंस और मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट मेजर टेलर उदयपुर में आये जिनकी पेशवाई के लिये राज्य की ओर से बेदला राव बख्तसिंहजी और कोठारीजी राजनगर तक सामने भेजे गये।

श्री दरबार की पधरावणी।

संवत् १६१८ चैत्र कृष्णा ८ के दिन महाराणा साहब शंभुसिंहजी की पधरावणी कोठारीजी के यहां की गई। ज़ेवर सरोपाव वगैरह सब दस्तूर माफ़िक नज़र किया। सीख में कोठारीजी को सरपाव कंठी सरपेच क़ीमती क़रीब सात हज़ार के बख्शे गये।

संवत् १६१६ कार्त्तिक मास में दुश्मनों का प्रपंच तथा आपसी अदावत बढ़ती हुई देख सरकारी काम मे हानि समझ उक्त कोठारीजी ने प्रधान पद के कार्य से इन्कारी कर पट्टा वही एवम् सोने की दावात पुरोहित श्यामनाथजी के साथ महाराणा साहब की सेवा में नज़र करा दिये। किन्तु पंच सरदारी में जाना बदस्तूर जारी रहा। स्वामी की नाबालिग़ी की अवस्था में शाम खोर राज्य के सच्चे हितैषी सेवकों को संकट का सामना करना एक साधारण बात है। दुश्मनों का चक्कर हरदम बढ़ने लगा और कोठारीजी जैसे सच्चे सेवक को बिना किसी प्रकार की दर्याफ्त तथा तहक़ीक़ात किये मार्गशीर्ष शुदि १३ को क़ैद कर दिया गया। पुनः हज़ारों तरह से दरयाफ़्त करने पर भी कोठारीजी का कोई कुसूर साबित नहीं हुआ तो चैत्र कृष्णा १४ के दिन साढ़े तीन माह के बाद कैद से मुक्त किया गया। किन्तु शत्रुओं की यह असफलता इन्हें और भी दुःखदायी हुई। कोठारीजी पर दो लाख रुपये ख़ज़ाने से ग़बन करने की तोहमत लगाई गई। तथा एजेंट ईडन साहब को उलट पुलट समझा बिना किसी तहक़ीक़ात के कोठारीजी को उदयपुर से बाहर कर दिया। और हुकुम दिया गया कि जब तक दूसरा हुकुम न निकले आप उदयपुर मे न आवें।

कोठारीजी का

कोठारीजी को अपने स्वामी के चरणों से दूर रहना कदापि प्रिय न था किन्तु दुर्जनों की करतूतों से सज्जन पुरुषों को भी असाधारण कष्ट किस प्रकार सहन करना पड़ता है इसके लिये भारतवर्ष का इतिहास जीता जागता

मुनासिब हमारे पास भेजा करेंगे। बशरत मुनासब राय पंचायत मंजूर होकर हुक्म मंजूरी वास्ते इजराएकार इस महकमे से हो जाया करेगा। इस वास्ते ये खरीता बतौर इतलाए खिदमत मुबारिक में भेज कर लिखता हूं के अगर किसी अमर रियासत में इतला दरकार हो तो यहां से आपको भी इतला दी जावेगी। और मिजाज मुबारिक की खुशी का समाचार हमेशे ली० ता० ८ माहे फ़रवरी सन् १८६२ ई० मिती माह सुदि ९ संवत् १९१८ मुक़ाम उदयपुर रोज शनिवार।

श्रीमदेकलिङ्गो विजयते

जगतारण अशरणशरण, अहिधर गङ्गा शीश।
इष्ट धन्य इकलिङ्ग ही, मेदपाट अवनीश॥

उदयपुर से प्रस्थान उदाहरण है। अत दुर्जनो के चक्कर मे पडकर कोठारीजी ने कष्ट उठाये, व स्वामी की अपूर्व यह कोई नवीन बात न थी। रहा सवाल—विपत्ति के दिन कहाँ पर कृपा। और कैसे काटे जायँ, इस पर कोठारीजी ने बहुत सोच विचार करन के बाद केवल अपने ही नहीं बल्कि अपने स्वामी के इष्टदेव एकलिंगजी के चरणो मे रहने का निश्चय किया और आषाढ शुक्ला ६ सवत् १६१६ में उदयपुर छोड श्री कैलाशपुरी अपने इष्टदेव के चरणो मे जा शरण ली[1]। यद्यपि महाराणा साहब श्री शम्भुसिंहजी की उमर कम थी किन्तु कोठारीजी की सत्य सेवा के लिये बाल्यकाल से ही महाराणा साहब के दिल मे इतना प्रेम कूट कूट कर भर गया था कि कोठारीजी के उदयपुर मे न होते हुए भी १६१६ आषाढ शुक्ला १२ के दिन श्री जी हुजूर ताजिया मुलाहजा फ़रमाने के बहाने से कोठारीजी की हवेली पधारे। और

---

१ वीरविनोद में इसका वर्णन पृष्ठ २०६३ के दूसरे पैरेग्राफ़ में इस प्रकार है कि मेजर टेलर साहब तो इस प्रबध को इसी अवस्था में छोड़कर चले गये और वि० सवत् १९१९ चैत्र शुक्ला ६ को कर्नल ईडन साहब मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट नियुक्त होकर उदयपुर में आये। उन्होंने इन्तजाम की यह हालत देखकर मतलबी लोगों की कार्यवाहियो को रोकना चाहा। कोठारी केशरीसिंह ने साहब की नेक मन्शा मालूम करके खानगी तौर पर कुछ हाल उनसे कहा और जब मुसाहिब लोग किसी को जमान जागीर वगैरह दिलाना चाहते तो उस हालत में भी यह खैरख्वाह प्रधान पोशीदा तौर से साहब को असली हाल कहकर ऐसी कार्यवाहियों को रोकता रहा। इस पर बहुत से लोग रियासत में म कशरीसिंह का कदम उखाड़ने की कोशिश करने लगे और पुरोहित श्यामनाथ को उदयपुर से निकलवा दिया। ईडन साहब को लोगों ने बहकाया कि कोठारी केशरीसिंह ने सरकारी दो लाख रुपये गबन किये हैं।

पृष्ठ २०६४ पर लिखा है कि विक्रमी सवत् १९१९ कार्तिक शुक्ला ७ को महाराणा साहब खानगी तौर पर रेजीडेन्ट की कोठी पर पधारे। उस वक्त डाक्टर के कहने से महाराणा साहब ने फ़र्श के नीचे जूतियाँ उतार दीं फिर महलों से वापिस आने पर इस बात की चर्चा फैलाकर लोगा न साहब एजेंट के कानों में यह बात भरी कि कोठारी केशरीसिंह की प्राइवेट सलाह पर महाराणा चलते हैं और उसके निस्बत दो लाख रुपये गबन करने की शिकायत पहले हो चुकी थी इसलिये साहब एजेंट के हुक्म से विक्रमी कार्तिक शुक्ला ११ को केशरीसिंह को प्रधाने से खारिज कर दिया गया। इस वक्त कुल पन्च सरदारों में परस्पर नाइत्तफ़ाकी चल रही थी।

पृष्ठ २०६५ पर लिखा है कि दो लाख रुपये गबन करने का जुर्म सचा समझकर प्रधाने से बेतरफ करने के अलावा उसको कैद करवा दिया। केशरीसिंह ने कहा कि यदि मैं अपने मालिक का सचा खैरख्वाह और इमानदार हूँ तो ये कुल झूठी बातें आखिर में रद्द होंगी। हकीकत में

कृपाभाव प्रदर्शित किया। कोठारीजी तो नगर-निर्वासन के कारण श्री कैलाशपुरी इष्टदेव के चरणों में थे अतः इनके भाई छगनलालजी ने नज़र नछरावल की और गोठ हुई।

इसके वाद संवत् १९२२ मार्गशीर्ष शुक्ला ९ को महाराणा साहव को अधिकार मिले और सिर्फ छः माह में ही हर तरह से कोशिश कर ज्येष्ठ शुक्ला १५ सं० १९२२ को कोठारीजी को कैलाशपुरी से वापिस वुला लिया। किन्तु दुश्मनों का प्रपंच होने से कोठारीजी को महाराणा साहव के दर्शन नहीं कराये जा सके और उदयपुर आ जाने के सात महीने वाद संवत् १९२३ पौष कृष्णा १ को (जिस दिन महाराणा साहिव का जन्मोत्सव था) पंचोली श्यामनाथजी को हवेली भेज कोठारीजी को महलों में वुलाया। इस प्रकार इन्हें करीव साढ़े चार वर्ष वाद उदयपुर में अपने स्वामी के दर्शन करने का सौभाग्य पुनः प्राप्त हुआ।

महाराणा साहिव शंभुसिंहजी के मन में कोठारीजी के विरुद्ध कोई वात न थी। वे सदा चाहते थे कि कोठारीजी को वापिस कव प्रधान वनाऊं। किन्तु राजा की नावालिगी में दुश्मन और स्वार्थी लोग किस प्रकार अपना दौरदौरा वढ़ा लेते हैं और उनका ज़ोर हटाने में राजा व रियासत को कितनी वाधाएँ झेलनी पड़ती हैं, यह वात किसी भी राज्यकार्य के रहस्य को समझने वाले पुरुप से छिपी नहीं है। तदनुसार महाराणा साहव की पूर्ण इच्छा होते हुए भी कोठारीजी की प्रधान पद पर पुनः नियुक्ति न हो सकी।

कोठारीजी की प्रधान पद पर नियुक्ति तथा स्वामी की आदर्श कृपा।

समय निकलने पर महाराणा साहव के जन्मोत्सव के दिन पौष कृष्णा १ संवत् १९२४ को कोठारीजी की प्रधान पद पर पुनः नियुक्ति हुई। मोती के अक्षत वगैरह चढ़वाने का सव दस्तूर प्रधान के कायदे माफ़िक किया गया और इनको हाथी का सम्मान इनायत हुआ। कोठारीजी की हवेली मे पूर्व दिशा का एक हिस्सा अव तक हाथी के ठान के नाम से मशहूर है, जहां केशरीसिंहजी के समय में हाथी वांधा जाता था। इनके प्रधान होने से शत्रु जलकर ख़ाक हो गये और

केशरीसिंह मालिक का पूरा खैरख्वाह था। उसने लोगो को जागीर मिलना इस वात पर रोका था कि जागीर देना मालिक का काम है, जो मालिक के जवान होने वा इख्तियार मिलने पर मिल सकती है। इस वात पर लोगों ने केशरीसिंह को जक देकर मालिक की खैरख्वाही से हटाना चाहा। यद्यपि इस वक्त महाराणा साहव कम उमर के थे लेकिन खैरख्वाह कोठारी पर जाल गिरने से मुसाहिवो पर वहुत नाराज हुए। इन लोगो ने आयन्दह के खौफ़ से महाराणा साहिव को खुश करने

एजेंटी मे इत्तला दी कि एजेंटी की सम्मति के बिना ही कोठारीजी को प्रधान बना दिया है। इस पर रेजीडेन्ट ने सदर मे रिपोर्ट कर दी और कोठारीजी पर दो लाख रुपये के गबन की तोहमत लगाई गई। उसकी तहकीकात के लिये आबू से कीटन साहब आये। उन्होंने और हचीसन साहब रेजीडन्ट उदयपुर ने पूरे तौर खुद तहकीकात की। किन्तु इतनी तपाई होने पर भी कोठारीजी स्वर्ण की भाति अग्निकुड मे से शुद्ध होकर ही वापिस बाहर निकले और दोनो साहिबों ने इनका कोई कसूर साबित न होने से वापिस इस आशय की रिपोर्ट कर दी कि कोठारीजी का कोई कसूर नहीं है न कोई गबन हुआ है, सब जमा खज़ाने मे मौजूद है। सिर्फ द्वेषी लोगो ने झूठी तोहमत लगाई तथा एजेट ईडन साहब के पास झूठी रिपोर्ट पेश कर धोखा दिया है। इस पर लाट साहब ने महाराणा साहब के नाम इस मतलब का खरीता लिखकर भेजा कि कीटन साहब ने कोठारी केशरीसिंहजी के मुकदमे की तहकीकात की। केशरीसिंहजी का कोई कसूर नहीं है और बिला इन्साफ कोठारीजी को तग किया गया है, आदि। यह खरीता मारफत एजेंट हचीसन साहब स० १९७५ में आया और खुशमहलों मे दरीखाना होकर सुनाया गया तथा इस खुशी मे महाराणा साहब ने पचास हजार रुपये अपने इष्टदेव श्री एकलिंगजी को भेंट किये। सेवक के लिये स्वामी की इससे बढकर और क्या कृपा हो सकती है। शत्रुओं की कुचेष्टाओं से कोठारीजी को कितने कष्ट झेलने पडे और वे किस दृढता से अपने धर्म पर कायम रहे, इसके लिये रायबहादुर गौरीशकरजी हीराचन्दजी ओझा अपनी स्पष्ट एव ओजस्वी भाषा मे लिखते हैं कि "उस समय कौंसिल के सरदारो से मेल जोल बढाकर कुछ अहलकार अपनी स्वार्थसिद्धि मे लगे हुए थे। परन्तु कोठारी केशरीसिंह के स्पष्टवक्ता और राज्य का सच्चा हितैषी होने के कारण उसके आगे उनका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता था, जिससे बहुत से लोग उसके दुश्मन होकर उसको हानि पहुँचाने का उद्योग करने लगे। कौन्सिल के सरदार जब किसी को जागीर दिलाना चाहते, तो वह यह कहकर इस काम से उन्हें रोकने की चेष्टा करता कि जागीर देने का अधिकार कौन्सिल को नहीं है, किन्तु महाराणा को है। इसके सिवाय पोलिटिकल एजेंट को भी यह सरदारो की अनुचित कार्रवाईयो से परिचित कर देता और उचित सलाह देकर शासन सुधार में भी उसकी सहायता किया करता था। उसकी इन बातों से अप्रसन्न होकर सरदार उसके विरुद्ध पोलिटिकल एजेन्ट

के लिये कोठारी का चरित्र के बारे में पोलिटिकल एजेन्ट के सामने कई दलाल पेश की मगर इस तुतरफी कार्रवाई से पोलिटिकल एजेंट और भी बिगड़ा और कोठारी को शहर से निकाल देने का हुक्म दिया। तब वह एकलिंगेश्वर की पुरी में जा रहा।

को भड़काने लगे। उन्होंने एजेन्ट को कहा कि केशरीसिंह की सलाह पर ही महाराणा चलते हैं और केशरीसिंह ने राज्य के दो लाख रुपये गबन कर लिये हैं। पोलिटिकल एजेन्ट ने विना इसकी जांच किये ही सरदारों के इस कथन पर विश्वास कर लिया और उसे पदच्युत कर उदयपुर से वाहर निकाल दिया, जिससे वह एकलिंगजी चला गया। महाराणा को केशरीसिंह पर पूर्ण विश्वास था। इसलिये उन्होंने उस पर लगाये गये गबन की जांच कराई, जिसमें निर्दोष सिद्ध होने पर उसको पुनः प्रधान वनाया[1]।"

इसके अतिरिक्त[2] वीरविनोद में स्पष्ट रूप से लिखा है, वह नीचे उद्धृत किया जाता है:—

"पंच सरदारों की मुसाहिवी में कोठारी केशरीसिंह पर दो लाख रुपये गबन करने का इलज़ाम लगाया गया था। इख़्यार मिलने पर महाराणा साहव को कई खयाल गुज़रे। अव्वल यह कि जिस शख़्स ने तमाम उमर ख़ैरख़्वाही की है और उसी ख़ैरख़्वाही करने के ज़माने में जो उसके मुख़ालिफ़ वन गये हैं, वे लोग इस वक्त उसको नुकसान पहुँचावेंगे तो एक अर्से तक इस दहशत से कोई आदमी अपने मालिक की ख़ैरख़्वाही नहीं करेगा। दूसरे महाराणा साहव अच्छी तरह जानते थे कि केशरीसिंह ने सरकारी एक पैसा न तो खुद खाया है और न दूसरों को खाने दिया है। ऐसे आदमी के साथ वेइन्साफ़ी हुई, उसको मिटाना फ़र्ज है। तीसरे महाराणा स्वरूपसिंह के परलोक पधारने के पीछे रियासती काम में कुछ गड़वड़ हो गई थी। ज्यादातर जमा खर्च के काम में खलल था। इस सवव से महाराणा साहव ने केशरीसिंह को लायक जानकर प्रधाना देना चाहा और पोलिटिकल एजेंट की मारफ़त उस इलजाम की जो केशरीसिंह पर लगाया गया था, अच्छी तरह तहक़ीक़ात कराई गई, जिससे असली हाल खुलकर वह तोहमत साफ़ लोगों की अदावतों के सवव लगाया जाना मालूम हो गया। तव महाराणा साहव ने वि० पौष कृष्णा १ को अपनी जन्म गांठ के दिन कोठारी केशरीसिंह को प्रधाने का खिलअत व हाथी इनायत किया, और महाराज सूरतसिंह धायभाई वदनमल और पंचोली पद्मनाथ को साथ देकर उसे मकान पर पहुँचाया[3]।"

इस हाल की रिपोर्ट पोलिटिकल एजेंट ने एजेंट गवर्नर जनरल की मारफ़त लार्ड गवर्नर हिन्द को की, और महाराणा साहव ने भी खरीता लिखा जिसके जवाव में जो खरीते आये, उनकी नकले नीचे दी जाती हैं—

---

१ उदयपुर राज्य का इतिहास जिल्द २ पृष्ठ १०३०। २ पाचवां भाग पृष्ठ २०७९।

३ वीरविनोद भाग ५ पृष्ठ २०७९ कोठारीजी को हवेली पहुँचाने के लिये महाराज गजसिंहजी का दस्तूर था लेकिन वीमारी के कारण वे खुद न जा सके और अपने भाई महाराज सूरतसिंहजी को भिजवा दिया।

करनेल कीटिंग साहब के खरीते की नकल

श्री

सिद्ध श्री उदयपुर शुभस्थाने सर्वोपमालायक महाराजाधिराज महाराणाजी श्री शम्भूसिंहजी बहादुर एतान लिखावतु कर्नल कीटिंग साहब बहादुर कंपेनियन स्टार ऑफ़ इंडिया विक्टोरिया क्रॉस एजट गवर्नर जनरल राजस्थान की सलाम मालूम होवे अठा का समाचार भला छे आपका सदा भला चाहिजे अपरंच आपने ता० १२ जनवरी सन् १८६८ के खरीते में मुझे लिखा था के कोठारी केशरीसिंह को आपने प्रधान मुकर्रर किया है लेकिन सरकार की मनाही के सबब से मैं उसके साथ काम रियासत में लिखावट नहीं कर सकता था जब मैं उदयपुर आया था तो मैंने आपसे इसके बाबत जबानी भी कहा था और कर्नल हचीसन साहब ने मेरे ईशारे के बमुजिब इस मुकदमे की अच्छी तरह तहक़ीकात करी और उससे साहब मोसुफ को खूब साबित हुआ के कोठारी केशरीसिंह कू खजाना उडाने का कसूरवार करने में कुछ भूल थी। इन सब बातो की रिपोर्ट मैंने सरकार में की। उसके जवाब में सरकार ने कोठारी केशरीसिंह के साथ काम चलाना या न चलाना मेरे अख्तियार में रखा जो के मेरा हमेशा यही चाहना है कि जहा तक बन सके बडे दर्जे के रईसो की रियासत का काम उन्हीं की मर्जी के मुआफ़िक होवे। इस मुकदमे में भी आपकी खुशी के माफ़िक कोठारी केशरीसिंह के मुकर्रर कराने में कोशिश करने में मैंने कुछ कमी नहीं की और जो आपने दोस्ती की राह से इस बात में मुझसे पहले सलाह ली होती तो आपके मतलब हासिल करने वास्ते मुझ कुँ इतनी तकलीफ न पडती। अब इस वक्त से कोठारी केशरीसिंह के साथ जिसकूँ आपने अपना प्रधान पसन्द किया है मैं बहुत खुशी से लिखावट रखूँगा और मुझे उम्मेद है क वह उन बहुत सी बुराइयो को जो अभी कुछ किसी किसी जगह इलाके मेवाड में है सुधारने में कोशिश करेगा और मिजाज मुबारिक खुशी के समाचार लिखना फ़रमावसी ता० १७ नवम्बर सन् १८६८।

अंग्रेज़ी में साहब के दस्तखत

कर्नल हचिसन साहब क खरीते की नकल

न० ३३४

श्रीरामजी

सिद्ध श्री उदयपुर शुभस्थाने सर्वोपमा बिराजमान लायक महाराजाधिराज महाराणाजी श्री शम्भूसिंहजी साहब बहादुर एतान कर्नल एलेक्जंडर रास अली

अट हचिसन साहब बहादुर कायम मुकाम पोलिटिकल एजंट मेवाड़ लिखता सलाम मालूम करावसी। यहां के समाचार भले हैं आपके सदा भले चाहिये। अपरंच, चिठी साहब एजंट गवर्नर जनरल बहादुर राजस्थान नं० ३६८ P हरुफ ता० १७ माह नवम्बर एक खरीता वास्ते आपके आया है जिसके मजमून से आपको मालूम होगा के श्री सरकार गवर्नमेन्ट की इजाजत से कोठारी केशरीसिंहजी प्रधान रियासत की बहाली उहदे मजकूर पर हुए हैं ये मुकदमा आपकी मर्जी माफिक खतम होना हमको खुशी हुआ। और इसकी मुबारिकबादी आपको है और मिजाज मुबारिक की खुशी का समाचार हमेशा ली० ता० २६ माह नवम्बर सं० १८६८ ईसवी मिती मगसर सुदि १२ सं०१९२५ मुकाम कोठी उदयपुर रोज बृहस्पतिवार।

इन उपरोक्त खरीतों के पढ़ने से पाठकों को भली भांति ज्ञात हो सकता है कि कोठारीजी के प्रति मेवाड़ राज्य और सरकार गवर्नमेंट की भी कितनी श्रद्धा व दृढ़ विश्वास था और मुख्यतः मेवाड़नाथ की कृपा का चित्र तो सहसा सम्मुख आ जाने में कोई कमी नहीं रह जाती है।

दरबार की पधरावणी।

संवत् १९२५ पौष कृष्णा ६ को महाराणा साहब का जनाना सहित कोठारीजी के यहां पधारना हुआ। दोनों वक्त गोठ अरोगे, खाजा लड्डू सब फ़ौज को वितीर्ण किये गये। इस गोठ में सत्तर मन पक्की खांड गली, जिसमें रुपये करीब बीस हज़ार खर्च हुए। जेवर तथा जनानी और मर्दानी सिरोपाव नज़र किये गये तथा घोड़ा जेवर सहित भी नजर किया गया। महाराणा साहब की तरफ़ से कोठारी छगनलालजी को मोतियों की कंठी और सिरोपाव दिया गया। और केशरीसिंहजी को मोतियों की कंठी सरपेच बख्शाया गया तथा रोजाना सीख के बीड़े का महत् मान भी अता फ़रमाया।

भीषण अकाल और कोठारीजी की प्रबन्धकुशलता।

जब कभी राज्यकार्य में जटिल समस्याएँ उपस्थित होतीं, उन्हें सुलझाने में कोठारी जी का मुख्य हाथ रहता था। वि० सं० १९२५ (सन् १८६८) में भयंकर अकाल के समय अन्न का प्रबंध कर प्रजा का दुख मिटाने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी महाराणा साहिब ने केशरीसिंहजी को सौंपा। उन्होंने उसे अपनी बुद्धिकुशलता और चातुर्य से पूरा कर दिया। इसके लिये रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा लिखते हैं कि 'वि० संवत् १९२५ के भयंकर अकाल के समय महाराणा की आज्ञा से केशरीसिंह ने सब व्यापारियों से कहा कि आप बाहर से अनाज मंगाओ। इसमे राज्य आपको रुपयों की सहायता देगा। इस पर व्यापारियों ने पर्याप्त मात्रा मे बाहर से अनाज मंगवाया, जिससे लोगों को अनाज सस्ता मिलने लगा'।

इसी अकाल के विषय मे कविराजा श्यामलदासजी ने स्पष्ट वर्णन किया है। उस पढते पढते नेत्रो से अश्रुधारा बहने और रोमाच होने के सिवाय और कोई बात बाकी नहीं रह जाती है। उस करुण दृश्य का वर्णन इस प्रकार है—

"वि० स० १६७६ क प्रारभ मे वि० सवत् १६७५ के अकाल का नतीजा जहूर में आया। याने बहुत से गरीब लोग फ़ाकाकशी से मरने लगे। पोलिटिकल एजेंट व कोठारी केशरीसिंह की सलाह से महाराणा साहब ने एक बहुत उम्दा इन्तज़ाम किया कि कानोड की हवेली में एक ऐसा खैरातखाना खोला, जिससे हजारों आदमियो की जानें बच गई याने एक धोवा भर कर बाक्ली 'पानी मे पकाई हुई मक्की' अथवा एक धोवा भर भूगडा 'भुने हुए चने' जो माँगे उसको देने का हुकुम हो गया। और इस नेक काम के इन्तज़ाम पर महता मोतीराम क बटे फूलचन्द को तेइनात किया। वहा जाकर हजूम देखने वालो को महाराणा साहब की फैयाज़ी और गरीब लोगों की तकलीफ़ का हाल अच्छी तरह मालूम हो सकता था। इसी इन्तजाम के सबब बदला के राव बख्तसिंह ने उदयपुर के रास्त पर और महाराज गजसिंह और दूसरे लोगो ने भी जहा मौका देखा, भूगडा देना शुरू किया। इसी मिसाल के मुताबिक चित्तौडगढ, भीलवाडा और कपासन वगैरह के साहूकारो ने भी खैरातखाना खोला। वि० सवत् १६७६ शुरू वैशाख से हैज़ा साहब भी मारे भूख क आ खडे हुए। शहर मे कोई मोहल्ला और गली कूचा ऐसा नहीं था कि जहा हाहाकार व रोन का शब्द न हो। जिसे रात को भला चगा देखा, फजर को नहीं है। लगभग २०० आदमी हर रोज मरने लगे। लाश को जलाने मे दोस्त व बिरादरी क लोग किनारा करने लगे। यहा तक कि बाज बाज शरीफ़कौम ब्राह्मण व महाजनों के घरों मे पहरो तक मुर्दा लाशें पडी रहीं। रात के वक्त मकान की छत पर से देखत तो श्मशानो की आग से पहाडों के दामन तक रोशनी होती दीख पडती थी। पीछोला तालाब भी यहा तक खुश्क हो गया था कि महाराणा साहब किश्ती के एवज जगनिवास से ब्रह्मपुरी की तरफ बग्घी सवार होकर जाते थे। तालाब के किनारों पर अशौच स्नान करने वाले औरत मर्दों का रात दिन ऐसा हजूम रहता था कि उनका रोना पीटना देखकर सख्त दिल आदमी की भी आखों से आसू आने लगते थ। पानी क किनारे कई मुर्दा लाशें पडी हुई रहतीं, जिनको कोतवाल शहर गाडियो मे भरवा श्मशानो मे पहुँचाकर इकट्ठा जलवा दता था। लाश जलाने वालो के नहाने के लिये सिवाय तालाब पीछोला क पानी कहीं नहीं मिलता। बाग़ बगीचे सूख गये थे। शहर के गिरदोनवह कुएँ बावडी भी खाली पडे थे। तालाब क किनारे बेरिया खोद कर शहर के लोग पीने के लिये पानी ले जाते। सब लोगो ने महाराणा साहब से कहा कि हजूर दस या पाच कोस दूर तशरीफ़ ले जावें, लेकिन उन्होंने मजूर

नहीं किया और यह जवाब दिया कि हम अपनी प्रजा को ऐसी तकलीफ़ में छोड़कर नहीं जा सकते। यह सब हाल मैंने अपनी आंख से देखकर उसका बहुत ही थोड़ा खुलासा दर्ज किया है। महाराणा साहब और अहलकार मुसाहिबों की तरफ़ से अच्छा इन्तज़ाम था। लेकिन कुदरती बदइन्तज़ामी का बन्दोबस्त नहीं हो सकता। इसके पृष्ठ २०८४ व २०८५ में वि० संवत् १९२६ का वर्णन इस प्रकार है :—

"विक्रमी सं० १९२६ में बारिश बहुत अच्छी हुई, मवेसियां मरने से बची व कीमती हो गई, मगर ग़रीब प्रजा की तकलीफ़ अभी तक दूर न हुई। वारिश के मौसम मे नाज पकने के पहले भूख ने दौरा किया, जिससे हज़ारों आदमी घरों के भीतर किवाड़ लगाकर सो गये, जो फिर कभी नही उठे। मै उन दिनों अपने छोटे भाई ब्रजलाल के गुज़र जाने और अठाना के रावत दुलहसिंह का इन्तकाल होने के कारण उदयपुर से मेवाड़ में गया था। चित्तौड़ व अठाना में लावारिस मुर्दों को कसरत के सबब जलाने के एवज भंगी घसीट कर गांव के कुछ बाहर डाल आते, जिनकी सड़ी हुई लाशों और हड्डियों को देखकर रहम आता था। मैंने अठाना में कई आदमियों को लड्डू और रोटियाँ दिलाईं, जिनको वे लोग बड़ी तेज़ी से दौड़कर लेते थे लेकिन मारे भूख के उनकी यह हालत हुई कि एक ग्रास मुँह में और एक हाथ में है कि जान निकल गई। वर्षात् ख़तम होने पर मक्का जवार वग़ैरा नाज खूब पक गया। पहले तो गरीब लोगों की अंतड़ियां मारे भूख के ख़ुश्क हो गई थीं, अब एक दम नया नाज कच्चा-पक्का मिला जो पेट भर कर खाया, जिससे बुखार वग़ैरा बीमारियों ने ऐसा ज़ोर पकड़ा कि हैज़े से भी ज्यादा लोगों का ख़ातमा किया। इससे भी हज़ारों आदमी मर गये, ख़ुद अंग्रेज़ लोगों ने आदमियों की ज़िन्दगी बचाने के लिये गवर्नमैण्ट इलाकों में लौंडी गुलाम खरीदने की इजाज़त दे दी। दो दो रुपये में लड़के बिकने लगे। ईश्वर ऐसा केहत अपने बन्दों को फिर न दिखलावे। इस ज़माने में महाराणा शंभूसिंह जैसा रहमदिल राजा और कोठारी केशरीसिंह जैसा इन्तज़ाम करने वाला प्रधान था जिससे फिर भी मेवाड़ में हज़ारों आदमियों की जाने बच गईं। लेकिन दुनिया में किसी को बेफ़िक्र रहने का मौका नहीं मिलता। बदखुवाह आदमी को उसकी बद-आदतों के सबब लोग ज़लील करते हैं और खैरख्वाह व नेक आदत आदमी को बहुत से खुदमतलबी लोग अपना मतलब न होने से ज़लील करते हैं। अलबत्ता दोनों ही नेकनामी व बदनामी दुनिया में छोड़ जाते हैं। कोठारी केशरीसिंह पर फिर हमले होने लगे, लेकिन महाराणा साहब के दिल पर उसकी ख़ैरख्वाही मज़बूत जमी हुई थी। इससे लोगों के कहने का असर कम हुआ। महाराणा साहब को शराब के नशे पर खुदमतलबी लोगों ने यहां तक बढ़ा दिया कि वे एकदम एक

बोतल पी लेते। छोटी अवस्था में इस नशे की ज्यादती ने तन्दुरुस्ती मे खलल डाला, फिर लोगों ने उनको ऐश व इशरत की तरफ़ लगा दिया। कहावत है कि आदमी का शैतान आदमी होता है, सोहवत का असर जरूर पहुँचता है। खुद महाराणा साहब ने मुझसे कई दफा फ़रमाया था कि खराब आदमियों ने मुझे ऐश व इशरत के नशे मे डाल कर खत्म कर दिया। हरेरिच्छा वलीयसी।"

कोठारीजी के निरीक्षण मे महाराणा साहब शम्भुसिंहजी ने कई कारखाने, राजकीय विभागो का नये सिरे से सुव्यवस्था कर सुधार किया और इनकी अधीनता में कई अफ़सरो को नियुक्त कर सब की व्यवस्था की। इसका वर्णन 'वीरविनोद[1] में इस प्रकार है —

कोठारीजी के निरीक्षण में महकमों की सुधारणा।

"वि० स० १९२८ आषाढ कृष्णा ६ को कोठारी केशरीसिंह की निगरानी मे कोठारी छगनलाल, महता गोपालदास, शाह जोरावरसिंह सुराणा, महता जालिमसिंह, कायस्थ राय सोहनलाल, कायस्थ मथुरादास, ढीकड़िया उदयराम, और भडारी नवलराम इन आठ आदमियो के सुपुर्द मुल्की व कारखानेजात का काम किया गया। इस समय तक महकमा खास का काम पूरी हालत पर नहीं पहुँचा था, लेकिन महता पन्नालाल की होशियारी से दिन व दिन तरक्की पर था और जनानी कार्रवाई कमज़ोर होती जाती थी। इसी वक्त से इन्तजामी हालत का प्रारम्भ समझना चाहिये। महाराणा साहब की दिली ख्वाहिश थी कि मेवाड मे अनाज बॉट लेने अर्थात् "लाटाकूता" का रिवाज बन्द हो जावे और किसानो से ठेकाबन्दी होकर नकद रुपया मुकर्रर किया जावे। लेकिन यह काम कुल रियासती अहलकारो के मशा के खिलाफ़ था। इसलिये महाराणा साहब ने अपनी दिली मन्शा कोठारी केशरीसिंह से जाहिर करके यह काम उसके सुपुर्द किया। उक्त कोठारी ने तन्देही और अक्लमन्दी के साथ गुजरे हुए दस साल की औसत निकालकर कुल मेवाड म ठका बाध दिया। अव्वल तो कोठारी केशरीसिंह तजुर्बेकार खैरख्वाह, रोबदार और अक्लमन्द आदमी था। दूसरे महकमा खास का अफ़सर उसके भाई का दामाद महता पन्नालाल और कोठारी छगनलाल वगैरह उसके बनाये हुए अहलकार उसके मददगार हो गये, जिससे यह काम अच्छी तरह चल गया। लेकिन ऐसे आदमी की कारगुज़ारी मे बखेडा डालनेवाले भी मौजूद थे तो भी उसने ठेके क बन्दोबस्त मे खलल नहीं आन दिया। मालिक की महरबानी उसके नेक चालचलन के सबब बढती गई, परन्तु ईश्वर ने उसकी जिन्दगी इसी वर्ष फाल्गुन

१ वीरविनोद पाचवा भाग पृष्ठ २१११

वदि ३ (ईस्वी १८७२ ता० २७ फरवरी) में ख़तम कर दी। उसका बांधा हुआ माली बन्दोबस्त उसकी अदम मौजूदगी में चार वर्ष तक चलता रहा।"

किसानों से अन्न का हिस्सा लेना बन्द कर ठेका करना चाहा किन्तु इसमें अहलकारों का स्वार्थ सिद्ध होने में बाधा पड़ती थी, अतएव इसका घोर विरोध किया गया, किन्तु महाराणा साहब ने यह काम भी कोठारीजी को सौंपा। इसके लिये राय बहादुर गौरीशंकर जी ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास जिल्द दूसरी पृष्ठ १०३१ में कोठारीजी के लिये स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि "महाराणा ने उनके निरीक्षण में अलग अलग विभागों की सुव्यवस्था की, और किसानों से अन्न का हिस्सा लाटा या कूंता बन्द कर ठेके के तौर पर नक़द रुपये लेना चाहा। सब रियासती अहलकार इसके विरुद्ध थे। इससे उनकी स्वार्थसिद्धि मे बाधा पड़ती थी। इसलिये इस नई प्रथा का चलना कठिन था। इसी से महाराणा ने कोठारी केशरीसिंह को, जो योग्य और अनुभवी था, यह काम सौंपा। इस कार्य में अनेक बाधाएं उपस्थित हुईं परन्तु उसकी बुद्धिमत्ता और कुशलता से वे दूर हो गईं और उसकी मृत्यु के बाद भी चार साल तक वही प्रबन्ध सुचारुरूप से चलता रहा।"

कोठारीजी की स्पष्टवादिता।

कोठारीजी स्पष्ट बात जतलाने में तनिक भी संकोच नहीं किया करते थे, न इसका विचार रखते थे कि इससे महाराणा साहब प्रसन्न होंगे या अप्रसन्न। सच्चे स्वामिभक्त सेवक का कर्त्तव्य है कि वह अपने मालिक को सच्ची बात कहने मे कभी हिचकिचाहट न करे। उदाहरणार्थ एक नज़ीर नीचे दी जाती है—

रायबहादुर गौरीशंकर जी ओझा उदयपुर राज्य के इतिहास में लिख रहे हैं कि "वि० सं० १९२६ ईस्वी सन् १८६९ में बागोर के महाराज समरथसिंह का देहान्त हुआ। उसके पुत्र न होने के कारण कई लोगों ने महाराज शेरसिंह के कनिष्ठ पुत्र सोहनसिंह को उसका उत्तराधिकारी बनाने की कोशिश की। इस पर बेदले के राव बख्तसिंह और कोठारी केशरीसिंह ने महाराणा से निवेदन किया कि जब समरथसिंह का छोटा भाई शक्तिसिंह विद्यमान है, तो सब से छोटे भाई सोहनसिंह को बागोर की जागीर न मिलनी चाहिये। यदि आपकी उस पर अधिक कृपा हो और उसे कुछ देना ही है तो जैसे उसे पहिले जागीर दी थी, वैसे उसे और दे दी जाय। पोलिटिकल एजेण्ट ने भी सोहनसिंह का विरोध किया तो भी महाराणा ने उसी को बागोर का स्वामी बना दिया"। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि महाराणा साहब की सोहनसिंहजी पर इतनी कृपा होते हुए भी सच्ची बात अर्ज करने में कोठारीजी ने संकोच नहीं किया, न सोहनसिंह जी के अप्रसन्न होने की ओर ही ध्यान दिया।

इसके अतिरिक्त कोठारीजी के स्पष्ट वक्ता, राज्य के सच्चे हितैषी और अपने स्वामी के सच्चे सेवक एवं राज्यभक्त होने के विषय में लेख को विशेष न बढाते हुए 'वीरविनोद' का एक चुटकुला ही लिख देना पर्याप्त है। वीरविनोद के पांचवें भाग पृष्ठ २०८० में स्पष्टरूप से लिखा है कि "वि० सं० १९२६ में लोगों ने एक और कार्यवाही करके महाराणा साहब को अपने काबू में करना चाहा अर्थात् एक सन्यासी फ़कीर जो कमल्या तालाब में आ बैठा था, उसको करामाती मशहूर किया। महाराणा साहब नवयुवक थे तथा बडे बडे आदमियों के धोखा देने से उस फ़कीर के कहे अनुसार महाराणा साहिब चलने लगे। वह गैब की तथा दूसरों के दिल की बातें कहता था, जो एक भी सच्ची नहीं निकलती थी। कुल रियासती अधिकारी उसकी खुशामद में लग गये। यह सब कारखानों से महाराणा साहब के मुआफिक हुकुम भेज कर अपनी इच्छा के अनुसार चीज मंगवा लेता। इसी तरह खजाने की तरफ भी हुकुम दिया। लेकिन कोठारी केशरीसिंह ने इन्कार करके कहा कि "महाराणा साहब की आज्ञा की तामील होती है, उसी एक आज्ञा की तामील करने में इन्कारी नहीं और हम दूसरा हुकुम नहीं मानते"। इस पर वह फ़कीर गुस्से होकर बहुत झुंझलाया। कोठारी के दोस्तों ने भी सलाह दी कि वक्त देखकर चलना चाहिये, लेकिन उसने कुछ परवाह न की। अंत में वह फ़कीर उदयपुर से निकाला गया, जिसका सब हाल लिखा जाने में तवालत के सिवाय और कुछ नहीं।"

प्रधानगी से इस्तीफा।

अपनी अस्वस्थता के कारण सं० १९२७ के श्रावण कृष्णा २ को कोठारीजी ने प्रधानगी के काम से इस्तीफा पेश किया[1] और इनके स्थान पर महता गोकुलचंद्रजी व पंडित लक्ष्मणरावजी नियुक्त हुए। किन्तु इसी वर्ष कार्तिक कृष्णा १ को अजमेर लाट साहब के आम दरबार में महाराणा साहब का पधारना हुआ। इसकी तैयारी का कुल

---

१ इसका वर्णन वीरविनोद में इस प्रकार है—"वि० सं० श्रावण कृष्णा २ को कोठारी केशरीसिंह ने प्रधाने से इस्तीफा पेश किया। महाराणा साहब अव्वल दर्जे के बुर्दबार थे और किसी का लिहाज नहीं तोड़ते यहां तक कि उनके दिल पर असर रखने वाले आदमी दिल चाहे जिस किस्म का हुक्म दिला सकते थे और कोठारी केशरीसिंह किसी से नहीं दबता लेकिन अपने मालिक के हुक्म की तामील दिल से करना चाहता। वह अपने मालिक का मालिक बनकर काम नहीं करता बल्कि अपने मालिक का नौकर बनकर रहता था। अगर मालिक का नुक्सान देखता तो फौरन खानगी में नफा नुक्सान बतलाकर अर्ज कर देता। वह अपनी अदावत या मुहब्बत के सबब मालिक की मर्जी के बरखिलाफ कार्यवाही कभी नहीं करता।"

प्रबन्ध इनके अधीन कर फ़ौज के मुसाहिब भी कोठारीजी को बनाया गया। यह कार्य उन्होंने सफलतापूर्वक संचालित किया।

कोठारीजी पर दण्ड।

महाराणा साहब शंभुसिंहजी जिन्होंने कोठारीजी को प्रधान बनाने की खुशी में पचास हज़ार रुपये अपने इष्टदेव के भेंट किये, किसे अनुमान हो सकता है कि उन्हीं मालिक के हाथों कोठारीजी पर दंड होगा। दुश्मनों का चक्कर चलता ही रहा और महाराणा साहब के पास शिकायतें कर फाल्गुन कृष्णा १३ संवत् १९२७ को कोठारीजी पर तीन लाख रुपयों का दंड करवा दिया और प्राचीन प्रथा के अनुसार कपूर के नज़राने के नाम से रुक्का लिखवाया गया। यह रुक्का छगनलालजी व केशरीसिंहजी दोनों भाइयों से लिखवाया गया था। समय पाकर दुश्मनों के बादल वापिस हटने लगे और महाराणा साहब को पुनः दोनों भाइयों के प्रति प्रेम व श्रद्धा होने पर इसी साल आषाढ़ महीने में अहलियान दरबार को तोड़ नये सिरे से आठ महकमे कायम किये गये। यह सब कोठारीजी के अधिकार में किये जाकर इनमें से भी मुख्यतः महक्मे-माल का काम कोठारी केशरीसिंहजी और देवस्थान का काम कोठारी छगनलालजी के सुपुर्द किया व दोनों भाइयों को मोतियों की कंठियां बख्शी गईं।

दंड में से कुछ छूट।

संवत् १९२८ के श्रावण मे तीन लाख के दंड मे से एक लाख रुपया छोड़ दिया गया और डेढ़ लाख रुपया कोठारी केशरीसिंहजी व पचास हज़ार छगनलालजी को जमा कराने पड़े। एक लाख रुपया जो छूट हुआ वह भी कविराजा श्यामलदासजी व कर्नल निक्सन की सिफ़ारिश का कारण था। सच्चे और स्वामिभक्त सेवक भी दिन उलटे आने पर किस प्रकार दुश्मनों की गोली के निशाने बनते हैं, इसके लिये स्पष्ट शब्दों में राय बहादुर गौरीशंकरजी ओझा मेवाड़ के इतिहास में लिख रहे हैं कि "केशरीसिंह ने प्रधान के पद से इस्तीफ़ा दे दिया तब महाराणा शंभुसिंह ने उसका काम गोकुलचंद्र व लक्ष्मणराव को सौंपा। कोठारी केशरीसिंह पर महाराणा विशेष कृपा रखता था। इससे कुछ पुरुषों ने द्वेष के कारण महाराणा को यह सलाह दी कि किसी तरह बड़े बड़े राज्य-कर्मचारियों से दस-पंद्रह लाख रुपये एकत्रित कर लेने चाहिएँ। इन लोगों की बहकावट में आकर महाराणा ने अन्य कर्मचारियों के साथ कोठारी केशरीसिंह और उसके भाई छगनलाल से तीन लाख रुपये का रुक्का लिखवा लिया परन्तु कविराजा श्यामलदास व कर्नल निक्सन के कहने से महाराणा ने उनमे से एक लाख रुपया छोड़ दिया।"

समार में राज्यसम्बन्धी विविध वातावरण में कोई स्वामी (राजा) के प्रतिकूल एवं अनुकूल होते ही हैं। किन्तु वशपरम्परा के अनुसार कोठारीजी किसी यूथ मे न थे। इनका यूथनभ तो केवल अपने स्वामी की तन, मन और धन से सेवा करना ही था। कोठारीजी के हितचिन्तकों अथवा सनातनियों मे से बाबाजी दलसिंहजी व गजसिंहजी देवगढ रावत रणजीतसिंहजी सरदारगढ ठाकुर मनोहरसिंहजी वेदले राव बख्तसिंहजी, पुरोहित श्यामनाथजी, कविराजा श्यामलदासजी, महता माधूसिंहजी ढींकडिया तेजरामजी व उदयरामजी और भट सपतरामजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये कुल ही मित्र अथवा सनातनी ऐसे थे, जो आजन्म राज्य के हितैषी और अपने मालिक के सच्चे सेवक बने रहे।

(कोठारीजी के मित्र व सनातनी।)

कोठारी केशरीसिंहजी और छगनलालजी ने अपनी माता को माघ कृष्णा अमावस्या स० १९२६ महोदधि पर्व के दिन तुला बिठाकर उनके वजन के बराबर दस हजार सात सौ रुपये तोल श्री एकलिंगजी में भेंटकर इस तरह का प्रबन्ध करा दिया कि इस धन के ब्याज से कैलाशपुरी मे श्री परमेश्वरों की तरफ से हमेशा सदाव्रत दिया जाया करे और यह सदाव्रत हर अतिथि के लिये सदा खुला रहे। इसके लिये महाराणा जी श्री शभुसिंहजी से अर्ज करा ताम्र-पत्र भी करवा दिया[1] गया।

(एकलिंगजी में कोठारीजी का सदाव्रत।)

[1] "महाराजाधिराज महाराणा जी श्री शँभूसिंहजी आदेशात् श्री जी का भडार का कामदारा कश्य कोठारी छगनलाल केशरीसिंहजी की मा ने स० १९२६ का माघ विद अमावस महोदधि पर्वणी के दिन तुला बिठाय रुपया दस हजार सात सौ श्री परमेश्वरा में ई मुनिव भेंट कीदा।

गाव व जावू को तलाव रूपनगर के पटा को गर यान गेगे हो जीरी सदा रूपनगर सोलकी वेरीसालजी सुदा गाव भेंट करयो हाल पेदास रुपया ७०० सात सौ।

गाव गल्ला का गरासीया की जमीन काला खेता की बीघा ८०० आठ सौ रुपया २२०१ बाइ सौ एक मेगल्यान गेगे सो जमीन गरासीया का खत सुदा भेंट करी जीको हाल पेदास रुपया ३०० तीन सौ।

रुपया १५०० पदराहसौ रोकडा जीरी टीप साहुकारी पारख हरिदास गोवर्द्धनदास की ब्याज प्रत आठ आना सैंकडा की।

ऊपर लिख्या मुजब भेंटकर ऐसी चाल बाँध दीदी के गाव व जमीन का हासल और रोकड रुपया रा ब्याज में श्री कैलाशपुरी सदाव्रत सदा दीजो। श्री परमेश्वरा की तरफ सू अलाहदी अर भेंट की जो रकम श्री परमेश्वरा में जमी रेवे जीरो ताम्र पत्र करा देवा वावे अन कराई जींसू यो ताम्र पत्र कर देणाणो हे सो ऊपर लिख्या मुजब

होते होते इस सदाव्रत मे हजारों रुपये हो चुके हैं और अनेक दुःखी भूखे मनुष्यों को कैलाशपुरी में नित्य अन्नदान मिलता है। यह सदाव्रत 'कोठारीजी की सदाव्रत' के नाम से प्रसिद्ध है।

एकलिंगेश्वर में बगीची भेट करना।

कोठारीजी ने अपने इष्टदेव श्री एकलिंगजी के फल पुष्प सेवा के निमित्त कैलाशपुरी मे इन्द्रसागर की पाल के नीचे एक बाड़ी भेंट की है, जिसमें भैरूंजी श्री उमरीयाजी का स्थान है। इससे अब तक नित्य श्री परमेश्वरों में सेवा के लिये पुष्प वगैरह पधराये जाते हैं।

भूमिदान।

कोठारीजी ने अन्तिम समय अपने जागीरी के ग्राम नेतावला में ७॥ बीघा भूमि दान मे देने का संकल्प कर २॥ बीघा गुर्जरगौड़ ब्राह्मण जगनेश्वरजी २॥ बीघा चतुर्भुजजी खंडेलवाल और २॥ बीघा गुर्जरगौड़ ब्रजलाल जी को दी।

गांव जमीन में अमल कर रोकड़ रुपया भंडार जमा कर सदाव्रत गांव जमीन का हासल व रुपया का ब्याज में हमेशा दी जावेगा या बात उथापेगा नहीं यो पुन श्री जी को है।

स्वदत्ता परदत्ता वा ये हरन्ति वसुन्धराम्।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥१॥

प्रत दुवे महकमाखास लिखता पंचोली रामसिंह सूरतसिंगोत सं० १९२८ वर्षे वैशाख विद् ३ शुक्रे।

ताम्रपत्रों की नकलें—

१ श्रीगणेशजी प्रसादात् श्रीरामो जयति श्रीएकलिंगजी प्रसादात्
नंबर ९

भाला
सही

महाराजाधिराज महाराणा जी श्री शंभूसिंघ जी आदेशात् बामण जगनेसर डुंगारा न्यात गुजरगोड़ कस्य कोठारी केशरीसिंघ अन्त समे जमी बीघा ७॥ को संकल्प करयो जी महेसु जमी बीघा २॥ अढ़ाई वांरा पटारा गाम नेतावला में गुजर परथ्या चुत्रभुजरा कुड़ा पर खेत। मपाय दीदो जींरा पाडोसई मुजब।

उगमणो पाडोसतो बामण चतुरभुजरे खेत मप्यो जीरो।

आथमणो पाडोसमीणा ऊमलारा खेत रो धराऊ पाडोस गुजर परथ्यारो खेत बामण ब्रजलालरे मप्योजीरो।

लंकाऊ पाडोस गुजर परथ्यारा खेतरो—

ईचार पाडोस वचली जमी वराड़ सुदी थने श्री रामार्पण कर दीदी अर तांवापत्र कराय बगसवातावे कोठारी छगनलाल बलवंतसिघ अरज कराई जीसू यो तांवापत्र कर बगस्यो हे सो अमल करजेयो पुन श्री जीरोहे।

कोठारी जी का लक्ष्य धर्म की ओर विशेष रूप से रहता था। वैसे तो महाजन एव ओसवाल होने से श्वेताम्बरी मन्दिरमार्गी मूर्ति-पूजक धर्म था ही लेकिन कोठारीजी की मुख्य साधना व इष्ट श्री एकलिंगजी का था। समय समय पर वर्ष मे कई बार आप दर्शनार्थ एकलिंगजी जाया करते थे। प्राय नित्य ही आपके घर के द्वार पर दीन दु:खी भूखे अतिथि का आदर किया जाता और उसकी तृप्ति कर विदा किया जाता। क्योंकि कहा भी है कि—

कोठारीजी का धर्म।

स्वदत्ता परदत्ता वा ये हरन्ति वसुन्धराम्।
पष्ठिवर्षसहस्राणि विष्ठाया जायते कृमि ॥

प्रतदुवे महकमे खास लीखता पचोली राम्सिंघ सुरतसींघोत सवत् १९२८ वर्षे जेठ सुदी ७ गुरे श्री मोहोर महकमे हिसाबदफतर रगमी के दफतर खातेमण्डी महकमे माल में न० ४६ सवत् १९२८

श्रीगणेशजी प्रसादात् श्रीरामो जयति श्रीएकलिंगजी प्रसादात्

भाला

सही

श्री महाराजाधिराज महाराणा जी श्री शभूसिंहजी आदेशात् ब्रामण बरजलाल मोदारा जात गुजर गोड़कस्य कोठारी केसरीसिंघ अन्त समे जमी बीगा ७॥ को सकल्प करयो जीमेसु जमी बीघा २॥ अढ़ाई बीगा बीरा पटारा गाव नेवातला में गुजर परथो चतरभुज चेचीरा कुश पर मपावे दीदी तफसील हर खेत की—

	धाप	कड	बीगा
खेत १	१॥।)	॥।)	॥) २॥
खेत १	१)	॥ १	॥ १
खेत १	॥। ३	॥) १॥	॥।)॥ २॥

जमे बीघा अढ़ाई सो पाडोसइ परमाणे—

उगमणो पाडोस गुजर परथा चेचीरा खेत को।
आथमणो पाडोस मीणा उमल्या मावारा खेत को॥
धराउ पाडोस माली सवा बारा खेत को।
लकाऊ पाडोस गुजर परथा चेची का खेत को॥

ईंच्यार पाडोसा वचली जमीन बराड सुदी थने रामापण कर दीदी ओर तांबापत्र कराय वक्षावताबे कोठारी छगनलाल बलवतसींघ अन कराइ जींसू यो ताबापत्र कर रगस्यो हेमो अमल करजेयो पुन श्रीजीरोहे।

"अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥"

स्वदत्तां परदत्तां वा ये हरन्ति वसुन्धराम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ॥

प्रतदुवे महकमा खास लिखतां पंचोली रामसिंघ सूरत सिंगोत संवत् १९२८ जेठ सुदी ७ गुरे ।

श्रीमोहर महकमे हिसाव दफतर—वगसी के दफतर ।
संवत् १९२८

महकमे माल में खाते मण्डी
नं० ४७

श्रीगणेसजी प्रसादात् श्रीरामो जयति श्रीएकलिंगजी प्रसादात्

भाला

सही

महाराजाधिराज महाराणा जी श्री शंभूसिंह जी आदेशात् वामण चुत्रभुज मोजीराम राजात खंडेलवाल कस्य कोठारी केसरीसिंह अन्त समे जमी वीघा ७॥ को संकल्प करयो जी महेसु जमी बीघा २॥ अढ़ाई वीरा पटारा गाम नेतावला में गुजर परथ्या चुत्रभुज चेचीरा कुडा प्रखेत १ मपाये दीदो जींरा पाडोसई मूजव ।

ऊगमणो पाडोसतो पड़त खेत जमीरो
आथमणों पाडोस वामण व्रजलालरे खेत
मण्यो जीरो वा जगनेसर का खेत को
धराऊ पाडोस गुजर परथ्यारो खालसाई खेत को
लंकाऊ पाडोस गुजर पीथ्यारा खेत को

ईच्यारही पाडोस वचली जमी वराड़ सुदी थने श्रीरामार्पण करदीदी अर तांवापत्र कराय बगसवा तावे कोठारी छगनलाल बलवंतसिंह अरज कराई जींसू यो तांबापत्र कर बगस्यो हेसो अमल करजे यो पुन श्री जीरोहे ।

स्वदत्तां परदत्तां वा ये हरन्ति वसुन्धराम् ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ॥

प्रतदुवे महकमे खास लिखतां पंचोली रामसिंह सुरतसिंघोत संवत् १९२८ वर्षे जेठ सुद ७ गुरे ।

श्रीमोहर महकमे हिसाव दफदर १९२८
वगसी के दफतर मण्डी महकमे माल में खाते मण्डी
नंबर ४८

आर्थिक स्थिति।

कोठारी केशरीसिंहजी के समय मुख्य आमदनी जागीर के गाव बोराव और नेतावला की थी। इसके अतिरिक्त कोठारीजी मुख्तलिफ तौर से समय समय पर जमीन, गाव, दुकान, मकान इत्यादि लोगो से गिरवी रख उनके व्याज की आमद से अपने निजी व्यय मे सहायता लेते थे।

कोठारीजी का विवाह और उत्तराधिकारी की नियुक्ति।

कोठारीजी का पहला विवाह शाह शिवलाल जी नाहर की कन्या जवेरकुँवर से हुआ। किन्तु थोडे ही समय में उनका देहान्त हो जाने से दूसरा विवाह जालमजी मट्टा की कन्या इन्द्रकुमारी से स० १८६६ में हुआ। इनसे कई सन्तानें हुई लेकिन सब शान्त हो गई। केशरीसिंहजी के अन्त तक सिर्फ दूसरे विवाह से दो कन्याएँ—नजरकुँवर और हुक्मकुँवर—रहीं। इसके सिवाय कोई जायन्दा पुत्र न रहा। कोई पुत्र न होने से इन्होंने अपनी मृत्यु के तीन चार वर्ष पहले गोद लेने का विचार कर अपने भाइयो में से पॉच चार लडको को अपने पास रखना शुरू किया। उनमे से बलवन्तसिंहजी भी एक थे। इन सब बच्चों को खिलाना, पिलाना, सुलाना वगैरह सब कार्य अपने ही पास किया करते थे। केशरीसिंहजी को ज्योतिष का पर्याप्त ज्ञान था और वे इस विषय में अच्छा बोध रखते थे। अत ग्रहगोचर उत्तम देख कोठारीजी ने बलवन्तसिंहजी को गोद लेना निश्चय किया, किन्तु केशरीसिंहजी की पत्नी की इच्छा बलवन्तसिंहजी को गोद लेने की नहीं थी, तथापि अन्त मे कोठारीजी ने यही निश्चय किया कि इसमे कोई सन्देह नहीं है कि मेरे पीछे उक्त बालक व मेरी पत्नी मे परस्पर कदापि मेल न रहेगा और सारा घर पत्नी बरबाद करेगी। किन्तु कहावत है कि 'पूत सपूत तो धन काहे को सचे, पूत कपूत तो धन काहे को सचे' इसी के अनुसार ग्रहचार को देखते हुए उन्होंने कहा कि 'मैं इसी बालक को गोद लेने का निश्चय करता हूँ'। आश्विन स० १६२८ मे कोठारीजी को ज्वर एव दस्तों की बीमारी शुरू हुई। और जब वह बढती ही गई तो इन्होंने अपनी पूरी सावचेती की हालत में पौष शुक्ला पूनम संवत् १६२८ को अपनी पत्नी की इच्छा के विपरीत कोठारी बलवन्तसिंहजी को गोद रख लिया और माघ कृष्णा १ को महाराणा साहब में नजराना करवा दिया। इनका नाम पहले ख्यालीलालजी था परन्तु श्रीजी हुजूर ने नाम बलवन्तसिंहजी बख्शा।

कोठारीजी के शादी के समय।

कोठारी केसरीसिंहजी ने अपने पिता पन्नालालजी के करियावर का जीमन संवत् १६०७ श्रावण शुक्ला ६ के दिन किया। उसमे ५१ मन खाड डाली गई और इस अवसर पर राज्य से दो हज़ार रुपये बख्शे गये।

केशरीसिंहजी की वड़ी कन्या नजरकुंवर का विवाह उदयपुर में मेहता रघुनाथ-सिंहजी कटारिया से संवत् १९१५ में हुआ और छोटी कन्या हुकमकुंवर का विवाह संवत् १९२४ वैशाख सुदि ३ को कटारिया मेहता गोविन्दसिंहजी से किया गया। इस विवाह में राज्य से बींद (वर) को मोतियों की कंठी सिरोपाव तूरी छोगा व बाई के तिमनिया और पटे का सिरोपाव व जनानी ड्योढ़ी से भी खासा सिरोपाव वख्शा गया। विवाह में कुल १८०००) रुपया खर्च हुए और भात मे सौ मन खांड डाली गई। इन दोनों ही विवाहों में कोठारीजी को दो दो हजार रुपये राज्य से वख्शाऊ वख्शे गये।

केशरीसिंहजी की माता की मृत्यु संवत् १९२८ पौष कृष्णा १४ के दिन हुई और उनका करियावर (बावनी) माह वदि ४ को की गई। उसमें करीव साढ़े बारह हजार रुपये खर्च हुए और कुल ही रुपये तत्कालीन महाराणा साहव ने कृपा कर राज्य से वख्श दिये। खांड २२५ मन गाली गई और महासतियों में इनकी आठ खंभों की छतरी वनवाई।

कोठारीजी की बीमारी, महाराणा साहव की आराम पुरसी व कोठारीजी की मृत्यु।

कोठारी केशरीसिंहजी को आश्विन संवत् १९२८ से ज्वर एवं दस्तों की बीमारी हुई और वह दिन दिन वढ़ती ही गई। इस समय महाराणा शंभुसिंहजी कोठारीजी की अपूर्व व उत्तम सेवाओं का स्मरण कर इनका आराम पूछने को हवेली पधारने लगे, तो कोठारीजी को ज्योतिष का विशेष ज्ञान होने से अर्ज करा दी कि अभी हुजूर तकलीफ़ न फ़रमावें। जव मेरी अन्तिम अवस्था होगी तव दर्शन देने के लिये खुद ही अर्ज करा दूंगा। वीच मे कोठारीजी की अवस्था सुधर भी गई। लेकिन वाद में वीमारी फिर वढ़ने लगी तथा अपना अन्तिम दिन निकट समझ उन्होंने माघ शुक्ल मे श्री जी हजूर में अरज कराई। अतः महाराणा साहव श्री शंभुसिंहजी कोठारीजी के आरामपुरसी करने एवं दर्शन देने हवेली पधारे और उनकी पूरी तरह खातरी कर कुटुम्बियों के लिये तसल्ली बँधा वापस महलों मे पधारे। इसके वाद फाल्गुन कृष्णा २ के दिन पिछली रात्रि को तृतीया मे कोठारी केशरीसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। फाल्गुन कृष्णा तीज के दिन आपका गंगोद्भव महासतियों मे दाहसंस्कार सनातन रीति से किया गया। आपके करियावर के भोज मे १५०००) रुपये वलवंतसिंहजी ने खर्च किये और गंगोद्भव मे आठ खंभों की छतरी (स्मारक) बनवाई।

कोठारीजी का व्यक्तित्व।

कोठारी केशरीसिंहजी का कद मझोला, रंग गोरा, आँखें लम्बी वड़ी, दाढ़ी विशाल, वदन कसरती गठीला एवं भरा हुआ, भुजदण्ड सुदृढ़ व गोल थे। उनको देखते ही सहसा एक प्राचीन समय के सामन्त का प्रत्यक्ष स्वरूप सामने आ जाता था। आपके तेजस्वी ललाट

पर भस्मी का त्रिपुण्ड्र एव कमर की बिन्दी तथा गले मे रुद्राक्ष की माला रहती थी जो नित्य आपको शिव धर्म क उपासक होने की साक्षी देती थी।

ये बड़े ही न्यायशील, स्पष्टवक्ता, दूरदर्शी, विचारशील, मेधावी, धीर, वीर, गभीर और उग्रबुद्धि के महापुरुष थे। ये ससार की कसौटी पर खूब कसे हुए थे। शीत, घाम, वर्षा तथा लहलहाते हुए उपवन व सूखे नालो के दृश्य आपके जीवन के अणुओं मे कूट-कूटकर भरे हुए थे। आपने किस गरीबी की हालत से उच्चपद प्राप्त किया और किस सफलतापूर्वक उसे सचालित किया इसका अनुभव उस समय के व्यक्तियों को ही पूर्णतया होगा। आपने अनेको प्रकार के महान् कष्ट सहन किये। किन्तु कभी अपने स्वामी से विमुख हो आप अपनी स्वार्थसिद्धि मे नहीं लगे। आपने अपने धर्म और उपासना के लिये भी उसी इष्टदेव का आश्रय लिया, जिसके उपासक व आराधक आपके स्वामी थे। कष्ट ही मनुष्य की कसौटी है। अग्नि ही सुवर्ण को चमकता हुआ बना जगत् के सामने रखती है किन्तु अग्निकुड मे उतरना इस प्रश्न को हल करने में विरले पुरुष ही समर्थ हो सकते हैं। सुख व दु:ख मनुष्य-जीवन मे होना एक मामूली बात है और प्रत्येक मनुष्य को जीवन-क्षेत्र मे दोनो का सामना करना पडता है किन्तु सुख और दु ख का समान भाव से सामना करना ही महापुरुषो का महत्त्व है। कहा भी है कि—

> सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च धीरत्वम्।
> त भुवनत्रयतिलक जनयति जननी सुत विरलम्॥

कोठारीजी ने अपना धर्म, कर्म, आचार, विचार सब वही रक्खे, जो इनके स्वामी को रुचिकर थे। यहा तक कि इनके मित्र भी वही हुए, जो स्वामी के परम भक्त थे और ऐसा होना भी चाहिए था। कारण, जिसने अपना सर्वस्व स्वामिहित अर्पण कर दिया, फिर उसके लिये दूसरी बात रह ही क्या जाती है। कोठारीजी ने सारी उम्र एक निश्चल भाव से स्वामिभक्ति के साथ राज्य की सेवा की। यही कारण था कि आप इतना उच्चपद प्राप्त कर सके। आपको हिन्दी का मामूली ज्ञान था किन्तु बुद्धिक्षेत्र विशाल होने से आपके सामने जटिल समस्याएँ भी सरल हो जाती थीं। आपकी आकृति ऐसी भव्य व प्रभाव ऐसा महान था कि आपके सामने किसी को बोलने का साहस न होता था। आपके मुख से कभी हलकी बात नहीं निकलती थी। आप प्राय राजसेवा, ईशसेवा, जातिसेवा व सोच-विचार मे ही मग्न रहा करते थे। प्रजा के हित पर भी प्राय विचार करते और प्रजा हित-साधन के उपाय भी किया करते थे। यही कारण था कि आप राजा तथा प्रजा के प्रीतिभाजन बने। अलबत्ता, स्वार्थी लोग आपसे शत्रुता रख बुरा करने और अपना शिकार बनाना चाहते थे। किन्तु अपने स्वामी की अटल कृपा एव

घर का फ़जीता कराने, तथा धन को बर्बाद करा अपना पेट भरने की फ़िकर हो रही थी। तात्पर्य यह कि कोठारीजी की आयुवृद्धि के साथ ही साथ इन क्लेशों की भी वृद्धि होने लग गई थी।

जब कोठारीजी की अवस्था १० वर्ष की थी तब सं० १६२८ में केशरीसिंहजी का तथा इनके पौने तीन वर्ष बाद महाराणा साहब शंभुसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। अतः आश्विन कृष्णा १३ सं० १६३१ में बागोर के महाराज शक्तिसिंहजी के पुत्र सज्जनसिंहजी मेवाड़ की गद्दी पर विराजे।

महाराणा साहब सज्जनसिंहजी का राज्यारोहण।

कोठारीजी प्रारंभ से ही स्पष्टवक्ता एवं शुभ विचारों के धनी थे। संतोषरूपी अमृत की घुटी तो आपको जन्म से ही क्या मेरे अनुमान से तो मानो परम पिता परमात्मा ने गर्भ में ही पहुँचा दी थी। जिस किसी को आपके साथ थोड़े दिन भी रहने का अवसर मिला, उसको आपके संतोषामृतरूपी रसपान करने का अनुभव अवश्य हुआ होगा।

आपकी १३ वर्ष की आयु—जो अधखिली कलिका के समान थी,—में ही तरह तरह के विचार अधखिली हृदयरूपी कलिका को विविध मार्गों मे ले जाने के लिये उत्पन्न होने लगे। इधर कोठारणजी (केशरीसिंह जी की धर्मपत्नी) का आपके साथ वैमनस्य बढ़ते बढ़ते इतना बढ़ गया कि कुछ वर्षों में कोठारी केशरीसिंहजी जैसे महापुरुष का हरा भरा घर दुष्टों ने खाक में मिलवा दिया। लोगों के घर बन गये तथा शत्रुदल को इस कार्य मे पूर्ण सफलता मिल गई। घर की ऐसी डावांडोल स्थिति मे विद्याध्ययन का प्रबन्ध भी जैसा चाहिये था, वैसा न रह सका और टूटने लगा।

शत्रुदल की असफलता।

महाराणा साहब सज्जनसिंहजी से आपकी कोई जान-पहिचान तो न थी किन्तु महाराणा साहब के गद्दी विराजते ही आपके प्रति दया, कृपा एवं सहानुभूति बढ़ चढ़ कर इतनी हुई कि वह दिनों दिन विस्तृत होती गई, और ज्यों ज्यों शत्रुगण आपके लिये अधःपतन का मार्ग तैयार करते गये त्यों त्यों उनके लिये उन्नति का मार्ग खुलता और साफ़ होता गया।

उस समय की ऐसी विकट परिस्थिति को देखकर महाराणा साहब सज्जनसिंह जी ने विचार किया कि अब कोठारी जी के लिये विशेष विद्याध्ययन की आशा करना व्यर्थ है। कारण इधर माँ बेटे के झगड़े से घर बिगड़ रहा है। ऐसी स्थिति में विद्याध्ययन चालू रहना कठिन है। कोठारीजी को मानसिक क्लेश लगे हुए हैं। अतः कोठारी केशरीसिंहजी

कविराजाजी का निरीक्षण।

महाराणाजी श्रीसज्जनसिंहजी

व बलवतसिंहजी के पके हितचिंतक महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी को कोठारी जी के लिये निगरानी पर नियत कर दिया। कविराजाजी का कोठारीजी के साथ इतना घनिष्ठ प्रेम था कि उन्होंने हमेशा कोठारीजी को अपने पुत्र से भी बढकर बरता और कोठारीजी भी उनको पिता तुल्य मान नित्य उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते थे। कविराजाजी का प्रेम कोठारीजी के प्रति इतना बढा चढा था कि उनके प्रसिद्ध श्यामल बाग से प्रतिदिन दो पुष्पहार एवं फल फूल की दो डालिया बनकर आती थीं। उनमें से जब तक कविराजाजी जीवित रहे, तब तक एक हार व एक डाली नित्य कोठारीजी के पास भेजते। शायद ही कोई दिन ऐसा बीता हो कि जिस दिन कविराजाजी व कोठारीजी दिन में घंटे दो घंटे शामिल न रहे हो या न मिले हो।

महाराणा साहब सज्जनसिंहजी ने पूर्ण कृपा कर कोठारीजी की १३ वर्ष की अवस्था में उन्हें काम सिखाने के लिये अपने पास हाजिर रखने के कोठारीजी को राज्य अलावा जहां कहीं बाहर पधारते उन्हें अपने साथ ले जाते तथा सेवा में पदार्पण। महकमाखास के तत्कालीन मंत्री महता पन्नालालजी[1] के पास जाने का हुकुम दिया। आप ४—५ दिन तक महक्माखास में गये भी सही किन्तु वहां पर आपकी न पटने से अर्ज की कि मैं महक्माखास में नहीं जाना चाहता हूँ, किसी दूसरी जगह हुकुम हो। इस पर कुछ दिन अदालत दीवानी में राय सोहनलाल

१ बछावत महता पन्नालालजी के पिता का नाम मुरलीधरजी था। पन्नालालजी बाल्यकाल ही से तेज, जहीन और होशियार थे। महाराणा साहब शम्भुसिंहजी के राज्यकाल में जब महक्माखास कायम किया गया, तब कोठारी केशरीसिंहजी ने अपने बड़े भाई छगनलालजी के दामाद होने के कारण इन्हें महक्माखास में मन्त्री के स्थान के लिये महाराणा साहब के सामने पेश किया और इनकी नियुक्ति मन्त्रिपद पर हुई। इसके लिये वीरविनोद में भी इस प्रकार वर्णन है—"कोठारी केशरीसिंह के प्रधाने के समय विक्रम सं० १९२६ पौष कृष्णा ५ को महक्माखास के नाम से एक कचेहरी कायम हुई, जिसमें हुकुम देने वाले तो खास महाराणा साहब और सेक्रेट्री महता पन्नालाल बनाया। यह शख्स कोठारी केशरीसिंह के बड़े भाई छगनलाल का दामाद, होशियार और नौजवान अहल्कार जानकर इस काम के लिये चुना गया जो महता अगरचन्द के भाई की औलाद में महता मुरलीधर का पुत्र है। इससे कोठारी केशरीसिंह ने भी अपने बड़े भाई का दामाद होने के सबब पसन्द किया।" बाद में प्राचीन रीति के अनुसार प्रधान का पद टूट कर महक्माखास के मन्त्री ही मुख्य अमात्य की जगह माने जाने लगे। इस पद पर ये तीन महाराणाओं के राज्यकाल में लगभग २५ वर्ष तक रहे। सं० १९५१ के भाद्रपद शुक्ला १ को इनके स्थान पर कोठारी बलवन्तसिंहजी और सहीवाला अर्जुनसिंहजी की नियुक्ति हुई।

जी के पास काम सीखने गये। किन्तु वहां पर भी दिल न लगने तथा दीवानी के काम में दिलचस्पी न होने से पुलिस के तत्कालीन सुपरिन्टेन्डेन्ट मौलवी अबदुलरहमानखां जी के पास पुलिस का काम सीखने का श्री जी हुजूर से हुकुम हुआ। अतः आपने महक्माखास व दीवानी या यों कहिये दीवान के वा दीवानी के दोनों ही महक्मों को छोड़ पुलिस में काम सीखना शुरू किया। वहां कुछ दिन आपने रोज़नामचे का काम किया। तत्पश्चात् आपसे कोतवाल शहर का काम लिया गया, जिससे आपको रात रात भर गश्त लगानी पड़ती और सारी रात जागरण में ही व्यतीत करनी पड़ती थी। आपको सर्दी के मौसम मे सर्दी का भी अच्छा अनुभव हो जाता था। कारण कि आप दस हज़ार के जागीरदार थे। साहबेहैसियत घर के मालिक थे। प्रधान के पुत्र थे। किन्तु यह वैभव केवलमात्र दूर से सुनने या देखने मात्र को था। आपकी जागीर की आय दस हज़ार की होते हुए भी आपको इतना पैसा वार्षिक व्यय के लिये मिला करता था कि यदि उस समय का कोई व्यक्ति जीवित हो तो उसके सामने कोठारीजी के शरीर पर थेगली लगे हुए कपड़ों का चित्र आज भी खिंच जाना असंभव नहीं होगा। मौलवीजी की अनुपस्थिति में कई बार पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के पद पर भी आपकी नियुक्ति हुई। उस कार्य को आपने पूर्ण सफलतापूर्वक संचालित किया।

पन्नालालजी के पुत्र फतेहलालजी श्री बड़े हजूर महाराणा साहब फतहसिंहजी की सेवा में रहे। इन्हें महाराणा साहब सज्जनसिहजी ने सुवर्ण, श्री बड़े हजूर ने माझा और वर्तमान महाराणा साहब ने राज्य श्री महद्राजसभा (हाईकोर्ट) के मेम्बर नियुक्त कर फाल्गुन कृष्णा ११ सं० १९९४ को "जीकारे" का सम्मान भी अता फरमाया है। इनके दो पुत्रों में से कनिष्ठ पुत्र उदयलालजी तो महता तखतसिंह जी के गोद चले गये, जिनकी छोटी कन्या गिरिराजकुँवारी से कोठारीजी के द्वितीय पौत्र दुलहसिहजी का सम्बन्ध निश्चय किया गया है। ज्येष्ठ पुत्र देवीलालजी बड़े ही सरल प्रकृति और शुद्ध हृदय के सज्जन पुरुष थे। इन्होने विद्याभ्यास कर बी० ए० पास किया और कुछ वर्षो तक महकमा देवस्थान के हाकिम रहे। वर्तमान महाराणा साहब ने प्रसन्न हो इन्हें सं० १९९३ की फाल्गुन कृष्णा १० को पैरो में पहनने के सोने के लंगर बख्श सम्मानित किया। इनके दो पुत्र कन्हैयालाल जी और गोकुललाल जी हैं। उनको विलायत भेज उच्च शिक्षा दिलाने का मुख्य श्रेय इन्ही को है। किन्तु खेद है कि जिस वर्ष इनके ज्येष्ठ पुत्र कन्हैयालालजी कठिन परिश्रम कर I. C. S. की उच्च परीक्षा में उत्तीर्ण होकर उदयपुर लौटे उसके चार महीने पूर्व ही इनका केवलमात्र ४४ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया। राजपूताने में सर्व प्रथम ऐसी उच्च परीक्षा मे उत्तीर्ण होनेवाले कन्हैयालालजी पहले ही व्यक्ति हैं।

इसी बीच एक दिन आपके दिल में यह भी विचार उत्पन्न हुआ कि मुझे भी किसी जिले की हुकूमत मिले तो ठीक। अत कोठारीजी ने अपने धर्मपिता कविराजाजी की मारफ़त श्री जी हुजूर में यह इच्छा मालूम कराई, तो हुकुम बख्शाया कि इन्हें जिले में नहीं भेजेंगे क्योंकि ये इस योग्य नहीं हैं। अत इन्हें यहा ही रक्खेंगे। इस उत्तर से आपको बडा असन्तोष हुआ और विचारा कि श्री दरबार कई एक को जिला हाकिम बना रहे हैं, फिर मैंने क्या कसूर किया है कि मुझे जगह न मिले। किन्तु कुछ ही दिनों में महाराणा साहब ने अपने आन्तरिक विचार प्रकट किये और कविराजा जी को फ़रमाया कि कोठारीजी अभी लडके हैं। मैं इन्हें जिला हाकिम मात्र ही नहीं बल्कि किसी ऊंचे पद पर देखना चाहता हूं। इसलिये ही इन्हे बाहर न भेज मैंने अपने पास रक्खा है।

हुकूमत पाने की इच्छा।

स० १९३३ मे आपका विवाह १५ वर्ष की अवस्था मे जोधपुर के पृथ्वीराजजी लोढा की कन्या जोरावर कुंवरबाई से नाथद्वारे में हुआ। हाथी के होदे पर तोरण बाधा गया व लवाजमा वगैरह भी दस्तूर माफ़िक राज्य से बख्शाया।

विवाह।

इसी वर्ष आपको फ़ौजदारी हाकिम की अनुपस्थिति मे काम करने की आज्ञा हुई और यह कार्य कुछ महीनों तक आपने किया। तथा श्री जी हुजूर ने पेशी के समय हाजिर रख पेशी में काम लेना शुरू किया। कुछ समय तक मायरे कुंभलगढ की हुकूमत भी इनके सुपुर्द की गई। किन्तु आप ज्यादा समय उदयपुर में रहते हुए इस जिले की देख भाल यहीं से करते रहते। और कुछ कुछ दिनो के अन्तर से जिलो मे जा आया करते थे। उन दिनो उस जिले में चोर डाकू इत्यादि का भी बहुत ज़ोर था किन्तु आपके सुप्रबन्ध से ये सब शिकायतें भी दूर हो गई।

फौजदारी व मायरे की हुकूमत।

स० १९३५ मे श्री जी हुजूर ने मेवाड का जनरल दौरा किया। इसमें महकमा-खास की पेशी का कुल काम कोठारीजी से लिया गया। और फ़ौज मुसाहिब के तरीके पर कैम्प का सब प्रबन्ध भी आप ही के अधीन रहा। आपकी कार्य-कुशलता व चातुर्य से श्री जी हुजूर बहुत प्रसन्न हुए। कोठारीजी के इने-गिने हितचिंतकों में सरदारगढ के ठाकुर मनोहरसिंहजी भी एक थे। उनकी हमेशा यह भावना रहती थी कि केसरीसिंहजी के माफ़िक बलवन्तसिंहजी भी योग्य बन जायें। अत इन्होंने इनकी बहतरी के लिये श्री जी हुजूर में राजनगर के मुकाम तारीफ़ की कि कोठारीजी

पेशी कैम्प प्रबन्ध और सरदारगढ ठाकुर की सिफ़ारिश।

कम उम्र हैं। उनके पास काम भी बहुत ज्यादा है। फ़ौज का प्रबन्ध अलग सुपुर्द है। ताहम वे पेशी का काम बहुत अच्छी तरह करते हैं। मेहनती भी ख़ूब हैं इत्यादि, तो श्री जी हुजूर ने सरदारगढ़ ठाकुर को फ़रमाया कि 'ठाकुर साहब, छोरा यूं ही ज बिगड़े है'। ठाकुर चुप हो गये। फिर कोठारीजी के सामने से बाहर चले जाने पर सरदारगढ़ ठाकुर को फ़रमाया कि 'मैं जानता हूँ कि कोठारीजी कितने होशियार तथा मेहनती हैं। किन्तु उनके सामने तारीफ़ करने पर कम-उम्र के लड़के बिगड़ जाते हैं। और मैं कोठारीजी को योग्य बनाना चाहता हूँ। आप देखना, मैं भी इन्हें एक आदमी बना रहा हूँ। इसलिये मैंने आपको उस समय ऐसा कहा था।' इस फ़रमान की इत्तला कोठारीजी को पहुंची तो उनके दिल में अपने स्वामी के प्रति बड़ी भारी श्रद्धा व भक्ति उत्पन्न हुई और दिनोंदिन स्वामिभक्ति के अंकुर विशेष गहरे जमकर हरे भरे होने लगे।

जोधपुर की सफ़र।

सं० १९३६ के शीतकाल में श्री जी हुजूर जोधपुर पधारे और कुछ दिन वहां विराजे। कोठारी जी भी साथ थे। जोधपुर में दोनों रईसों में परस्पर बहुत स्नेह रहा, और कुछ दिन जोधपुर दरबार का आतिथ्य स्वीकार कर श्री जी हुजूर वापिस उदयपुर पधार गये।

देवस्थान पर नियुक्ति व सुप्रबन्ध।

कोठारी छगनलालजी का देहान्त हो जाने से आषाढ़ शुक्ला १ सं० १९३७ ता० २७ जून सन् १८८१ ईस्वी को देवस्थान व श्री एकलिंगजी के भण्डार का काम भी कोठारीजी के सुपुर्द फ़रमाया, और कोठारीजी को कंठी व सरपेच भी बख्शे। देवस्थान का काम पहले सब अस्तव्यस्त था। किसी मन्दिर की कोई निगरानी करता, किसी की कोई। अतः इसकी सुव्यवस्था करने के लिये श्री जी हुजूर ने कोठारीजी को फ़रमाया और इन्होंने इसकी व्यवस्था करनी शुरू की। एक रात्रि को श्री जी हुजूर कोठारीजी को पास लेकर विराजे। श्री जी हुजूर फ़रमाते गये तथा कोठारीजी को हुकुम दिया कि तुम लिखते जाओ। उसी रात में देवस्थान की तरतीबदेही की सारी स्कीम लिखवा दी। महाराणा साहब की स्मरणशक्ति व मुन्तज़िमी कमाल दरजे की थी। उस स्कीम को इस उत्तम ढङ्ग से लिखवाया कि किसी भी विषय को दुबारा सोचना तो दूर रहा, उसे पीछे पढ़ने की भी ज़रूरत नहीं रही, न उसमें कोई शुद्धि करने की ही आवश्यकता रह गई। उसी के अनुसार सारे देवस्थान का सुप्रबन्ध आज तक उसी लाइन पर चला आता है, और देवस्थान मेवाड़ के महकमों में एक मुख्य महकमा हो गया है। उस स्कीम के बाद करीब २५ वर्ष तक देवस्थान का काम कोठारीजी के सुपुर्द रहा। उसमें समय समय पर सुधार होता रहा। महाराणा साहब के प्रबन्ध-कुशल एवं मेधावी होने के विषय

में लेख को विशेष लंबा न कर रायबहादुर गौरीशङ्करजी हीराचन्दजी ओझा के थोडे से वाक्य उद्धृत कर देना पर्याप्त होगा।

"महाराणा सज्जनसिंह प्रतापी, तेजस्वी, क्षत्रिय जाति का सच्चा हितचिंतक, कवियों तथा विद्वानों का गुण-ग्राहक, न्याय-निष्ठ, नीति-कुशल, दृढ-सकल्प, उदार, विद्यानुरागी, बुद्धिमान् एव विचारशील था। मेधावी तो वह ऐसा था कि जिन दिनो स्वामी दयानन्द सरस्वती से मनुस्मृति का वह राज-धर्म प्रकरण पढता था, उन दिनों घण्टे मे २२ श्लोकों का आशय याद कर लेता था। वास्तव में वह मेवाड क्या, समस्त राजस्थान के उन असाधारण प्रतिभाशाली, शक्तिसम्पन्न एव निर्भीक नरेशो मे से था, जिनके नाम उँगलियो पर गिनाये जा सकते हैं।"

इसके अतिरिक्त सहीवाला अर्जुनसिंहजी साबिक दीवान रियासत मेवाड जो महाराणा साहब की सेवा में आजन्म रहे, वे अपने जीवनचरित्र मे महाराणा साहब के विषय में लिखते हैं कि "यह दरबार बडे बुद्धिमान्, कदरदान और गुणो की खान थे। सारे जहान में इनका यश फैल गया था। सारे विलायत में उदयपुर मशहूर हो गया था। हर एक रियासती काम के इन्तज़ाम का दुरुस्त होना इन ही की अक्लमन्दी थी"। ऐसे उग्र-बुद्धि एव मेधावी महाराणा के लिये देवस्थान की स्कीम को रात्रि भर मे बनवा देना और उसकी व्यवस्था करा देना एक साधारण सी बात थी।

इन्हीं वर्षों में गढबोर श्री चारभुजाजी के सेवको व राज्य के बीच धी की लागत तथा नोपत बजने की तामील के विषय में बडे लंबे काल से भारी झगडा चल रहा था। फ़ैसला हो जाने पर भी सेवक तामील नहीं करते थे, और यहा तक अपने हठ पर बैठे हुए थे कि मरने-मारने को उतारू थे। अत कोठारीजी कुभलगढ से जानता तलब कर माफ़िक हुकुम गढबोर पहुँचे और अपनी बुद्धिमत्ता से सेवको को समझा दोनों हुकुमों की तामील करवा दी।

लक्ष्मीदेवी की सुदृष्टि।

इसी वर्ष अर्थात् स० १६३७ के अन्त में कोठारीजी पर लक्ष्मीदेवी की थोडी थोडी सुकृपा हुई। कोठारीजी के कम उम्र होने से इनकी जागीर आदि का प्रबन्ध इनके काका कोठारी छगनलालजी के अधीन था, किन्तु कोठारी छगनलालजी का देहान्त हो जाने तथा आपके बालिग हो जाने से जागीर के गाँवो का प्रबन्ध आपके हाथ में आ गया, जिससे भोजन तथा कपडो की व्यवस्था सुचारुरूप से हो गई।

इसमें किंचिन्मात्र भी सदेह नहीं था कि यदि महाराणा सज्जनसिंहजी जैसे दयालु रईस की कृपा तथा कविराजाजी, सरदारगढ़ ठाकुर और बेदले

शत्रुओं के षड्यंत्र, मातृ-वैमनस्य की चरम सीमा और धन का सत्यानाश।

रावजी की सहानुभूति इतनी न होती तो शायद कोठारीजी का इस घर में रहना स्वप्न में भी संभव न था, क्योंकि इधर कोठारीजी के प्रति उनकी माता का वैमनस्य दिनोंदिन बढ़ता ही जाता था, और कोठारणजी ने कोठारीजी केशरीसिंहजी द्वारा उपार्जित द्रव्य तथा ज़र ज़ेवर को खुर्दबुर्द करना पहले से ही जारी कर रक्खा था। इसी बीच में कोठारीजी को किसी सरकारी काम से बाहर जाना पड़ा। यह अवसर इनकी माता के लिये अच्छा मिला, और उनकी अनुपस्थिति में उन्होंने बहुत सा द्रव्य विशेष रूप से नष्ट कर दिया। जब इसकी सूचना कोठारीजी को मिली तो एकदम वे वापिस उदयपुर आये और यह सब हाल श्री जी हुजूर में मालूम कराया, जिससे दो विश्वस्त पुरुष उनकी हवेली इनकी माता को समझाने के लिये भेजे गये। किन्तु वे न मानीं। अतः राज्य की ओर से चौकी के सरदारों तथा एक फ़ौज का पहरा कोठारीजी की हवेली पर तैनात किया गया, और उनकी माता को अलग होने के लिये कहा गया। यह सुन उन्होंने किवाड़ बन्द कर अन्दर की सांकलें लगा उसी क्षण हीरे, पन्ने, मोती व अन्य ज़र ज़ेवर जो बचा था, उसे हमामदस्ते में कूटा तथा चक्की में पीस दिया और कीमती कपड़ों में आग लगा दी। मतलब यह है कि उस समय उनसे जितना भी हो सका, नष्ट भ्रष्ट कर दिया। सिपाहियों एवं मज़दूरों द्वारा किवाड़ तुड़वाकर देखा गया तो हीरे, मोती आदि की बुकनी और कपड़ों की राख के सिवाय कुछ भी शेष न रह गया था। इधर गृह-क्लेश प्रबल हो रहा था, उधर शत्रुदल तेज़ी से अपना काम कर रहा था। दूसरे कोठारीजी को गोद से ख़ारिज कराने की कार्यवाही भी ज़ोरों से हो रही थी, लेकिन महाराणा साहब शम्भुसिंहजी तथा महाराणा साहब सज्जनसिंहजी की असीम कृपा से दुश्मनों को उलटे मुँह खानी पड़ी। जब इधर सफलता होती न देखी तो षड्यंत्रकारियों ने कोठारीजी की जागीर और हवेली ज़ब्त करवाने का प्रयत्न किया तथा सरकारी महक्मों का काम इनसे छिनवाने और उदयपुर से बाहर भिजवाने की कोशिश की, परन्तु महाराणा साहब शम्भुसिंहजी के समय तो केशरीसिंहजी की अपूर्व सेवाओं से महाराणा साहब की इतनी कृपा थी कि उन शत्रुओं को सफलता न मिल सकी, और महाराणा साहब सज्जनसिंहजी ऐसे न्यायशील नरेश थे कि द्वेषियों को उनके समय में भी हाथ मलते ही रहना पड़ा और कोठारीजी का एक बाल भी बांका न हो सका।

स्वामि-कृपा के तीन चुटकुले।

शत्रु लोग हर समय इसी ताक में रहने लगे कि कोई ऐसा मौक़ा आवे और हम लोग कोठारीजी के लिये दरबार में उलटी सीधी भिड़ाकर उनकी ग़ल्तियाँ बतावें। किन्तु दरबार उदारहृदय थे। अतः जिस प्रकार दुश्मन लोग कोठारीजी को नीचा दिखाने की फ़िराक में थे,

उसी प्रकार मत्स-पक्षी स्वामी उस अवसर की खोज में थे कि किसी तरह कोई अवसर मिले तो कोठारीजी की बात ऊंची बलाई जावे। ऐसे अवसर सैकड़ों मिले होंगे। अत लेख को अधिक लम्बा न कर केवल तीन बातें लिखी जाती हैं। उसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि दरबार की कोठारीजी पर कितनी महती कृपा थी।

उन दिनों दरबारियों में प्राय कमर में कटारी बांधने की चाल थी। तदनुसार कोठारीजी भी रोज कटारी बांधा करते थे। एक दिन दरबार कुर्सी पर विराजे हुए कागजों पर दस्तखत फरमा रहे थे और कोठारीजी दवात लिये पास में खड़े थे। दैवात् उनके झुकने पर कमर से कटारी निकल दरबार के बिलकुल चरणों के पास जा गिरी। कोठारीजी के विरोधी गण इस अवसर की ताक में ही खड़े थे। वे लोग एकदम कुछ कहना ही चाहते थे कि दरबार ने उनकी मुखमुद्रा तथा मनोगत भावों को जान सहसा कोठारीजी से हँसकर फ़रमाया कि 'आज तो कटारी तुमने ढीली बांधी या किसी पर वार करने की इच्छा से निकाल कर दिखलाई है ?' यह सुन कोठारीजी ने अर्ज की कि यह मेरी ग़ल्ती हुई। कटारी ढीली रहने से निकलकर गिर पड़ी। फिर दरबार ने हँसकर फ़रमाया कि 'कभी कभी कटारी को निकाल कर चमकाते रहना चाहिये'। इस प्रकार दुश्मनों को बोलने का मौक़ा न देते हुए सारी बात हँसी में ही समाप्त कर दी।

एक समय की बात है कि दरबार कुर्सी पर विराजे हुए थे और कोठारीजी के हाथ से हस्ताक्षर कराते समय दवात छूटकर गिर पड़ी, जिससे दरबार की नब पोशाक बिगड़ गई। प्रत्येक मनुष्य को ऐसे मौक़े पर गुस्सा आ जाता है तथा लोगों को भी दबाने का अच्छा मौक़ा मिलता है। एक दो विरोधी वहां पर खड़े हुए थे। वे बोल उठे कि 'देखो, ध्यान नहीं रखते हो' इत्यादि। यह सुन दरबार ने फ़रमाया कि महाजनों में स्याही ढुलना (गिरना) शुभ मानते हैं। तुम्हें मालूम है क्या ? यह कहते ही अग्नि पर पानी गिरने के समान विरोधी गण अपना सा मुँह लेकर चुप रह गये।

उक्त घटनाओं से भी विशेष विचित्र घटना एक और हुई, जिससे अनुमान किया जा सकता है कि कोठारीजी पर दरबार कितने प्रसन्न थे और किस ढंग से लोगों में इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाना चाहते थे तथा किस हद तक इनकी न्यायप्रियता व ईमानदारी पर विश्वास करते थे। जब कोठारीजी के पुर्दे दस्न्धान 'का काम हुआ, उसी समय में डालचन्द्र नामक एक पुरुष किसी मामले में कोठारीजी के नाम से फरीक मुकदमा से २००) रुपये खा गया। मुकदमा उसके हक में नहीं निकला। इस

पर रुपया देनेवाले की ओर से खलबली मची। उड़ते उड़ते यह क़िस्सा कोठारीजी के कानों तक भी पहुँचा। दरबार की पेशगाह में यह क़िस्सा कपटहितैषियों ने उसके पहले ही अर्ज़ कर दिया था क्योंकि उनके लिये शिकार का यह अच्छा मौक़ा था। कोठारीजी जब महलों में गये और वे इस सम्बन्ध में कुछ अर्ज़ करना ही चाहते थे कि दरबार ने फ़रमाया कि आज तो कोठारीजी भी अड़ंगे में आ गये हैं। इस पर तत्कालीन मंत्री पन्नालाल जी ने अर्ज़ की कि 'बड़ो हुकुम'··· उस पर कोठारी जी को फ़रमाया कि इस मामले में क्या होना चाहिये, तो उन्होंने अर्ज़ की कि इसकी पूरे तौर जांच फ़रमाई जाकर अगर तावेदार की ग़ल्ती हो, तो पूरी सज़ा बख्शनी चाहिये। इस पर पन्नालालजी को फ़रमाया कि 'हुकुम लिख दो कि ऐसी शिकायत पेश आई है। इसकी कोठारी बलवन्तसिंहजी ही बाज़ाब्ता तहक़ीक़ात कर तजवीज़ करे'। इस पर कोठारीजी ने तुरंत विचार किया कि शायद दरबार के अर्ज़ होने में मुग़ालता हुआ है। और किसी दूसरे की शिकायत ख्याल फ़रमा रहे हैं। इसलिये कोठारीजी ने उन्हें अर्ज़ की कि यह शिकायत किसी दूसरे अहलकार वग़ैरह की नहीं है, खुद मेरी ही है। इसलिये मैं इसकी तहक़ीक़ात व तजवीज़ नहीं कर सकता। किसी दूसरे को हुकुम फ़रमाया जावे, तो अच्छा हो। तब दरबार ने फ़रमाया कि "खावणों तो डरणो। यह तहक़ीक़ात व तजवीज़ तुम्हे ही करनी होगी"। तहक़ीक़ात से डालचन्द्र दोषी सिद्ध हुआ और जो दण्ड देवस्थान से तजवीज़ किया गया, उसमें भी श्री दरबार की पेशगाह में मिसल पेश होते वक्त विशेष बढ़ा दिया गया। ऐसी नज़ीर कहीं पर शायद ही मिलेगी कि खुद की शिकायत की खुद को ही तहक़ीक़ात करने का हुकुम दिया गया हो। किन्तु यह कोठारीजी की ईमानदारी व श्री महाराणा साहब का उनके प्रति अपूर्व दृढ़ विश्वास होने का ही कारण था।

पाठकगण ऊपर के तीनों उदाहरणों से समझ गये होंगे कि कोठारीजी पर विरोधी लोगों की कैसी तीखी नज़र थी और महाराणा साहब की कैसी असीम कृपा थी। यह सब उनकी स्वामि-भक्ति एवं ईमानदारी का ही फल था।

चित्तौड़ के विख्यात दरबार का प्रबंध।

भारत सरकार ने महाराणा साहब को G. C. S. I. का ख़िताब देना चाहा। इस पर महाराणा साहब ने अपने वंश का प्राचीन गौरव और पूर्वजों का बड़प्पन बतलाते हुए कई उज्र पेश किये। परन्तु अन्त में इस शर्त पर उसे स्वीकार किया कि यदि हिन्दुस्तान का गवर्नर जनरल लार्ड रिपन स्वयं मेवाड़ में आकर ख़िताब देवे, तो मैं स्वीकार कर सकता हूँ। अतः इसकी स्वीकृति होने पर मार्गशीर्ष शुक्ला २ सं० १९३८ ता० २३ नवम्बर सन् १८८१ ईस्वी को चित्तौड़ मे बड़े समारोह के साथ दरबार किया गया,

जिसमें गवर्नर जनरल ने महाराणा साहब को उक्त ख़िताब तथा चोगा हार आदि पहनाया। इस दरबार का कुल प्रबध कोठारीजी के सुपुर्द किया गया था। उसको इन्होंने बडी ही उत्तमता से निभाया, जिससे महाराणा साहब भी बडे प्रसन्न हुए।

इसकी तैयारी के विषय मे सहीवाला अर्जुनसिंहजी अपने जीवनचरित्र मे लिखते हैं कि "विक्रम सवत् १९३८ के मार्गशीर्ष में लार्ड रिपन गवर्नर जनरल हिन्द चित्तौड तशरीफ़ लाये। राजपूताना मालवा की अजमेर से चित्तौड तक रेल खोली और श्री दरबार को तमगा G C S I का दिया। वहीं मेहमानदारी का सामान निहायत उम्दा हुआ, जिससे हुस्नो-इन्तजाम से गभीरी नदी के किनारे दोनो खेमेगाह कायम की गई और खेमो मे जो आरायश हुई, वह बयान नहीं हो सकती। लाट साहिब सन् १८८१ ता० २२ नवम्बर को वहा रौनक-अफ़रोज़ हुए थे। रेलवे प्लेटफार्म खूब सजाया गया था। तमाम रास्ते पर खेमेगाह तक फ़ौज की सजावटें काबिलदीद थीं। श्री जी हुजूर रेलवे प्लेटफ़ार्म तक पेशवाई को पधारे। फिर बड़े जुलूस के साथ हाथियों पर सवार हो लार्ड साहब को खेमेगाह तक पहुँचाकर श्री जी हुजूर अपने खेमेगाह को वापिस पधारे। दूसरे दिन सुबह के वक्त लाट साहब के डेरे पर मुलाक़ात के लिये पधारे। बारह बजे आम दरबार हुआ। तब श्री दरबार को खिलअत व तमगा दिया गया। करीब दो बजे लार्ड साहब बाजदीद की मुलाक़ात के वास्ते तशरीफ लाये। शाम को दावत हुई। उस वक्त की रोशनी और आतिशबाज़ी बहुत उम्दा मालूम होती थी। ग़रज लाट साहब यहा आकर हर तरह से खुश रहे।"

महाराणा साहब की असीम कृपा व दिग्दर्शन व स्वर्गवास।

स० १९४१ क कार्त्तिक मे श्री दरबार जोधपुर पधारे। कोठारीजी भी उनके साथ मे थे। श्री दरबार को बीमारी तो पहले से ही थी। जोधपुर पधारने पर वह कुछ विशेष रूप से बढ गई। श्री दरबार जोधपुर से उदयपुर क लिए वापिस लौट गये। जोधपुर से रवानगी के दो एक दिन पहले कविराजाजी को फ़रमाया कि अब की बार उदयपुर चल कोठारीजी को सोना देकर महक्माखास पर कर दूँगा। जोधपुर से वापसी क वक्त बानीया के मुकाम से कोठारीजी का रेज़िडन्ट साहब तथा पोलिटिकल अफसरों से विशेष परिचय बढाने की ग़र्ज़ से दौरे में रेज़िडेन्ट साहब क साथ रहने का हुकुम दिया। अत कोठारीजी रेज़िडेन्ट साहब के साथ रह गये। कोठारी जी को मेवाड के प्रधान बनाने की उनके मालिक की इच्छा थी। परन्तु परम पिता परमात्मा को अभी यह मजूर न था। अतएव उदयपुर पधारने पर श्री दरबार की बीमारी एकदम बढ गई। कोठारीजी भी इत्तला मिलत ही शीघ्र उदयपुर चले आये, और पौष शुक्ला ६ स० १९४१ तदनुसार ता० २३ दिसम्बर सन् १८८४ ईस्वी को

महाराणा साहब सज्जनसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। उनका स्वर्गवास क्या हुआ, मानो कोठारीजी के लिये प्रलय आ गई। श्री दरबार के स्वर्गवास से शहर भर में सन्नाटा छा गया। जिधर देखो, उधर प्रजा में हाहाकार मच रहा था। एवं हर एक की आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। महाराणा साहब सज्जनसिंहजी गुणग्राही, न्यायनिष्ठ, प्रतिभाशाली, शक्ति-संपन्न, बुद्धिमान्, नीति-कुशल और प्रजा-रक्षक रईस थे। उनका प्रशंसक मेवाड़ ही नहीं अपितु समस्त भारतवर्ष के इतिहास में भी उनका स्थान मुख्य रहेगा।

कोठारीजी के लिये नूतन समस्या और श्री बड़े हुजूर का राज्यारोहण।

कोठारीजी की आर्थिक स्थिति बिलकुल खराब हो चुकी थी। उसका कारण ऊपर बताया जा चुका है। गृह-क्लेश भी अपनी चरम सीमा को पहुंच चुका था। कोठारीजी के जीवनरूपी वृक्ष को सिंचन करने वाले एकमात्र आश्रयदाता महाराणा साहब सज्जनसिंहजी ही थे। वे ही उस निराधार के आधार थे। अभी कोठारीजी का जीवनरूपी वृक्ष पूरा हरा भरा भी नहीं होने पाया था कि शैशवकाल में ही महाराणा साहब के स्वर्ग-पयान रूपी कुठार ने उस पनपते हुए पौधे को फिर से मूल तक पहुँचा दिया।

महाराणा साहब सज्जनसिंहजी के कोई सन्तान न थी। अतः उनके स्वर्गवास हो जाने पर शिवरती महाराज दलसिंहजी के तृतीय पुत्र फतहसिंहजी सं० १९४१ के पौष सुदि ६ को राज्यगद्दी पर विराजे। उनका राज्याभिषेक माघ शुक्ला ७ को हुआ। चैत्र कृष्णा ३ ता० ४ मार्च सन् १८८५ को राजपूताने के गवर्नर जनरल एडवर्ड ब्रेट फ़र्ड ब्रिटिश सरकार की ओर से गद्दीनशीनी का खरीता लेकर आये। तब इसका दरबार किया गया और श्रावण शुक्ला १२ सं० १९४२ ता० १२ अगस्त के दरबार में कर्नल वाल्टर ने सरकार अंग्रेज की ओर से श्री महाराणा साहब फ़तहसिंहजी को पूर्ण अधिकार मिलने की घोषणा की।

जिस दिन महाराणा साहब सज्जनसिंहजी का स्वर्गवास हुआ, उसी क्षण से शोकाकुल विपद्ग्रस्त कोठारीजी ने निश्चय रूप से समझ लिया कि अब उदयपुर रहने में सिवाय अपमान कराने के और कोई नतीजा नज़र नहीं आता। इधर कविराजा श्यामलदासजी, जो महाराणा साहब सज्जनसिंहजी के पूर्ण भक्त थे, किस हद तक शोक से संतप्त थे; उसका पता सहीवाला अर्जुनसिंहजी के जीवनचरित्र से चल सकता है। जब महाराणा सज्जनसिंहजी के स्वर्गवास के पश्चात् सरदार उमराव इकट्ठे हुए और उत्तराधिकारी के विषय में जनानी ड्योढी अर्ज कराई। उसी प्रसंग में वे लिखते हैं कि "कविराजाजी इस ग़म के सबब अपनी हवेली को चले गये और कह गये कि उत्तरा-

वैकुण्ठवासी मर्यादापुरुषोत्तम धर्मधुरीण महाराजाधिराज महाराणाजी
श्रीफतहसिंहजी साहिब बहादुर जी० सी० एस० आई०,
जी० सी० आई० ई०, जी० सी० वी० ओ०

धिकारी के विषय में जो सब की राय हो, वह मुझे भी मजूर है ।" इससे पाठकों को अनुमान हो सकता है कि कविराजाजी जैसे विद्वान्, स्वामिभक्त व मुसाहिब पुरुष जिनका हाथ छोटी से बडी राज्य समस्याओं में रहता था, वही शोकसागर में इतने डूबे हुए थे कि राज्य के उत्तराधिकारी जैसे जटिल प्रश्न के हल होने के समय भी अपने को न सभाल सके और घर चले गये। महाराणा साहब श्री फतहसिंहजी के गद्दी विराजने की रात्रि को शोकातुर कोठारीजी अपने एकमात्र आधार कविराजाजी के पास गये और बडी रात तक वहीं रहे। कविराजाजी से कोठारीजी ने कहा कि अब अपने दिन यहाँ कटना कठिन है। द्वेषियों का दौर-दौरा बढा हुआ है। श्री जी हुजूर आज ही गद्दी विराजे हैं। उनसे अपनी पहले की कोई जान-पहचान नहीं। राज-कर्मचारी मुझे हर तरह नुकसान पहुँचाने को तुले हुए हैं। ऐसी हालत मे सब से पहला काम जो मैंने सोचा है, वह यह है कि मेरे सुपुर्द देवस्थान व जो भी सरकारी सेवा है, उससे कल ही इस्तीफा दे दिया जाय तो अच्छा है। कारण, ऐसे वातावरण में मालिक तक सच्ची बात नहीं पहुँच सकती और सरकारी काम मे हर तरह से ऊपर के अधिकारियों के दबाव मे रहना पडता है। इस प्रकार कोठारीजी की बात को सुन अनुभवी नीतिकुशल कविराजाजी ने कोठारीजी को समझाकर पूछा कि महाराणा शम्भुसिंहजी के स्वर्गवासी होने पर महाराणा सज्जनसिंहजी से तुम्हारी मुलाकात किसने कराई थी और क्या तुमने उन महाराणा साहब की खावंदी मे कोई कमी देखी। वैसे तो इस ससारी जीवन मे रथ के पहियों की तरह सुख दुःख घूमा ही करते हैं। कहा भी है कि—

> दुःखमापतितं सेव्यं सुखमापतितं तथा।
> चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥

इसलिये सेवक को अपने स्वामी की सेवा मे सर्वस्व लगा देना चाहिये, फिर स्वामी स्वयं पालना कर लेता है, इत्यादि। इतना समझाने पर भी कोठारीजी को तसल्ली न हुई। अन्तत कविराजाजी ने पुन कोठारीजी से कहा कि काम छोडने मे समय ही क्या लगता है? कुछ काल हर प्रकार की अवस्थाओं का अनुभव करना चाहिए, आतुर व अधीर होकर सहसा कोई कार्य कर बैठने में हमेशा के लिये पछताना पडता है। फिर भी कविराजाजी की यह सान्त्वना कोठारीजी को हृदयग्राही नहीं हुई। दूसरी ओर कविराजाजी की आज्ञा को टालना भी उनकी शक्ति से बाहर था। अब पाच सात दिन यों ही बहस में बीत गये। आखिर आठवें या नवें दिन कोठारीजी ने उनको विवश कर अपने अधीन राजकीय कार्य से इस्तीफा देने की स्वीकृति ले ही ली और कोठारीजी ने इस्तीफा लिख लिफाफे में बन्द कर लिया। कोठारीजी जैसे इकरंग स्वात्माभिमानी

और चरित्रवान् पुरुष के लिये कार्यकर्ताओं की चापलूसी करना या इधर-उधर मिल जाना स्वप्न में भी सम्भव न था। अतः ऐसी स्थिति में लटकती हुई तरवार के नीचे गर्दन रख देवस्थान की हाकिमी करने की एवज इस्तीफ़ा देना नितान्त उचित था। फिर भी यह बात मानी हुई है कि जिन गांठों को तीखे नाखून नहीं खोल सकते वे ही गांठें समय आने पर हवा के झोंकों से खुल जाती हैं। क्योंकि कहा है—

को सुख को दुख देत है देत करम झकझोर।
उरझत सुरझत आपही ध्वजा पवन के जोर॥

श्री दरबार इन बारह दिनों में किसी से बिना किसी ख़ास कारण के नहीं बोलते थे और सारा दिन उदास व गमगीन होकर विराजे रहते थे।

चित्त चित्त का साक्षी, मन मन का दर्पण, और हृदय हृदय की बांसुरी है।

नई शक्ति का संचार।

स्वामि-धर्म में सत्यता एक ऐसी अपूर्व शक्ति है, जो कि स्वामी और सेवक का नाता जुड़ाये बिना नहीं रहती। अतः नवें दिन की बात है कि कोठारीजी इस्तीफा लेकर महलों में गये। उसी दिन उनके पैर की एक अँगुली में किवाड़ की थोड़ी सी चोट लग गई थी। उस पर गीली पट्टी बाँध रक्खी थी। शुद्ध व सत्य मन में वह शक्ति है कि बड़े बड़े वाद-विवादों से जो कार्य सफल नहीं हो सकते हैं, वे सरल व शुद्ध मन से सहज ही में बन बैठते हैं।

श्री दरबार जो बिलकुल उदासवृत्ति में विराजे हुए थे, सहसा कोठारीजी को देखकर उन्होंने पूछा कि तुम्हारी अँगुली मे क्या हुआ। महाराणा साहब फतहसिंहजी के गद्दी विराजने के बाद कोठारीजी से वार्तालाप होने का यह पहला ही मौक़ा था। तब कोठारीजी ने अर्ज कर कहा कि किवाड़ की मामूली सी चोट लग गई है। उस पर गीली पट्टी बांधी है, जिस पर श्री जी हुजूर ने फ़रमाया कि पैर की जगह है, चलने से पैर पर वज़न पड़ता है। पैर पगरखी मे रखने से पसीना भी आ जाता है। इसलिये किसी डाक्टर को बता देना। कहीं यह घाव बढ़ न जाय। यह एक सामान्य सी बात थी। उसका प्रभाव कोठारीजी के हृदय पर इतना पड़ा कि उन्हें एकदम हिम्मत बंध गई और पक्का विश्वास हो गया कि इन महाराणा साहब की भी वैसी ही प्रतिपालना रहेगी, जैसी महाराणा साहब सज्जनसिंहजी की थी। कोठारीजी के हृदय मे ऐसा विश्वास जमना भी नितान्त उचित ही था। क्या वे स्वामी जो स्वयं उदासीन वृत्ति तथा शोकाकुल अवस्था मे भी कोठारीजी के पैर की अँगुली की संभाल करना नहीं भूले, वे भविष्य में उनके शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक दुःखों को काटने मे कमी करेंगे? कदापि नहीं। महलों से लौटकर कोठारीजी अनुभवी

एव अपने हितचिन्तक कविराजाजी के पास गये। सारा हाल उनसे कहा और उनकी आज्ञा का गुणगान करते हुए घर लौट आये और देवस्थान के कार्यसम्बन्धी लिखित इस्तीफे को फाडकर फेंक दिया।

उदयपुर से निर्वासन।

महाराणा साहब फतहसिहजी को मेवाड के राज्य-सिंहासन पर विराजे थोडे ही दिन हुए। लेकिन गद्दी विराजन के नवें दिन ही कोठारीजी के प्रति ऐसी कृपा के भाव जाहिर फरमाये, जिससे उन्हे पूरी खातरी हो गई कि अब महाराणा साहब की कृपा उत्तरोत्तर बढती ही जायगी। दुश्मनो के लिये यह और भी विकट समस्या उपस्थित हो गई। वे ज्यो ज्यो कोठारीजी को दबाने का उपाय करते गये, त्यों त्यो कोठारीजी के लिये उन्नति का मार्ग खुलता गया। श्री दरबार ने अपना पूरा विश्वासपात्र सेवक समझ खानगी सलाह मश्वरे व राजकीय मुख्य कार्यों में भी उन्हे शरीक रखना शुरू कर दिया। यह देख लोग जल कर खाक हो गये। इस पर उन्होने कोठारीजी के विरुद्ध एक नया षड्यत्र रचा और पोलिटिकल अफसरो को यह बात जँचवा दी कि कुछ पुरुष श्री दरबार के बद सलाहकार है। इसलिए उनको उदयपुर से बाहर कर देना चाहिये। फलत कोठारीजी को भी दरबार की इच्छा के विरुद्ध उदयपुर छोडना पडा। किन्तु श्री दरबार ने अत्यत अनुग्रह-पूर्वक उनको इस तरीके से बाहर भेजा कि किसी को उनके बाहर जाने का पता तक नहीं पडा कि कोठारीजी बाहर भेजे या नहीं। एक कारण यह कि देवस्थान का काम उन्हीं के सुपुर्द था। अत उन्हे आज्ञा दी कि तुम शहर मे मत आना और देवस्थान के दौरे के नाम से उसके गावो मे भ्रमण करना। उनके साथ मे हाथी हथिनी घोडे सवार सिपाही पहरे डेरे आदि का पूरा लवाजमा व जाबता दे दिया गया। इस आडम्बर के साथ दौरा शुरु हुआ। कुछ दिनो तक कैलाशपुरी में रहे। यहा पर जो प्रसिद्ध सराय बनी है, वह उन्हीं की देखरेख में बनवाई गई थी। उस काम को अपनी पूरी दिलचस्पी व निगरानी से जल्दी पूर्ण कराया और इसके निर्माण मे देवस्थान का पैसा भी नहीं लगने दिया। इस प्रकार वहा रहते हुए श्री परमेश्वरों की सेवा का भी लाभ लिया। तत्पश्चात् देवस्थान के गाँवो मे दौरा करते हुए दिन बिताये। लेकिन इससे भी लोगो को शान्ति न हुई। तब प्रपच रचकर कोठारीजी को अपने गाव बोराव चले जाने का हुकुम भिजवाया। अत वे अपने गाव मे चले गये। वहा पर भी पूरा लवाजमा साथ ही रहा। इस प्रकार वहा पर चार पाच महीने रहने पर श्री दरबार ने पूर्ण कृपा प्रदर्शित करते हुए समय समय पर सभाल लेवाई और पुरोहित उदयलालजी निठ्लोत को भी बोराव भेजकर पुछवाया कि वहा पर कोठारीजी को कोई तकलीफ तो नहीं है। तब उन्होने कहा कि श्री जी हुजूर की कृपा से क्या तकलीफ हो सकती है? यदि तकलीफ है तो

श्रीमानों के दर्शनों से दूर होने की है, बाकी सब आनन्द है। श्री जी हुजूर ने इसके कुछ दिनों बाद कोठारीजी को उदयपुर वापिस बुलाने का प्रबंध कर दिया।

कोठारीजी के साथ में मेवाती-गोत्रीय उमरखां नामक एक सांडीवाल था, जो जानवरों की बोली को विशेष समझने वाला था। कोठारीजी को निकट भविष्य में उदयपुर लौटने की जरा भी आशा न थी। किन्तु उस सांडीवाल ने जानवरों की बोली का शकुन लेकर कोठारीजी को कहा कि ठीक आज से पन्द्रहवें दिन अपने को उदयपुर चलना पड़ेगा। किसी ने भी उसके कहने पर विश्वास नहीं किया, किन्तु ठीक पन्द्रहवें दिन ढींकडिया जगन्नाथजी का पत्र पहुँचा कि आप पत्र को पढ़ते ही रवाना होकर उदयपुर हाज़िर हों। श्री जी हुजूर का ऐसा हुकुम है। अतः ७-८ महीने अपने गाँव के शुद्ध वातावरण में बिता फिर उदयपुर आ गये।

ऐसी स्थिति में भी श्री दरबार की इतनी कृपा रही कि कोठारीजी के यहां न होते हुए भी देवस्थान का काम बदस्तूर कोठारीजी के ही नाम से होता रहा। और देवस्थान पर किसी दूसरे ऑफ़ीसर को नियुक्त नहीं किया गया। कोठारीजी की अनुपस्थिति में बतौर नायब के लाला अमृतलालजी इत्यादि से कार्य लिया जाता रहा। कोठारीजी से इस नगर-निर्वासन के दुःखद समय में सब ने किनारा कर दिया किन्तु खेमपुर ठाकुर चमनसिंहजी, दुर्लभरामजी दशोरा, कादरजी बोहरा व लाला केसरीलालजी ने इस अवस्था में भी कोठारीजी का साथ दिया और अपना सब स्वार्थ त्याग कोठारीजी के साथ जाने को तैयार हुए। आवश्यकता न होने से कोठारीजी ने उन सब को मना कर दिया और साथ नहीं ले गये। तथापि इनकी सहानुभूति की छाप कोठारीजी के हृदय पर तो सदा के लिये जम ही गई।

द्वितीयबार फौजदारी का काम सुपुर्द होना।

सं० १६४१ में राय सोहनलालजी मेवाड़ व निम्बाहेड़ा के सरहदी फ़ैसलों के लिये मुकर्रर किये गये और कोठारीजी के जिम्मे फ़ौजदारी का काम हुआ, जिसको कुछ महीनों तक यह करते रहे।

कमीशन मे नियुक्ति।

सं० १६४२ में चित्तौड़ भीम पलटन के जवान अजीटन के खिलाफ़ शाकी हुए। अतः यहां से शंभु सज्जन की पलटन भेज वहां की भीम पलटन को यहां बुलाने का हुकुम दिया गया और इसकी तहकीकात कोठारीजी व महाराज अमानसिंहजी को करने का हुकुम हुआ। सो इन्होंने तहकीकात कर रिपोर्ट पेश की।

मेवाड में माफी के सबध मे तहकीकात का कार्य करने के लिये महाराणा साहब सज्जनसिंहजी के वक्त में भी कोठारीजी का नाम तजवीज हुआ लेकिन उन दिनों कार्रवाई शुरू न हो सकी। अत सवत् १९४२ में फिर से यह काम कोठारीजी के सुपुर्द हुआ और हाथी हथिनी पहरे इत्यादि का कुल जाब्ता इनके साथ देकर ज़िले सहाडा व राशमी की तरफ़ से कार्रवाई शुरू करने का हुकुम हुआ। लेकिन शुरू मे ही मुकाम राशमी पर उनके बीमार हो जाने से आगे कार्रवाई के लिये नहीं जा सके और वापिस लौटना पडा। कुछ दिनो बाद फिर कोठारीजी सहाडा की तरफ़ गये और उनकी अनुपस्थिति मे देवस्थान का काम महता उम्रसिंहजी को करने का हुकुम हुआ किन्तु थोडे ही दिन वहा कार्रवाई शुरू कर पाये थे कि दूसरी बार फिर बीमार हो जाने से उन्हें घर लौटना पडा और माफी की तहकीकात नहीं की जा सकी।

माफी की तहकीकात।

सवत् १९४३ में कोठारीजी को श्रीजी हुजूर ने राज्य श्री महद्राजसभा* मे मेम्बर मुकर्रर फ़रमाया।

महद्राजसभा में निुयुक्ति।

सवत् १९४४ मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को श्रीदरबार के द्वितीय कुँवर के जन्मोत्सव के अवसर पर महाराणा साहब ने याचकों तथा मुहताजो को हजारों रुपये बांटे। उस दिन दरबार ने धारण का जेवर निकलवाया। उसमे सोने के लंगर भी थे और जेवर व लगर सामने पडे हुए ही थे कि दरबार ने कोठारीजी को बुलवाने भेजा। कोठारीजी के हितेच्छुओं

शत्रु-दल को मतोष की साँस।

---

* कोठारी बलवन्तसिंहजी को राजश्री महद्राजसभा के सदस्य नियत किये जाकर श्री महाराणा साहब का खास रुक्का इनायत हुआ। उसकी नक्ल—

'श्री एकलिंग जी' 'श्री राम जी' 'श्री नाथ जी'

हुकम

(आज्ञा)

कोठारी बलवन्तसिंह

"अपरच" थने महद्राजसभा को मेंबर मुकरर कियो गयो है, सो ज्यो सभा का कायदा अख्तीयार मुकर्रर हुवा वा पर पुरो अमल राख साथ महनत वा कोसास के बगैर रू रयायत मुलायजा तोर सु काम अन्जाम देतो रहवे और हमेशा अपक्षपात अर्मीराय होणो करे के जीमे दीन यदीन इनसाफ अर अमन ज्योके इण सभा कायम करवा सु खास मुरादहै हासिल हो अर थारी भी हर तरह इनसाफ पसन्दी वा नेकनामी जहूर मे आवती रहवे सवत् १९४३ रा मगसर विदी ७ गुरे।

के पेट में खलवली मच गई। और दरवार की कृपा देखते हुए उन्हें यही यक़ीन हुआ कि सोने के लंगर कोठारीजी को दिये जायेंगे। अतः वे सज्जन महलों से उतर गणेश-ड्योढी जा रहे थे कि कोठारीजी गणेश-ड्योढी चढ़ते हुए मिले। उन्होंने जलेभुने दिल से कोठारीजी को लंगरों के लिये मुबारिकवाद दिया। कोठारीजी ने कहा कि मेरी वाकफ़ियत मे नहीं है। ऊपर गये तो इस खुशी के मौक़े पर कैदियों के छोड़ने के लिये श्री दरवार ने नक्शा तलव फ़रमाया था। अतः वे मुलाहज़ा करा वापिस लौट गये। जव इनके हितेच्छुओं को यह पता पड़ा कि लंगर नहीं दिये गये और किसी कार्यवश वुलाये गये थे, तव उन्हें परम संतोष हुआ। पराये दुःख दुर्वल होने वाले विरले ही पैदा होते हैं किन्तु पराये सुख दुवले होने वालों की इस संसार में कमी नहीं है। यदि इतिहास के पन्ने उलटे जावे तो प्रायः किसी भी घर, कुटुम्व, जाति, देश व राष्ट्र जिस किसी का भी अधःपतन प्रारम्भ हुआ है, वहाँ मूल कारण पारस्परिक द्वेष व ईर्ष्या का ही प्रभाव पाया जायगा।

सोने के लंगर मिलना।

संवत् १९४५ चैत्र शुक्ला ३ के दिन गणगोर की सवारी थी और श्रीजी हुजूर चित्रशाली की ओवरी में पोशाक धारण कर रहे थे। जेवर सामने पड़ा हुआ था। उसमें से सोने के लंगर लेकर श्रीजी हुजूर ने पांडेजी को फ़रमाया कि यह लंगर कोठारीजी को पहनवा दिये जायें। अतः वहीं पर लंगर पहना कोठारीजी का नज़राना करवाया गया।

वख्शी हुई हवेली में कोठारीजी का निवास।

कोठारीजी के साथ इनकी माता का वैमनस्य चरम सीमा को पहुँच चुका था अतः अपनी वपौती की हवेली में रहना छोड़ सं० १९४५ में सहसा अपनी पत्नी तथा एकवर्षीय कन्या भोमकुँवरवाई को लेकर वख्शी हुई हवेली में चले आये। इस हवेली में सिर्फ दरवाजे पर दरीखाना व थोड़े से कच्चे मकान जो कोठारी केशरीसिंहजी ने हवेली मिलने पर वनवाये थे, मौजूद थे। कोठारीजी ने ऐसी स्थिति में नई हवेली में आकर निवास किया और शाम को भोजन वनवाने के लिये वर्तन भी वाजार से उस दिन के लिये उधार लाने पड़े। कोठारीजी के इस हवेली में आ जाने पर भी उनकी माता ने पीछा नहीं छोड़ा। प्रायः औरतों में संशय विशेष ही पाया जाता है, और संकुचित वुद्धि होने के कारण विना सोचे-समझे प्रत्येक कार्य करने को तैयार हो जाती हैं। यहां भी कोठारीजी को हानि पहुँचाने के लिये आटे के पुतले जमीन में गड़वाये तथा इस प्रकार के अनेक टोटके तथा यंत्र-तंत्र करवाये। किन्तु यह सव निष्फल हुए। उन पुतलों को कोठारीजी ने निकलवाकर फेंकवा दिया।

जिन दिनों कोठारीजी अपनी वपौती की हवेली मे रहते थे, उन दिनों बख्शी हुई हवेली मे दो तीन वाईस सम्प्रदाय के साधुओं का चातुर्मास कोठारीजी की माता ने करवाया था। उनका ढीला चलन होने से समाज तो पहले ही उन्हें नहीं मानती थी, किन्तु यहा पर भी उनकी कई एक शिकायतें सुनने पर जाच करा शिकायतें सच्ची होने से चातुर्मास में ही उनको पुलीस की मारफत कोठारीजी ने बाहर निकलवा दिया और तलाशी लेने पर उनके पास कई दोषात्मक चीजें—घूघू का मास, बन्दर की खोपडी, टाडन टुडन के सरजाम आदि निकले। अत कोठारीजी को इन साधुओं के प्रति विशेष अश्रद्धा हो गई।

वाईस सम्प्रदाय के साधुओ के प्रति अश्रद्धा।

पौष कृष्णा ११ स० १९४६ को महता गोविन्दसिंहजी मगरा के हाकिम के बीमार हो जाने से मगरे का काम भी कोठारीजी के सुपुर्द किया गया, जिसको कुछ अर्से तक इन्होंने सुचारुरूप से किया।

मगरे की हुकूमत।

सेठ जोरावरमलजी बापना ने प्राचीन समय मे मेवाड की अच्छी सेवा की। महाराणा स्वरूपसिंहजी के समय में जो मेवाड राज्य पर बीस लाख का कर्जा था, वह अधिकतर इन्हीं का था। इसका निपटारा महाराणा स्वरूपसिंहजी के समय मे होना प्रतीत होता है।

सेठजी के कमीशन में नियुक्ति।

जोरावरमलजी के द्वितीय पुत्र चन्दनमलजी तथा उनके पुत्र जुहारमलजी और छोगमलजी हुए। महाराणा साहब फतहसिंहजी के समय मे चित्तौड का रेलवे स्टेशन उदयपुर से ६९ मील दूर था, इससे यात्रियों को बडी असुविधा तथा कठिनाई उठानी पडती थी। अत महाराणा साहब ने उदयपुर और चित्तौड के बीच मेल-कार्ट चलाना निश्चित किया। उसकी निगरानी का कार्य सेठ जुहारमलजी को सौंपा गया, जिसमें बहुत नुकसान रहा। इस पर दरबार ने सेठजी से पहले का सब रुपया और

१ इन्हीं प्रसिद्ध सेठजी के वंश में छोगमलजी के द्वितीय पुत्र रायबहादुर सर सिरहमलजी बापना बडे ही योग्य निकले। इनके प्राचीन एवं प्रतिष्ठित घराने की स्थिति गिरी हुई होने की हालत में भी इन्होंने कठिन परिश्रम कर विद्याभ्यास किया। तत्पश्चात् क्रमश ये इन्दौर राज्य की सेवा में प्रविष्ट हुए, और लगभग ३२ वर्ष तक इन्दौर राज्य की विविध सेवाए कीं। वर्षों तक इन्दौर के प्रधान मन्त्री रहे और महाराजा यशवन्तराव द्वितीय की नाबालिगी मे तो वर्षों तक केबिनेट के प्रेसीडेन्ट भी यही रहे और इस उत्तमता से राज्य-सेवा करते हुए नीति-निपुणता, *न्याय शीलता, प्रबन्ध-कुशलता और सहृदयता का परिचय दिया कि राज्य की प्रजा एवं अँग्रेज-*सरकार दोनों ही इनसे प्रसन्न रहे। इनकी योग्यता का ही कारण है कि इन्होंने अपने घराने की

इस हानि की पूर्ति करने की आज्ञा दी। साथ ही एक कमीशन भी मुकर्रर कर दिया। उसके मेम्बर कोठारीजी, महता पन्नालालजी और जोशी नारायणदासजी नियुक्त हुए। इस समय सेठजी की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। इससे वे श्री दरबार की आज्ञा का पालन नहीं कर सके। अतः उन्हें अपना घरू सामान बेच राज्य के रुपयों का चुकारा करना पड़ा। उनका परासोली नामक गांव भी राज्य के अधिकार में चला गया और इस प्रतिष्ठित घराने की स्थिति बिलकुल बिगड़ गई।

रावली दुकान व हेम के गोले का कार्य सुपुर्द होना।

इन्हीं सेठजी के झगड़े में कई सरकारी अफ़सरों पर ग़ल्तियों के कारण कड़े जुर्माने किये गये। हेम के गोले का काम जो कोठारी मोतीसिंहजी तथा रावली दुकान का काम जो पंडित भवानीनारायणजी के सुपुर्द था, यह दोनों काम आषाढ़ कृष्ण १० सं० १६४७ में कोठारीजी के सुपुर्द किये गये। रावली दुकान तथा हेम के गोले के काम में कोठारीजी ने समय समय पर कई सुधार किये। जैसे कि रावली दुकान के हाकिम मन मकसूद रुपया लोगों को दे देते थे, वह बंदकर बाद मंजूरी देने की प्रथा जारी की। द्वितीय सोने या चांदी का पूरा ज़ेवर गिरवी रख अफ़सर के निज की ज़िम्मेवारी से रुपया कर्ज़ देने का सिलसिला जारी किया। कोठारीजी ने करीब ४२ वर्ष तक इस महक्मे का काम किया। इनकी सच्ची स्वामिभक्ति व कार्यकुशलता का ही परिणाम था कि उनके समय में कोई रकम नुकसान में नहीं गई और न ही राज्य से इनके वक्त के दिये हुए रुपयों में से एक पैसा अतो मंडवाने की ज़रूरत पेश आई।

कस्टम कमिश्नर के पद पर नियुक्ति।

आषाढ़ शुक्ला १४ सं० १६४८ को सेठजी के मामले में पंडित ब्रजनाथजी को मौकूफ़ किया जाकर महक्मा दाण का काम भी कोठारीजी के सुपुर्द किया गया। इस काम को आपने ६ महीने तक किया। फिर चैत्र सुदि १३ सं० १६४६ को सहीवाला हमीरसिंहजी के सुपुर्द हुआ। कोठारीजी ने इन नौ महीनों मे करीब दस हज़ार रुपयों की अमला खर्चे मे बचत रक्खी और ऐसी युक्ति से काम किया कि प्रजा पर नया कर भी

स्थिति, जो बीच में बिगड़ गई थी, पुनः उन्नति के पथ पर पहुँचाई। इन्दौर स्टेट मे भी उन्नति होने का मुख्य श्रेय इन्ही को है। रियासत इन्दौर से इन्हें वज़ीरुद्दौला और गवर्नमेन्ट से 'रायबहादुर' 'सर' व 'सी. आई. ई.' के खिताब मिले हैं। हाल मे ये इन्दौर राज्य की सेवा से रिटायर हो चुके हैं और इनके अनेक गुणों से मुग्ध हो बीकानेर दरबार ने इनको अपना प्रधान मंत्री बनाया है। इनके दो पुत्र हैं—बड़े कल्याणमलजी और छोटे प्रतापसिंहजी हैं, जो इन्दौर राज्य मे उच्च पदों पर नियुक्त हैं।

नहीं बढाना पडा तथा राज्य की आय मे भी वृद्धि हुई। श्रीजी हुजूर ने वार्षिक आय-व्यय का निरीक्षण कर फरमाया कि काम में खराबी न होते हुए खर्चे मे कमी करना हो तो वह काम कोठारीजी के सुपुर्द कर देना चाहिये। यह श्रीमानों की गुणग्राहकता का परिचय था।

शाहपुरे के मामले में सेवा।

शाहपुरे ठिकाने को मेवाड राज्य की ओर से काछोला की जागीर मिली है। और अन्य सरदारो के समान शाहपुरा राजाधिराज को भी मेवाड दरबार की सेवा मे हाजिर होना चाहिये था। किन्तु शाहपुरा राजाधिराज नाहरसिंहजी ने विक्रम स० १९४७ से उपस्थित होना बद कर दिया, जिस पर महाराणा साहब ने पोलिटिकल अफ़सरों से लिखा-पढी की। इस लिखा-पढी मे विशेष सेवा कोठारीजी को विश्वासपात्र समझ इनसे ली गई। कुछ वर्षों तक झगडा चलता रहा। अन्त मे अंग्रेज सरकार ने यह निर्णय किया कि शाहपुरे की जमीयत तो हर साल और राजाधिराज स्वय दूसरे साल नौकरी दिया करें। राजाधिराज के उदयपुर मे उपस्थित न होने पर उदयपुर राज्य उन पर एक लाख रुपये जुरमाने के करे। इस निर्णय के अनुसार शाहपुरा राजाधिराज का नौकरी मे हाजिर होना पुन जारी हो गया[1]।

श्यामजी कृष्ण वर्मा।

इन्हीं दिनों अजमेर के श्यामजी कृष्ण वर्मा बैरिस्टर को महाराणा साहब ने राज्य श्री महद्राजसभा का मेम्बर नियुक्त किया। यहा पर ये कुछ समय तक रहे। फिर जूनागढ राज्य के दीवान बनकर वहा चले गये परन्तु वहा पर आपसी मेल न रहने से पुन उदयपुर लौट आये और अपने पूर्व पद पर कार्य करने लगे। कोठारीजी का तथा इनका मेल अच्छा रहा। ये भी महाराणा साहब के विश्वासपात्र व सलाहकार रहे।

कोठारीजी को प्रधान बनाया जाना।

राज्य श्री महद्रमासास का काम राय महता पन्नालालजी के सुपुर्द था। स० १९५१ के भाद्रपद शुक्ला १ को श्रीजी हुजूर का विराजना सज्जनगढ था और कोठारीजी श्रीकैलाशपुरी थे। श्रीदरबार ने जगन्नाथजी ढींकडिया को हुकुम दिया और रातों-रात कैलाशपुरी चिट्ठी भिजवा कोठारीजी को उदयपुर बुलाया। इसी तारीख महता पन्नालालजी को यात्रा जाने के लिये छ माह की रुखसत दी गई। महक्मा-

---

[1] ठिकाने शाहपुरा को उदयपुर राज्य से दी हुई काछोला की जागीर अब वापिस जब्त कर ली गई है।

खास पर कोठारीजी व सहीवाला अर्जुनसिंहजी, जो एक वृद्ध व अनुभवी तथा पहले महाराणाओं के समय में मंत्री-पद पर रह चुके थे, इन्हें मुकर्रर किया और इस प्रकार दरवार ने अपनी इच्छानुसार मंत्रियों का चुनाव किया। छः माह समाप्त होने पर फाल्गुन सुदी ६ सं० १९५१ तारीख २ मार्च सन् १८९५ ईस्वी को महता पन्नालालजी का इस्तीफ़ा लिया जाकर कोठारीजी व अर्जुनसिंहजी को स्थायी रूप से महक्मा खास पर मुकर्रर कर दिया।

अर्जुनसिंहजी को पैरों में पहनने के सोने के लंगर व कोठारीजी को चम्प-कली (गले में पहनने का आभूषण) अता फ़रमाया तथा कोठारीजी व अर्जुनसिंहजी को नाव की सवारी मे श्रीजी हुजूर के विराजने की छत्री के दोनों आगे के खंभों के पास खड़े रहने की इज़्ज़त भी वख्शी।

कोठारीजी का स्वार्थत्याग।

महता पन्नालालजी को ८००) रुपये तनख्वाह के मिलते थे किन्तु अव दो मंत्रियों का चुनाव हो जाने से श्रीदरवार ने ३००) रुपये मासिक अर्जुनसिंहजी के लिए नियत किये। और कोठारीजी के लिये ५००) रुपये मासिक वख्शने को फ़रमाया। कोठारीजी को अपनी मानमर्यादा का वहुत विचार था। अतः उन्होंने अर्ज कराई कि अगर तनख्वाह वख्शी जावे तो ८००) माहवार होना चाहिये। पन्नालालजी को ८००) माहवार मिलते थे। अव मेरी तनख्वाह ५००) होने में मेरी ठीक नहीं दिखेगी। परन्तु श्रीदरवार ने विलफ़ेल ५००) ही वख़्शने को फ़रमाया और साथ ही यह भी आज्ञा की कि थोड़े दिनों वाद फिर वढ़ा दूंगा। लेकिन कोठारीजी ने यह मंजूर नहीं किया। अंततः हुकुम हुआ कि अगर तुम नहीं लेना चाहते हो तो तनख्वाह मत लो। जव तुम्हें रुपयों की ज़रूरत हो, कहना। सो इकट्ठे ही दे दूंगा। कोठारीजी पूरे संतोषी पुरुष थे। वे अपनी वात के वड़े धनी व विचारों के पक्के थे। कई अवसर शादी ग़मी वग़ैरह के ऐसे उपस्थित हुए कि उनमें आर्थिक सहायता की आवश्यकता थी। उन्होंने राज्य से कर्ज़ा भी लिया किन्तु वख्शाऊ मिलने के लिये कभी श्री दरवार में अर्ज नहीं कराई। कई लोगों ने समय समय पर कहा भी कि इस मौके पर रुपयों के लिये अर्ज कराई जाय किन्तु उन्होंने यही जवाव दिया कि श्रीजी हुजूर ने हुकुम वख्शा है कि जव ज़रूरत हो, तव कहना। सो जव तक कोई खास आवश्यकता पैदा न हो जाय तव तक श्री दरवार को तकलीफ़ देना अनुचित है।

कोठारीजी ने समय समय पर कर्ज़ लिया, जेवर गिरवी रख रुपया मिलने के लिये भी अर्ज कराई, किन्तु तनख्वाह के रुपये या उसके एवज़ वख्शीश की कभी अर्ज न कराई। और १३ वर्ष की उम्र से लेकर करीव ७६ वर्ष की

उम्र तक ६३ वर्ष के लगभग राज्य की छोटी से बडी विविध सेवाए अदम्य उत्साह और एकनिष्ठ स्वामिभक्ति के साथ कीं। यदि आजकल की तरह प्रत्येक पद की थोडी से थोडी तनख्वाह भी शुमार की जाती तो करीब ढाई-तीन लाख रुपये होते। किन्तु स्वार्थ-त्याग की मात्रा अपरिमित होने से कभी आपने तनख्वाह मिलने की इच्छा प्रकट नहीं की और हमेशा यही कहते रहे कि जो कुछ दरबार ने बख्श रक्खा है, उसका निभाव हो जाना ही श्री दरबार की अपूर्व कृपा का फल है। अन्यथा केसरीसिंहजी के बाद इस घर में टिके रहने की भी आशा नहीं थी और घर में टिकने के बाद दुश्मनों के चगुल मे से निकलते हुए प्रधान जैसे उच्च पद पर नियुक्त फरमा श्री दरबार ने हर तरह से मान व प्रतिष्ठा मे वृद्धि फ़रमाई है। यही पूरा पूरा पारितोषिक है।

श्री दरबार की पधरावणी।

सं० १९५१ की शीतलाष्टमी को श्री दरबार की पधरावणी कोठारीजी के यहा हुई। श्री कुंवरजी बापजी भी साथ पधारे। यह पधरावणी बडी ही धूम धाम के साथ हुई। श्रीजी हुजूर सवेरे १० बजे करीब कोठारीजी की हवेली पधारे। गोठ राग रग इत्र पान वगैरह हुआ। कोठारीजी को सीख में कठी सरपाव व इनके सुपुत्र गिरधारीसिंहजी को सिरोपाव बख्शा गया और सायकाल को सज-धजकर नगारे की सवारी करते हुए वापिस महलों में पधारे। इस पधरावणी पर कोठारीजी के मित्र व हितेच्छु खमपुर ठाकुर चमनसिंहजी ने एक दोहा श्री दरबार मे अर्ज किया। वह यह है—

स्वामी धर्म सरूप रो पहल्ल केहरी प्रधान।
कलवृछ फतमल तैं कियो बलवत ने बलवान॥

वास्तव मे बलवन्तसिंहजी का बलवान् बनना मेवाडनाथ की असीम कृपा का ही फल था।

कविराजाजी का देहान्त।

इसी वर्ष कोठारीजी के धर्मपिता, दुख के साथी व सच्चे गुरु महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी का कुछ समय बीमार रहकर सवत् १९५१ के ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को देहान्त हो गया। कविराजाजी के अवसान से कोठारीजी की भुजाएँ टूट गईं। उनका सच्चा हितचिन्तक एव दुख का साथी चल बसा। किन्तु कविराजाजी का ऐसी अवस्था मे अवसान हुआ, जब कि कोठारीजी के दुख के दिन बीत चुके थे और उन तीनों नरेशों की असीम कृपा से कोठारीजी राजकीय क्षेत्र में योद्धाओं से युद्ध करने के योग्य शक्ति-सम्पन्न हो चुके थे। अब कोठारीजी ऐसे एरण्ड के वृक्ष न रहे थे कि थोड़ी सी हवा के झोंका से गिर जाते। वे आंधी के वेगों को झेलने योग्य बन गये थे और पुष्ट वट वृक्ष

तुल्य दृढ हो चुके थे। आँधियाँ व बवन्डर बंद नहीं हुए किन्तु उनको झेलने की पूर्ण शक्ति उनमें आ चुकी थी और प्रधान पद को प्राप्त कर चुके थे। इतने पर भी कविराजा जी की स्मृति व क्षति नित्य कोठारीजी के हृदय मे आजन्म बनी ही रही।

श्री दरबार की पधरावणियाँ।

सं० १९५१ से लेकर सं० १९५८ तक हर साल शीतला अष्टमी पर श्री दरबार की पधरावणी कोठारीजी की हवेली होती रही और सं० १९५६ तक तो श्री कुंवरजी बापजी भी प्रत्येक वर्ष श्री दरबार के साथ पधारते रहे। सं० १९५६ से श्री कुंवरजी बापजी को तकलीफ़ हो जाने के कारण पधारना नहीं हुआ। सं० १९५९ मे माँजी साहिबा राठौड़जी के स्वर्गवास हो जाने से और सं० १९६० में श्री दरबार के अजमेर पधार जाने तथा सं० १९६१ में मेवाड़ में भयंकर प्लेग—महामारी का प्रकोप हो जाने से श्रीजी हजूर की पधरावणी कोठारीजी के यहां नहीं हो सकी।

प्रधान के कार्य की तबदीली।

इन वर्षों मे कोठारीजी को श्री दरबार की पेशी, महक्माखास, देवस्थान, सरकारी दुकान इत्यादि छोटे मोटे कई एक महक्मे एक दम सुपुर्द हो जाने से आँखों की रोशनी में फ़र्क आने लग गया और तन्दुरुस्ती भी खराब रहने लग गई। अतः पेंक साहब से जांच कराने पर उन्होंने कहा कि ज़रूरत से ज़्यादा दस गुणा वज़न आप पर पड़ गया है। यदि आगे भी यही सिलसिला जारी रहा तो कुछ दिनों में आँखों की रोशनी बिलकुल खराब हो जायगी और स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा। अतः आपने श्री दरबार में अपने अधीन कार्यों को दूसरों के सुपुर्द होने की अर्ज कराई किन्तु मंजूर नहीं हुई। अन्त मे बहुत तकलीफ़ होने तथा अर्जुनसिंहजी के अधिक वृद्ध हो जाने पर इन दोनों ने कई वार किसी दूसरे की नियुक्ति के लिये प्रार्थना करवाई और वैशाख शुक्ला ११ सं० १९६१ ता० १५ मई सन् १९०५ ईस्वी को महता भूपालसिंहजी और महासानी हीरालालजी इनके स्थान पर मुकर्रर किये गये।

अर्जुनसिंहजी का प्रेम।

सहीवाला अर्जुनसिंहजी वृद्ध, अनुभवी, विचार-शील एवं शुद्ध प्रकृति के मनुष्य थे। इन्हें कई वार प्रधान पद का काम करने का अवसर मिलने से बहुत अनुभव हो गया था। ये राज्य के सच्चे हितैषी और स्वामिभक्त सेवक थे। यही कारण है कि आपसे सभी नरेश प्रसन्न रहे।

अन्तिम वार कोठारीजी के साथ महाराणा साहब फतहसिंहजी के समय में प्रधान पद पर जब अर्जुनसिंहजी नियुक्त हुए तब वृद्धावस्था के कारण काम करने में अशक्त हो गये थे। कोठारीजी के साथ इनका पूरा मेल रहा। वे कोठारीजी को हमेशा बड़ा समझ उनके साथ पूर्ण आदर-पूर्वक बर्ताव करते रहे। यहां तक कि

वे कोठारीजी से कहा करते थे कि आपकी कृपा से मुझे तनख्वाह मिल रही है। मैं तो काम करने से नितान्त अशक्त हूँ। इसका उत्तर कोठारीजी यह देते थे कि आपका ऐसा फ़रमाना बडप्पन है। आप तो बुज़ुर्ग और मुरव्वी हैं। आपके आशीर्वाद से हम जैसे बच्चों के कार्य फलीभूत होते हैं। नित्य आपके साथ कार्य करने का अवसर मिलने से मेरे लिये इससे बढकर सौभाग्य की बात ही क्या हो सकती है। प्राय कोठारीजी अर्जुनसिंहजी को भोजन के लिये अपनी हवेली पर बुलाते। बडे आदर-पूर्वक अपने हाथ से भोजन परोसकर जिमाते, स्वय उनके पास बैठ उनके भोजन करते समय मक्खिया उडाते और उनके प्रति पूज्य दृष्टि रखते रहे, जो अन्त समय तक बनी रही।

अर्जुनसिंहजी का जन्म श्रावण शुक्ला ? स० १८८२ को हुआ था और ८० वर्ष ६ माह की आयु में वैशाख शुक्ला २ स० १९६? ता० ?५ अप्रैल सन् १९०६ ईस्वी को इनका परलोकवास हुआ। महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी ने निम्न कविता में इनका चरित्र-चित्रण किया है।

'पढियो पुराण धर्म नीति को निसाहपूर,
सज्जन ते सनेह त्यों असज्जन अभाव है।
बात कही सो तो लेख हृदय पे लिखाय दई,
झूठ को न लेश साच साच को सुभाव है॥
साम धर्मधारी सदा सत्य न्यायकारी,
वीर पुत्र शिवसिंह सदा कविन निभाव है।
सोहत सदीव श्री गोपाल ज्यों नृपाल शभू,
अर्जुन त्यों अर्जुन की बुद्धि को प्रभाव है॥'

वायसराय का आगमन।

स० १९४२ में भारत के वायसराय लार्ड एलगिन उदयपुर आये और यहा की प्राकृतिक छटा को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। श्री जगदीश के मदिर मे हाथ में पहनने का सोने का एक कडा भेंट किया। यह पहले वायसराय थे, जो चित्तौड से देबारी तक रेल मे आये। वायसराय के उदयपुर आने पर हमेशा माफ़िक वायसराय की सेवा मे कोठारीजी की भी नज़र कराई गई। यही नहीं, बल्कि कोठारीजी के मन्त्रित्व मे और इसके पूर्व तथा पश्चात् भी अर्थात् स० १९३? विक्रम मे लार्ड नार्थब्रुक, स० १९४? मे लार्ड डफ़रिन, स० १९४५ मे ड्यूक ऑफ़ केनाट, स० १९४६ में प्रिन्स एल्बर्ट विक्टर, स० १९४? मे लार्ड लैन्सडाउन, स० १९५९ मे लार्ड कर्ज़न, १९६? म प्रिन्स ऑफ़ वेल्स और स० १९६६ में लार्ड मिन्टो आये तब भी कोठारीजी की नज़र कराई गई।

सं० १९५४ में महाराणी विक्टोरिया की डायमंड जुबिली के अवसर पर उदयपुर में भी वड़ा भारी उत्सव हुआ। शाम को दरबार हुआ। उसमें मेजर रेवनशा ने लाट साहब का खरीता पढ़कर सुनाया। शाम को शंभुनिवास में खाना हुआ और तालाव की रोशनी और आतिशवाजी वहुत ही उम्दा हुई। अंग्रेज़ सरकार की ओर से श्री दरवार की २१ तोपों की ज़ाती सलामी कर दी गई। और महाराणी साहिबा को 'आर्डर ऑफ़ दी क्राऊन ऑफ़ इन्डिया' की उपाधि मिली। राजपूताने की यह पहली महाराणी साहिवा थीं, जो इस उपाधि से भूषित की गई।

महाराणी साहब को पदक।

इसी वर्ष मोरवी राज्य के कुमार हरभामजी को श्री दरवार ने उदयपुर बुला राज्य श्री महद्राजसभा का मेम्बर वनाया। ये श्री दरवार के वड़े विश्वासपात्र सेवक रहे किन्तु विशेष कारण से दो वर्ष वाद ही वापिस काठियावाड़ चले गये। हरभामजी व कोठारीजी मे परस्पर वड़ा मेल जोल रहा। यहां तक कि ये दोनों दिन में एक वार अवश्य ही मिल लिया करते थे।

कुमार हरभामजी की नियुक्ति।

मेवाड़ के नरेश हमेशा से अपने धर्म, मान व मर्यादा के निभाने वाले हुए हैं। इनकी धर्मदृढता के कारण ही इनके इष्टदेव ने भी नित्य रक्षा कर इनके गौरव को वढ़ाया है। मेवाड़ राज्य का मोटो भी यही है कि 'जो दृढ़ राखे धर्म को, तिहि राखे करतार'। प्रत्येक भारतवासी ही क्या, संसारमात्र प्रातःस्मरणीय वीर-शिरोमणि महाराणा प्रताप के नाम से परिचित होगा। आशा की जाती है कि वीरपुंगव प्रणवीर प्रतापी प्रताप का यह दोहा

प्रणवीर महाराणा साहब, दिल्ली का दरवार और कोठारीजी का अपूर्व मान।

'तुरक कहासी मुख पतो, इण तन सूं इकलिंग।
ऊगे ज्यूंही ऊगसी, प्राची वीच पतंग॥'

अव भी जनता की स्मृति से वाहर न हो गया होगा। धन्य है, उस वीर-प्रसविनी मेवाड़ माता को, जो ऐसे ऐसे वीरों को जन्म देकर गौरव की पात्री वनी है। इसी वंश मे मर्यादा-पुरुषोत्तम धर्म-धुरीण आर्य-कुल-कमल-दिवाकर महाराणाजी श्री फतहसिंहजी ने जन्म धारण कर मेवाड़ के सिंहासन को सुशोभित किया था। ता० १ जनवरी सन् १९०३ ईस्वी पौष शुक्ला २ सं० १९५९ को शहनशाह सप्तम एडवर्ड की गद्दी-नशीनी की खुशी में दिल्ली में एक वड़ा दरवार हुआ, जिसमें शहनशाह के छोटे भाई ड्यूक ऑफ केनाट और भारत के सव ही नरेश तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति

सम्मिलित हुए। भारतवर्ष के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड कर्जन के विशेष आग्रह करने पर तारीख ३० दिसवर सन् १६०२ ईस्वी पौष शुक्ला १ स० १६५६ को श्री दरवार भी उदयपुर से पधारे। और ता० ३१ दिसवर की रात्रि को दिल्ली पहुँच गये। किन्तु अकस्मात् खेद हो जाने से श्री दरवार को वापिस उदयपुर आना पडा। और दिल्ली दरवार मे वे शरीक नहीं हो सके। राज्य की ओर से उमरावों को दरवार मे भेजा गया। उसमे कोठारीजी भी थे।

कोठारीजी की विशाल आकृति, सुडौल शरीर, जवान चेहरा और सुसज्जित वस्त्राभूषण को देखकर लोग सहसा पूछ उठते कि ये कौन हैं? ऐसा उत्तर मिलने पर कि ये श्री मेवाड दरवार के दीवान हैं, लोग विस्मय व आश्चर्य मे पड जाते और कहते कि जिस रियासत के दीवान ऐसे प्रभावशाली हैं, उस रियासत के रईस कैसे दर्शनीय होगे। चातक की भाति टकटकी लगाये आँखें फाडते फाडते लोग थक गये किन्तु दिल्ली दरवार में न पधारने से उन्हे श्री दरवार के दर्शन करने का अवसर प्राप्त न हो सका। इसी अवसर पर केशरीसिंहजी वारहट ने निम्न दोहे लिखकर श्री दरवार मे नजर कराये। किन्तु उदयपुर से रवानगी हो जाने के कारण ये दोहे देहली पधारते समय अग्रेजी डाक से स्टेशन सरेरी पर नजर हुए। वे ये हैं—

पग पग भम्या पहाड़, धरा छॉड राख्यो धरम।
महाराणारु मेवाड़, हिरदे वसिया हिन्द रे ॥१॥

घण घलिया घमसाण, राण सदा रहिया निडर।
पेखन्ता फुरमाण, हलचल किम फतमल हुवे ॥२॥

गिरद गजा घमसाण, नहचे धरमाई नहीं।
मावे किम महाराण, गज दोसेरा गिरद में ॥३॥

ओराने आसाण, हाका हरवल हालणो।
किम हाले कुल राण, (जिण) हरवल साहा हकिया ॥४॥

नरियंद सह नजराण, झुक करसी सरसीजिकॉ।
पसरेलो किम पाण, पाण छुता थारो फता ॥५॥

सिर झुकिया सहँसाह, सिंहासण जिण साम्हने।
रलणो पकत राह, फावे किम तो ने फता ॥६॥

सकल चढावे शीश, दान धरम जिण रो दियो।
सो खिताब वखसीस, लेवण किम ललचावसी ॥७॥

देखे ला हिन्दवाण, निज सूरज दिस नेह सू।
पण तारा परमाण, निरख निसासा नाखसी ॥८॥

देखे अंजसदीह, मुलकेलोमनही मना।
दंभी गढ दिल्लीह, शीस नमंता शीशवद ॥९॥

अंत वेर आखीह, पातल जे वाता पहल।
राणा सह राखी ह, जिण री साखी सिर जटा ॥१०॥

कठिन जमानो कोल, वाँधे नर हिम्मत विना।
वीरां हंदो वोल, पातल साँगे पेखियो ॥११॥

अवलग सारा आस, राण रीत कुल राखसी।
रहो सहाय सुखरास, एकलिंग प्रभु आपरे ॥१२॥

मान मोद शीशोद, राजनीति वल राखणो।
गवरमेंट री गोद, फल मीठा दीठा फ़ता ॥१३॥

भावार्थ—पाओं पाओ पहाड़ों में भटकते फिरे [पृथ्वी छोड़कर धर्म को वचाया], इसी लिये महाराणा और मेवाड़ ये दो शब्द हिन्दुस्तान के हृदय में वस रहे हैं ॥१॥

अनेक युद्ध हुए, तव भी महाराणा सदा निर्भय रहे। हे फ़तहसिंह, अव सिर्फ़ फ़रमानों को देखकर यह हलचल कैसे मच गई ॥२॥

जिसके हाथियो की युद्ध की उड़ी हुई गर्द (धूलि) निश्चय ही पृथ्वी में नही समाती थी, वही महाराणा स्वयं दो सौ गज के गिरद (घेरे) में कैसे समा जायगा ॥३॥

दूसरे राजाओ के लिये आसान होगा कि वे हंकाले जाने पर शाही सवारी में आगे वढ़ते रहें (चलते रहें) परन्तु जिस महाराणा के वंश ने अपने हरोल में (आगे) वादशाहों को हाक लिया था (भगा दिया था), वह शाही सवारी में कैसे चलेगा ॥४॥

दूसरे सव राजा झुक करके नजराना दिखायेंगे, यह उनके लिये तो सहज होगा परन्तु हे फतहसिंह, तेरे हाथ में तो तलवार रहती है, उसके रहते हुए नजराने का हाथ आगे कैसे फैलेगा ॥५॥

जिसके सिंहासन के सामने वादशाहों के सिर झुके हैं, हे फ़तहसिंह, अव पंक्ति में मिल जाना तुझे कैसे फवेगा ॥६॥

जिसके दिये हुए धर्म के दान को संसार सिर पर चढ़ा रहा है, वह हिन्दुपति खितावों को वख्शीश लेने के लिये कैसे ललचायगा ॥७॥

समस्त हिन्दू अपने सूर्य की ओर स्नेहपूर्वक देखेंगे परन्तु जब उनको तुम तारा बने हुए, स्टार ऑफ इन्डिया, दिखाई दोगे तो वे अवश्य ही निश्वास डालेंगे ॥८॥

हे सिसोदिया, दिल्ली का दभी किला तुझे सिर झुकाते हुए देखकर मन ही मन हँसेगा और उस दिन को अपने लिये अभिमान का दिन समझेगा ॥९॥

पहले महाराणा प्रताप ने अतिम समय म जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उनको आज तक सब महाराणाओं ने निभाया है और इसकी साक्षी खुद तुम्हारे सिर की जटा है ॥१०॥

मनुष्य अपने में हिम्मत न होने पर ही यह सिद्धान्त बाध लिया करता है कि 'जमाना मुश्किल है'। इस वीर-वाणी के रहस्य को सागा और प्रतापसिंह समझे थे ॥११॥

अब तक सब को यही आशा है कि महाराणा अपने वश की रीति को रक्खेंगे। सुख के राशि भगवान् एकलिंग आपकी सहायता में रहें ॥१२॥

हे शिशोदिया फतहसिंह, अपनी प्रतिष्ठा और हर्ष को राजनीति बल से रखना ही होगा। इस गवर्नमेन्ट की गोदी में मीठे फल देखे हैं ? ॥१३॥

ये उपर्युक्त दोहे दरबार ने सैलून में विराजे विराजे पढकर कोठारीजी को भी पढने के लिये बख्शे, जो पढकर उन्होंने वापिस नजर कर दिये।

स० १९५६ का भयकर अकाल।

स० १९५६ ईस्वी सन् १८९९ में समय पर वर्षा न होने से मेवाड मे भयकर अकाल पडा और लोग इतने दुखी व पीडित हो गये कि अनाज न मिलने से वन्य पशु तक खाकर रहने लगे और घास के अभाव मे उन्होंने हथिया थोर के पत्ते तक पशुओ को खिलाना शुरू कर दिया। कई एक क्षुधातुर प्राणी अपने बच्चों को बेचकर पेट भरने लगे। सारे राज्य मे हाहाकार मच गया। ऐसे विकट सकट से अपनी प्यारी प्रजा के दु ख निवारण करने के लिये श्री दरबार ने यथासाध्य चेष्टा की। बाहर से हजारो मन अन्न मगवाया गया। बडे बडे कस्बों में खैरातखान खोले गये। व्यापारियो को मदद दी। इमदादी काम 'रिलीफ वर्क्स' जारी किये। कोठारीजी को भी इस घोर दुर्भिक्ष के समय प्रजा का कष्ट निवारण करने के लिये हुकुम बख्शाया, सो उन्होंने मेवाड के जिलों मे दौरा कर भरसक प्रयत्न व प्रबध किया। बहुत कुछ मदद मिली। किन्तु इन सब उपायो से भी आवश्यकतानुसार सफलता न हो सकी। लाखो मनुष्य एव पशुओं का नाश हो गया। दूसरे वर्ष वृष्टि होने से फसल अच्छी हुई। किन्तु लोग इतने आतुर हो रहे थे कि फसल पकने भी नहीं पाई और खाना शुरू कर दिया। फलत हजारों मनुष्य हैजा, पेचिश एव ज्वर के लपेट में आ गये। स० १९४७ की मर्दुमशुमारी मे मेवाड की आबादी १८ लाख ४४ हजार की थी। उसके बजाय स० १९५७ में १० लाख १८ हजार

आठ सौ की रह गई। सं० १९५६ व सं० १९५७ के ऐसे विकट वर्ष कहे जाते हैं कि जिन्हें उन वर्षों का अनुभव है, याद करके उनके अब भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

कोठारीजी की बड़ी कन्या भोमकुंवरबाई का विवाह भी इसी सं० १९५६ के वर्ष हुआ था। उस विवाह में जीमन एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना एक महा कठिन समस्या थी। शहर के बाजार व गलियों में सैकड़ों दुर्भिक्ष-पीड़ित लोग लूटने के लिये ऊपर पड़ते थे। लोग यहां तक क्षुधातुर थे कि यदि दाल की साग सड़क पर ढुल (गिर) जाती तो उसे भी ज़बान से चाट जाते थे। जानवर घोड़े इत्यादि लीद करते तो उसमें से अनाज बीनकर वह भी चबा जाते। इसके सिवाय और क्या विकट स्थिति हो सकती है। ईश्वर ऐसे दुर्दिन न दिखावे।

कोठारीजी की तीर्थ-यात्रा।

सं० १९५७ के भाद्रपद शुक्ला १२ को कोठारीजी अपनी धर्मपत्नी, पुत्र गिरधारीसिंहजी, दोनों कन्याएँ भोमकुंवर और यशकुंवर तथा अपनी धर्ममाता (कविराजाजी श्यामलदासजी की धर्मपत्नी) तथा कविराजाजी की बड़ी कन्या अनूपकुंवर और इनके (कविराजाजी के) भाणेज चेनकुंवर को साथ लेकर काशी, गया, प्रयाग, दिल्ली आदि स्थानों की यात्रा को रवाना हुए और तीर्थों में देव-दर्शन दान पुण्य इत्यादि धार्मिक कृत्य करते हुए सानन्द यात्रा समाप्त कर जोधपुर होते हुए कार्त्तिक कृष्णा ५ को वापिस उदयपुर आ गये। इस मौके पर जब जोधपुर गये, तब जोधपुर-नरेश महाराजा साहब जसवन्तसिंहजी ने कोठारीजी को हाथी सिरोपाव के ६००) रुपये और गिरधारीसिंहजी को घोड़े सिरोपाव के २४०) कलदार रुपये भी बख्शे। इस यात्रा में कोठारीजी का पांच हजार तीन सौ चौवन रुपया खर्च हुआ। कोठारीजी को वाह्याडंबर पसंद न था और यद्यपि रियासतों में जाने का इन्हें प्रायः अवसर उपस्थित होता रहता तथापि रईसों से मुलाकात करने व उनके पास हाजिर होने के ये उत्सुक नहीं रहते थे। उसी प्रकार इस मर्तबा जोधपुर जाने पर भी ये महाराजा साहब के पास हाज़िर न हुए। किन्तु जब कोठारीजी के जोधपुर में होने की महाराजा साहब को मालूम हुई, तो उन्होंने कृपा कर साग्रह कोठारीजी को बुलाया और राज्य के अतिथि रखकर उपर्युक्त सिरोपाव बख्श विदा किया।

सं० १९५८ का दुर्भिक्ष।

सं० १९५८ में मगरे जिले में दुर्भिक्ष होने से प्रजा की भलाई व परदा-नशीन औरतों की मदद के लिये २५०००) रुपयों की रकम बख्श कर सात मेम्बरों की कमेटी बनाई। उसमें कोठारीजी को भी मेम्बर मुकर्रर किया और गरीबों के कष्ट दूर करवाये गये। उस वर्ष मेवाड़ में चूहे बहुत हुए और फ़सल को भी बहुत हानि पहुँची।

स० १९५४ में मेजर रेवनशा उदयपुर के रेजिडन्ट मुकर्रर हो चुके थे। उन्हीं दिनों कोई अंग्रेज होटल पर ठहरा हुआ था। उस अंग्रेज व रेवनशा में परस्पर अनबन थी। कोठारीजी अपने पिता की दाग-तिथि होने के कारण आयड में गंगोद्भव छत्री पर धोक देने (प्रणाम करने) गये थे। उस सडक से कोठारीजी को आते हुए रेजिडेन्ट साहब के किसी खानसामे ने देख लिया। और उसने जाकर रेजिडेन्ट महोदय को कहा कि दीवान साहब होटल पर उन साहब से मिलने गये थे। मैंने उसी सडक से बग्घी में आते हुए उन्हें देखा है। रेजिडन्ट ने उसके कथन पर पक्का विश्वास कर लिया और कोठारीजी से रेजिडन्सी जाने पर पूछा कि क्या आप उन साहब से मिलने होटल पर तशरीफ़ ले गये थे? करीब डेढ घंटे इसकी बहस रही। ज्यों ज्यो कोठारीजी इनकार करते थे त्यों त्यों साहब गुस्से पर चढते गये। कोठारीजी तेज स्वभाव वाले, खरी प्रकृति के, अपनी बात के धनी व मानी पुरुष थे। आखिर उन्होंने साहब से कहा कि कोई शख्स अच्छे आदमी की संगति से कुछ नसीहत सीखता है। आप मुझे झूठ बोलना सिखाना चाहते हैं। यह मैं नहीं कर सकता। अगर मैं गया भी होऊँ तो मुझे इनकार करने की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि मुझे उनसे मिलने की अब तक किसी ने रोक नहीं की है, वग़ैरह। इस पर साहब और भी तेज हो गये और सहसा बोल उठे कि हम बेहतर समझते हैं कि आप दीवान के ओहदे से इस्तीफ़ा दे दें। कोठारीजी ने उत्तर दिया कि मुझे आपको इस्तीफ़ा देने का कोई हक़ नहीं है। न आप मेरा इस्तीफ़ा ले सकते हैं। हॉं, अलबत्ता मैं आपकी बडी मेहरबानी समझूगा अगर आप श्री दरबार में मालूम करें और वे मेरा इस्तीफ़ा कबूल कर लें। क्योंकि मेरी तन्दुरुस्ती भी खराब रहती है और काम भी इतना ज्यादा मेरे सुपुर्द है कि मैं उसे स्वयं ठीक तरह नहीं देख सकता। आप यह मुतलिक खयाल न करें कि इस नौकरी के चले जाने से मुझे कोई तनख्वाह का नुकसान होगा अथवा बना रहने से फ़ायदा। इस प्रकार बहस तक़रीर एक मामूली बात पर बढ गई। किन्तु कोठारीजी की दृढता पर रेजिडेन्ट महोदय को भी बडा आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसी समय खानसामा को बुलाकर पूछा कि क्या तुमने दीवान साहब को होटल से निकलते देखा? उसने कहा कि मैंने उस सडक से आते देखा, होटल से निकलते तो नहीं देखा। इस पर उन्होंने उस खानसामा को बहुत डॉंटा। अपने हठ पर पश्चात्ताप करते हुए साहब ने कोठारीजी को कहा कि हम आपकी सचाई से बहुत खुश हुए और इस बहस की यादगार में एक चांदी की पेन्सिल आपको देता हूँ। परन्तु कोठारीजी के इनकार करने पर श्री दरबार में अर्ज कर कोठारीजी को पेन्सिल लेने के लिये हुकुम दिलाया और जब तक वे रेजिडेन्ट रहे, कोठारीजी की सत्यता एवं स्पष्टवादिता पर वे भी पूर्ण विश्वास करते रहे। सत्य एक ऐसी वस्तु है, जिसके साथ विजय नित्य अनुगामिनी रहती है।

कोठारीजी का सत्य-स्वभाव।

कार्त्तिक सुदी ८ सं० १९६२ तदनुसार ता० ४ नवम्बर सन् १९०५ ईस्वी को महक्मामाल के काम पर महता भूपालसिंहजी के स्थान पर कोठारीजी की नियुक्ति हुई। देवस्थान पर बजाय कोठारीजी के महता तख्तसिंह जी नियुक्त हुए। देवस्थान का चार्ज होने पर लोगों ने अनेक प्रकार से देवस्थान के काम में कोठारीजी की त्रुटियां निकालीं और श्री दरबार मे अर्ज की गई। पूछ-ताछ होने पर कोठारीजी ने प्रत्येक बात का जवाब दिया, जिससे शत्रुगण को सफलता प्राप्त न हुई। कोठारीजी के जिम्मे दूसरे कई एक महक्मे होने से देवस्थान की कुछ मिसलें चढ़ भी गई थीं, जिसके लिये कुछ लोगों ने श्री दरबार में अर्ज कराई कि ये मिसलें कोठारीजी को निकालने का हुकुम होवे। इसके लिये कोठारीजी से पूछा गया तो उन्होंने वापिस अर्ज कराई कि आम तौर पर यह क़ायदा है कि जिसके सुपुर्द जो काम हो और उससे वह हटा दिया जावे फिर उसको कोई अख्त्यार नहीं है कि उस महक्मे के काग़ज़ों पर एक अक्षर भी लिखे। ऐसी हालत मे देवस्थान की मिसलें, मेरे से ये काम अलग हो जाने पर, मैं निकालूंगा तो भविष्य में स्वार्थी लोगों के लिये अमुक महक्मे से पृथक् हो जाने पर भी उस कार्य में हस्तक्षेप होने का एक उदाहरण हो जायगा। इस पर आखिर तत्कालीन देवस्थान हाकिम को ही मिसलें निकालने का हुकुम हुआ।

महक्मेमाल पर नियुक्ति और देवस्थान के हमले।

कोठारीजी के इष्टदेव श्री परमेश्वरों 'एकलिंगजी' की आशिका में बिल्व पत्र केशर पुष्प माला व प्रसादी बीड़ियाँ जो कोठारीजी के यहां केशरीसिंहजी के समय से नित्य आती थीं, उन्हें बन्द कराने की भी लोगों ने भरसक कोशिश की। किन्तु श्री मालिकों की अपूर्व कृपा से इसमें भी उन्हें सफलता न हुई और अपने इष्टदेव की आशिका से अपनी आत्मा को पवित्र करने का सौभाग्य श्री एकलिंगजी तथा श्री दरबार के परम भक्त कोठारीजी को बना रहा और अब भी बराबर उसी प्रकार आशिका आती है अतः अपनी आत्मा को शुद्ध करने का सौभाग्य श्री मालिकों की कृपा से बना हुआ है।

महक्मामाल का काम लगभग ९ वर्ष तक कोठारीजी के अधीन रहा और सं० १९७१ के श्रावण में कोठारीजी के स्थान पर ला० रामप्रताप सिंहजी महक्मामाल पर मुकर्रर हुए। इस काम को करने मे हमेशा कोठारीजी ने यह विचार रक्खा कि कहीं बेचारे गरीब किसानों पर अन्याय न होने पावे और राज्य का भी नुकसान न हो। इनके समय के काम को मिस्टर सी. जी. चेन विक्स ट्रेन्च I.C.S., C.I.E.— जो सन् १९२३ ईस्वी के नवम्बर में मेवाड़ के महक्मामाल और

महक्मामाल पर दूसरे अफ़सर की नियुक्ति और कोठारीजी की कारगुज़ारी।

सेटलमेन्ट के हाकिम नियुक्त हुए—ने भी साक्षीभूत माना है और कई दफ़ा कोठारीजी से जिक्र किया तथा गिरधारीसिंहजी को एक अलमारी मिसलो से भरी हुई मिस्टर ट्रेन्च ने जो अपने वगले में रख छोडी थी दिखाई और कहा कि यह आपके पिता के वक्त की स्टन्डर्ड मिसले हैं। जब कभी हमें दिक्कत पेश आती है, इन्हे देखने से वडी मदद मिलती है। इनके समय की कार्रवाई वडी वाजिब व पुख्तगी लिये हुए थी। इसलिये हमने यह मिसलें यहा रख छोडी हैं। इनको रात के दो दो वजे तक हम पढते हैं और इनसे सवक सीखते हैं। क्योकि इनमे वडे तजुर्वे की वातें हैं।

इसी वर्ष चादी की टकसाल (Mint) का काम भी महता भूपालसिंहजी से निकलकर कोठारीजी के सुपुर्द हुआ, जिसे कुछ वर्षों तक इन्होंने सुचारु रूप से किया।

टकसाल का कार्य।

महाराणा साहब फतहसिंहजी की सेवा मे रहकर फलीभूत होना यह भी मनुष्य के लिये एक विशाल समुद्र को तैर कर पार करने के तुल्य दुरूह और कठिन कार्य था। कोठारीजी के जीवन मे समय समय पर सतोष के चुटकले दृष्टिगोचर होते हैं, जिससे कोठारीजी के चरित्र-गठन, नि स्वार्थता और दृढ-प्रतिज्ञ होने का चित्र सहसा सम्मुख आ जाता है।

स्वार्थ-त्याग का दूसरा उदाहरण।

कोठारीजी के पुत्र गिरधारीसिंहजी के वाल्यकाल मे अस्वस्थ रहने से पठन पाठन सामान्य ढग से ही हुआ। स० १९६२ में इनका विवाह हो जाने से विद्याध्ययन का क्रम छूट ही गया। इसके कुछ समय बाद श्री दरवार ने कृपा कर राणावत मोडसिंहजी के साथ फरमाया कि मैं गिरधारीसिंह को वाहर जिले की हुकूमत पर भेजना चाहता हू किन्तु कोठारीजी ने अर्ज कराई कि इसकी आयु अभी कम है। इसलिये वाहर जिले में तो मैं इसे भेजना नहीं चाहता। श्रीजी हुजूर के हुक्म मे कोई उज्र नहीं। किन्तु खावदी करा यहीं कोई सेवा लेवाई जावे। अत उन दिनों गिरधारीसिंहजी की हाकिमी के पद पर नियुक्ति न हो सकी। और वाद मे उम्र वढ जाने पर भी कभी कोठारीजी ने इसके लिये मालूम भी न करवाई।

स० १९४७ में वम्बई तथा स० १९४८ मे कलकत्ते जवाहरात खरीदने के लिये कोठारीजी को भिजवाया गया। वम्बई में कोठारीजी अपने परम मित्र शुद्धहृदय सेठ चता भाई मुरारजी के और कलकत्ते मे वहा के प्रसिद्ध सेठ बद्रीदासजी के महमान रहे। इसके अतिरिक्त कई वार सरकारी काम पर जयपुर, जोधपुर, आवू वगैरह जाना पडा। किन्तु आजकल की प्रथानुसार कभी कोठारीजी ने भत्ता माईलिएज वगैरह के विल पास

स्वार्थ-त्याग का तृतीय उदाहरण।

नहीं करवाये और हज़ारों रुपयों का खर्च अपने घर से किया। वहुत वर्षों वाद सं० १९६५ मे कोठारीजी को श्रीजी हुजूर ने वहुत आग्रह के साथ फ़रमाया कि बाहर आने जाने में तुम्हारा वहुत खर्चा हो गया होगा। हम भी भूल गये। तुमने भी हिसाव पेश नहीं किया। अव भी हिसाव पेश कर रुपये ले लो। किन्तु कोठारीजी ने कोई हिसाव पेश नहीं किया और मालूम कराई कि खानाज़ाद तो श्रीजी हुजूर का लगाया हुआ वृक्ष है और जो कुछ उपस्थित है, वह श्रीजी हुजूर का ही प्रताप है। मेरे यहां कहां से आया। फिर भी श्रीजी हुजूर फ़रमाते ही रहे और सं० १९६५ के कार्त्तिक कृष्णा १० को महक्माखास का रुक्का दस्तखती महता भूपालसिंहजी भिजवाया जाकर हिसाव ज़रूरी सीगे में तलव फ़रमाया। इस पर कोठारीजी ने और सव खर्चा वाद करते हुए सिर्फ़ रेल किराये का या जो जरूरी हिसाव था, वही पेश किया और उसी माफ़िक रुपये वख़्शे हुए ले लिये। स्वार्थ-त्याग व संतोष का यह भी एक उदाहरण है।

सं० १९६६ में श्रीजी हुजूर का दौरा मेवाड़ में हुआ। तव कोठारीजी को भी साथ ले पधारे और इसी वर्ष महता भूपालसिहजी व महासानी

द्वितीय वार प्रधाना। हीरालालजी की अस्वस्थता के कारण महक्माखास का काम करने के लिये सं० १९६६ जेष्ठ शुक्ला ६ को कोठारीजी को हुकुम हुआ। किन्तु इन्होंने अपनी शारीरिक अस्वस्थता के कारण इनकार कर दिया और अर्ज कराई कि मेरी तन्दुरुस्ती ठीक न रहने से इस सेवा को करने के लिये असमर्थ हूं। इस पर श्री दरवार ने गिरधारीसिंहजी को वुलाकर फ़रमाया कि भूपालसिंहजी ने सिर्फ़ एक सप्ताह के लिये ही छुट्टी की अर्ज कराई है। इस पर कोठारीजी ने एक सप्ताह के लिये स्वीकार कर लिया तथा महक्माखास का काम शुरू कर दिया। लेकिन महासानीजी व वाद में महताजी का देहान्त हो जाने से करीव ५ वर्ष तक अकेले कोठारीजी को ही श्रीजी हुजूर की पेशी व राज्य श्री महक्माखास का कुल ही काम इलावा महक्मामाल, सरकारी दुकान, टकसाल, हद्‌वस्त, आवपाशी इत्यादि कामों के करना पड़ा। इसमे उनकी तन्दुरुस्ती पर वहुत ही वुरा असर पड़ा। १३-१४ घंटे नित्य और कभी कभी तो सत्रह-अठारह घंटे रोजाना काम करने पर भी काम समाप्त न होकर ऊपर चढ़ने लगा। यहां तक कि सिर्फ़ दस्तख़त करने मे ही ३-४ घंटे लगने लगे। तो कोठारीजी ने अपने दस्तख़तों की छाप वनवाई और विचार किया कि यह छाप लगवा दिया करेंगे, ताकि दस्तख़त करने का समय वच जाय। लेकिन इसकी सूचना किसी ने श्री दरवार मे मालूम की और यह अर्ज की कि श्रीजी हुजूर दस्तखत न फ़रमा आज्ञा की छाप लगवाते हैं। इसी तरह श्रीजी हुजूर की नकल करने के आशय से कोठारीजी ने भी दस्तख़त करना बंद कर अपने दस्तख़तों की छाप वनवाई है। उस पर श्रीजी हुजूर ने दरियाफ़त फ़रमाया तो अर्ज कराई कि मैंने तो

यह छाप केवल इस मतलव से वनवाई है कि मेरे में शक्ति व समय न होने से दोनों का वचाव होकर समय वच सके, सो हुकुम हो तो लगवाऊँ ? इस पर फ़रमाया कि यदि समय न मिले और काम अधिक हो तो गिरधारीसिंह से ले लिया करो। छाप मत लगवाना। ऐसी छाप फिर कोई जाली वनवा ले तो इसमें कभी बडा भारी धोखा हो जायगा। अत गिरधारीसिंहजी से महक्माखास के मामूली कागज महक्मामाल का कुल काम व श्रीजी हुजूर की पेशी इत्यादि कार्य लेना शुरू किया। किन्तु फिर भी काम की वहुलता वनी रही और स० १९६६ के वर्ष आवपाशी व हदवस्त का काम नये सरे से फिर कोठारीजी के सुपुर्द हो गया, जो करीव तीन वर्ष तक इन्होंने किया। इतना भार खींचने में कोठारीजी नितान्त असमर्थ हो चुके थे और श्रीजी हुजूर में कितनेक महक्मे दूसरो के सुपुर्द करवाने व महक्माखास मे एक और मत्री नियत कराने की अर्ज कराई।

प्रधानगी का कार्य छोड़ना और दूसरे प्रधानों की नियुक्ति।

स० १९७० से कोठारीजी का स्वास्थ्य विशेष खराव रहने पर काम में मदद मिलने के लिये वहुत कुछ अर्ज की, जिस पर कितनेक कागज महक्माखास की पेशी के श्री कुवरजी वावजी में पेश करने के लिये और दूसरे महता जगन्नाथसिंहजी को मुकर्रर फ़रमाया। लेकिन सव काम का निरीक्षण और जिम्मेवारी कोठारीजी की थी और उन्हे फिर भी एक एक कागज देखना पडता था। अत इस प्रवन्ध से भी कोठारीजी को सहायता नहीं मिली और अन्त में उन्होने यह कार्य किसी दूसरे के अधीन करने के लिए प्रार्थना की। अत स० १९७१ के भाद्रपद शुक्ला ३ ता० २४-८-१९१४ ईस्वी को कोठारीजी के वजाय महक्माखास मे मत्री पद पर रायवहादुर पडित सुखदेवप्रसादजी सी आई ई व महता जगन्नाथसिंहजी की नियुक्ति हुई।

जोधपुर के विवाह सवधी सेवा और कोठारीजी का जोधपुर दरवार द्वारा मान।

स० १९६४ के वैशाख महीने में श्रीमती किशोर कुवरवाईजी राज का विवाह जोधपुर महाराज साहव सरदारसिंहजी के साथ हुआ। उस मौके पर वाहमी शर्तें श्री वाईजी राज के जागीर और वर्ताव वगैरह की तय करने का काम कोठारीजी की मारफ़त फ़रमाया गया। इस सिलसिले में तीन वार थोडे थोडे अरसे में ही जोधपुर जाना पडा। इसलिये पहली वार जाने पर तो जोधपुर महाराज श्री सरदारसिंहजी ने ७७३) रुपये कलदार हाथी सरपाव के कोठारीजी को वख्शे सो स्वीकार किये किन्तु वाद में दो वार जल्दी जल्दी जाने के कारण सिरोपाव नहीं लिया। इसी प्रकार स० १९६५ व स० १९६६ में कई वार जोधपुर जाना पडा तो वाईजी राज की तरफ़ से हर वार २५०) रुपया कलदार सिरोपाव के

आग्रह कर वख्शे इसलिये स्वीकार करने पड़े। सं० १९६६ में श्री वाईजी राज को उदयपुर पधारने के लिये कोठारीजी को जोधपुर भेजा। इसमें पहले दर्जे का सिरोपाव ५०० रुपये का यहां से श्रीजी हुज़ूर ने सावित कर वख्शा व जोधपुर से लिया गया। श्री वाईजी राज के विवाह के पहले कई एक महत्त्वपूर्ण शर्तें तय की गईं। उसमें कोठारीजी ने वहुत परिश्रम के साथ सेवा की। जव जव जोधपुर दरवार श्री सरदारसिंहजी के पास हाज़िर होने का अवसर हुआ तव तव दरवार ने हमेशा कोठारीजी को ताज़ीम वख्शी और पूर्ण आदर का व्यवहार फ़रमाया।

अन्य विवाहो मे सेवा ली जाना।

महाराणाजी श्री फ़तहसिंहजी के सव से वड़े वाईजी राज श्री नन्दकुंवरजी का विवाह कोटे के वर्तमान नरेश उम्मेदसिंहजी से सं० १९५० में हुआ। दूसरे वाईजी राज का विवाह किशनगढ़ के महाराजा मदनसिंहजी से सं० १९६० में हुआ। तीसरे वाईजी राज का विवाह जोधपुरनरेश सरदारसिंहजी से सं० १९६४ में हुआ और वर्तमान महाराणा साहव श्री भूपालसिंहजी के तीन विवाह हुए। इनमें से पहला विवाह आउवे सं० १९६६ मे हुआ। किन्तु थोड़े ही महीनों में इन महाराणी साहिवा (तत्कालीन कँवरानी साहिवा) के स्वर्गवासी हो जाने से दूसरे ही वर्ष दूसरा विवाह सं० १९६७ में अचरोल और तीसरा सं० १९८४ में खोडाले इलाके मारवाड़ में हुआ। इन छहों विवाहों का इन्तज़ाम कुल कोठारीजी के सुपुर्द किया गया और फ़ौज-मुसाहव भी वाहर के विवाह में इन्हें ही वनाकर भेजा गया। सव ही विवाहों का प्रवन्ध इन्होंने सुचारु रूप से किया और अपने स्वामी के साथ साथ दूसरे पक्ष वालों को भी प्रसन्न रक्खा। १९६० के विवाह मे कोठारीजी को पारचा और १९८४ के वर्ष विवाह में कसूमल प्रसादी मेल वख्शाया।

जोधपुरनरेश का स्वर्गवास।

जोधपुरनरेश महाराजा साहव सरदारसिंहजी, जिनका विवाह महाराणा साहव श्री फ़तहसिंहजी की राजकुमारी श्रीमती किशोरकंवरवाईजी राज के साथ हुआ था, को एकदम रोगाक्रमण होकर वि० सं० १९६८, ईस्वी, सन् १९११ में इनका स्वर्गवास हो गया। यह नरेश वड़े ही सरल, प्रकृति के शुद्ध, उदारहृदय, निरभिमानी, गुणग्राहक एवं विचारशील थे। श्री वड़े हुज़ूर वर्तमान महाराणा साहव और उक्त महाराजा साहव में परस्पर असीम प्रेम था और मातृ-प्रेम (तत्कालीन महारानी साहिवा श्री चावड़ीजी) का तो कहना ही क्या है। कोठारीजी पर भी उक्त महाराजा साहव की वहुत ही कृपा थी। कभी कभी कोठारीजी को फ़रमाते कि तुम्हें देखते ही मेरी तवीयत खुश हो जाती है। यहां तक कि महाराणा साहव के सामने भी कभी कभी तो मुझे हँसी रोकना मुशकिल हो जाता

है। श्रीमती बाईजीराज के विवाहसबधी जब मुख्य शर्तें तय हुई थीं, तब से कोठारीजी को जोधपुर के महाराजा साहब के पास जाने के कई अवसर उपस्थित हुए अथवा उदयपुर पधारने पर सेवा का लाभ प्राप्त हुआ। उत्तरोत्तर कोठारीजी पर महाराजा साहब की कृपा बढ़ती ही रही। ऐसे नरेश के स्वर्गवास के दु खद समाचार प्राप्त होने पर कोठारीजी को भी बडा दुःख हुआ और सारे राज्य मे शोक छा गया। ऐसे योग्य जामाता की क्षति एव स्मृति ने स्वर्गीय महाराणा साहब, वर्तमान महाराणा साहब तथैव सारे रणवास को किस घोर दु ख का अनुभव कराया होगा—प्रत्येक मनुष्य कल्पना कर सकता है। उदयपुर एव जोधपुर का यह योग्य सबध इस प्रकार थोडे ही समय मे टूट जाना एव अल्प आयु मे ऐसे सुशील जामाता का स्वर्गवास भला किस कठोर हृदय को भी न पिघला देगा। श्री महाराणा साहब इस अत्यन्त दु खद एव शोक-सतप्त घटना पर मातमपुरसी के लिये जोधपुर पधारे। कोठारीजी का भी विचार जोधपुर जाने का था किन्तु महद्रमाखास का कार्य कोठारीजी के सुपुर्द होने से वे साथ नहीं जा सके। परमपिता परमात्मा स्वर्गस्थ महाराजा साहब के यश रूपी शरीर को अमरत्व प्रदान करते हुए उनकी आत्मा को सद्गति एव चिर शान्ति दे।

दिल्ली का दूसरा दरबार, महाराणा साहब की प्रण-रक्षा और कोठारीजी का सम्मान।

इसी वर्ष स० १९६८ में सम्राट् पचम जार्ज तथा श्रीमती महारानी मेरी दिल्ली मे तशरीफ लाये। वहा पर गद्दीनशीनी के उपलक्ष्य मे ता० १२ दिसम्बर पौष कृष्णा ७ को एक बडा दरबार हुआ, जिसमे सब ही राजा महाराजा सम्मिलित हुए थे, किन्तु कुलाभिमानी, प्रभावशाली, पराक्रमी, धीर, वीर, गभीर महाराणा साहब श्री फतहसिंहजी दरबार मे नहीं पधारे। इसके विषय में लेख को विशेष न बढा केवल रायबहादुर गौरीशकरजी हीराचन्द्रजी ओझा का लेख उद्धृत कर देना काफ़ी होगा—"भारत सरकार के विशेष अनुरोध करने पर महाराणा का भी दिल्ली जाना हुआ परन्तु अपने वश का गौरव विचार वह न तो शाही जुलूस मे सम्मिलित हुआ और न दरबार मे। उसने सिर्फ़ दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर जाकर बादशाह का स्वागत किया, जहा सब रईसो से पहले उसकी मुलाकात हुई। वहा तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग और कई भारतीय नरेशों से भी उसका मिलना हुआ। सम्राट् ने उसकी प्रतिष्ठा, मर्यादा एव बडप्पन का विचार कर उसको इस अवसर पर G C I E की उपाधि प्रदान की"। इस अवसर पर श्री दरबार कोठारीजी को भी साथ ले पधारे थ। श्री दरबार का देहली दरबार में पधारना नहीं हुआ। और मेवाड की ओर से उमरावों सहित कोठारीजी को ही देहली दरबार मे भेज सम्मानित फ़रमाया और इन्हे रजत पदक भी मिला। जब श्री दरबार

देहली से वापस पधार रहे थे, देहली स्टेशन पर ट्रेन तैयार खड़ी थी, एंजिन उदयपुर की ओर मुख किये हुए सीटी मार रहा था, उस समय एक कवि का निम्नलिखित दोहा श्री दरबार में अर्ज करना प्रसिद्ध है—

माला ज्यूं मिलिया महिप दिल्ली में दोय दाण।
फेर फेर अटके फ़रंग मेरु फ़नो महाराण॥

वास्तव में नरपतियों की माला में देदीप्यमान सूर्य की कान्ति वाला सुमेरु रूपी महाराणा ही एक ऐसा माला का अंग था, जहां आकर बड़ों बड़ों को रुक जाना पड़ता था।

राज्य की विविध सेवाएं।

मेवाड़ राज्य के शहर की अदालतों में शायद गिनी चुनी ही अदालतें बाकी रही होंगी, जिनका काम कोठारीजी ने न किया हो। अदालत दीवानी, अदालत ज़िला गिरवा, रोकड़ का भंडार, व एक दो छोटी मोटी कचहरियां बाकी कही जाती हैं, जिनके काम कोठारीजी के सुपुर्द नहीं हुए थे। वरना छोटे से बड़े महक्मे तक के सब ही काम कोठारीजी को समय समय पर करने का अवसर मिला। जिन महक्मों की सेवा का पता है और जो घटनाएं उल्लेखनीय थीं, उनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है। निम्नलिखित महक्मे, कारख़ाने व मुनसरमाते वग़ैरह मे से कुछ तो महाराणा सज्जनसिंहजी व बकाया महाराणाजी श्री फ़तहसिंहजी के समय में कुछ कुछ काल तक कोठारीजी के अधीन रहे। उनके निश्चित समय व संवत् का पता पूरे तौर न लगा और न उनमे कोई विशेष उल्लेखनीय बात ही हुई है। अतः केवल उन महक्मों के नाम ही दिये जाते है—शैलकान्तार संबंधिनी सभा, चंद जागीरदारों के ठिकाने जो कविराजा श्यामलदासजी के तअल्लुक में थे उनकी कार्रवाई, निज खर्च, खास खजाना, जनानी ओवरियों के काम की निगरानी, ठिकाना देलवाडा की मुनसरमात, हिसाब दफ्तर, महक्मा फौज, शहर का खालसाही काम, आबपाशी की कमेटी, सं० १९५६ के दुर्भिक्ष के सिलसिले में प्रबन्ध के लिये नियुक्ति, श्री ऋषभदेवजी महाराज के ध्वजा दंड की कमेटी, चित्तौड़ छीपों का झगड़ा, कमेटी बाबत तलफ़ी काग़जात, कविराजा जसकरणजी की मुनसरमात, श्री जी हुजूर के जन्मोत्सव के मौके पर दान के लिये अच्छे ब्राह्मणों का चुनाव। श्री भारतधर्म महामंडल की कौन्सिल जो 'एम्परर ऑफ़ इन्डिया इन्स्टीट्यूशन' कायम की जा रही है, उसमे सहायता के लिये डेढ़ लाख रुपये कलदार श्री जी हुजूर ने दान किये। उसके व्याज में जो काम हो उसकी देख-रेख व हिसाब की जांच के लिये कानोड रावतजी और कोठारीजी का कमीशन, मेवाड़ में एक तोल कायम कराने का कमीशन, हिसाबी तरीके बाबत कमीशन, इत्यादि।

क्षत्रिय जाति में सुधार के हेतु राजपूताने के एजेन्ट गवर्नर जनरल वाल्टर के नाम पर 'वाल्टर राजपूत हितकारिणी सभा' समस्त राजपूताने में स्थापित हुई। तदनुसार सं० १९४६ में उदयपुर में भी इसकी स्थापना की गई। इसका मुख्य उद्देश्य राजपूत सरदारों में बहु-विवाह, बालविवाह तथा शादी गमी के मौके पर फजूलखर्ची को रोकना था। कोठारीजी भी इस सभा के मेम्बर नियुक्त किये गये और वह जीवन भर इसकी सेवा करते रहे।

वाल्टर सभा में नियुक्ति।

उदयपुर राज्य के शिक्षा-विभाग की देख-रेख तथा सुधार के लिये पहले एजुकेशन कमेटी के नाम से एक कमेटी बनाई गई थी। उसके भी कोठारीजी ता० १३ जुलाई सन् १९३० ईस्वी तक मेम्बर रहे और इसी तारीख को यह कमेटी टूटकर डाइरेक्टर मुकर्रर हो शिक्षा-विभाग का कुल ही प्रबन्ध डाइरेक्टर के अधीन हो गया।

एजुकेशन कमेटी के मेम्बरों में नियुक्ति।

कोठारीजी की हार्दिक इच्छा थी कि श्रीएकलिंगजी और श्रीऋषभदेवजी की मूर्त्तियों के धारण के लिये किसी प्रकार हीरों की जडाऊ आंगी बनवाई जायँ। तदनुसार सं० १९४७ और सं० १९४८ में जब कोठारीजी जवाहरात खरीदने बम्बई और कलकत्ता गये, तब सेठ साहूकारों से कोशिश कर कुछ चन्दे की योजना भी की किन्तु उन दिनों यह कार्य पूरा न हो सका और इसके बाद भी कोठारीजी के जिम्मे राजकीय कई एक छोटी मोटी सेवाएँ सुपुर्द हो जाने से यह काम अधूरा ही रह गया। लेकिन सं० १९८० में देवस्थान के हाकिम देवीलालजी महता के समय में चंदे व भंडार धुलेव के एकत्रित रुपयों से हीरों की बहुत ही सुन्दर आंगी श्री ऋषभदेवजी की मूर्त्ति के धारण करने के लिये बन गई। जब यह आंगी सब से पहले धारण के लिये ऋषभदेवजी भेजी गई तो कोठारीजी को भी ऋषभदेवजी भिजवाया गया और आंगी धारण करवाई। इस आंगी के बनने में कुल २३८७५४) रुपये खर्च हुए। किन्तु जब यह आंगी बनकर धारण हो चुकी तब कुल ही रुपया श्रीमान् स्वर्गवासी श्री बड़े हुजूर ने बख्शते हुए अपनी अपूर्व उदारता, दानशीलता तथा देवभक्ति का परिचय दिया। इसी प्रकार सं० १९९२ में श्री एकलिंगजी में ३८३२३६) रुपये खर्च कर जडाऊ आंगी बनवाई गई। यह रुपये श्री परमेश्वरा के भंडार से लगे। इन दोनों आंगियों के लिए जितने भी हीरे खरीदे हुए, उनमें से बहुत से कोठारीजी की मारफत मंगवाये जाकर इनकी जांच पड़ताल से खरीद किये गये थे। इस प्रकार दोनों नरेशों की अपूर्व उदारता और ईश्वरभक्ति

श्री एकलिंगेश्वर और केसरियाजी में आंगी भेंट

के कारण कोठारीजी की अभिलाषा पूर्ण हुई और दोनों ही जगह बहुमूल्य आभूषण तैयार हो गये ।

भीलवाड़े में एक साधु का उपद्रव ।

सं० १९७९ में जब गिरधारीसिंहजी भीलवाड़े जिले के हाकिम थे तब वहां पर एक साधु रामसनेही अपने गुरु से लड़-झगड़कर भीलवाड़े आ गया। उसने विशेषकर छोटे दर्जे के लोगों को उकसाया और अपनी ओर मिलाकर ऐसा इरादा किया कि रामद्वारे के मुख्य महन्तजी—जिनका निवास-स्थान शाहपुरा है—के साधु फूलडोल लेकर जब जावें तो उनके साथ लड़ाई करें, इत्यादि । इस मामले ने होते होते विकट रूप धारण कर लिया और सैकड़ों नहीं, हज़ारों मनुष्य उस साधु की तरफ़ बंध गये । इस साधु ने यंत्र-मंत्र के द्वारा थोड़ा बहुत चमत्कार दिखाना शुरू किया, जिससे अन्धविश्वासी लोग इसकी तरफ़ बंधते ही गये । आख़िर जब मामला बढ़ता हुआ देखा तो गिरधारीसिंहजी ने उदयपुर इत्तला भेजी । इस पर यहां से कोठारीजी को भीलवाड़े भिजवाया गया और साथ में अमरसिंहजी रानावत, जो यहां पर पुलिस व फ़ौज इत्यादि के अफ़सर रहे थे, उन्हें फ़ौज देकर भेजा । कोठारीजी ने भीलवाड़े पहुँच साम, दाम, दंड, भेद से सारा मामला शांत कर साधु को भीलवाड़े से ही भगा दिया और जहां पर उसने अपना स्थान बना रक्खा था, उसे कैदियों से गिरवा चौपट करवा दिया । इस प्रकार इस बढ़े हुए मामले को अपनी बुद्धिमत्ता तथा भेद नीति से शांत कर दिया ।

शिशुहितकारिणी सभा पर इन्चारज।

सं० १९८४ पौष शुक्ला ११ को महता जगन्नाथसिंहजी ने ९ दिन के वास्ते इन्दौर जाने की छुट्टी ली । इस समय में कोठारीजी को शिशुहित-कारिणी सभा का काम करने का हुकुम हुआ, जिसको इन्होंने अत्यंत सावधानी से किया ।

श्री बड़े हुजूर का स्वर्गवास ।

यह संसार प्रगतिशील है । 'संसरतीति संसारः' । अतएव इसका नाम संसार रक्खा गया है । यदि इसमें गमनागमन का नियम न होता तो इसका नाम संसार ही न रक्खा जाता । हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश, उत्थान और पतन इसमें आये दिन के खेल हैं । इसी का नाम अस्तित्व है ।

जिस प्रकार दावानल हरे भरे वृक्ष-समुदाय को, वृष्टि-प्रकोप नगर-समूह को और भूकम्प समस्त देश को क्षण भर में नष्ट भ्रष्ट कर देता है, ठीक उसी प्रकार इस कराल काल की गति है जो उत्तम से उत्तम पुरुषों को अपना ग्रास बना घर के घर, नगर के नगर, सुखी एवं समृद्ध देश के देश क्षण भर में छिन्न भिन्न कर देता है ।

अतर केवल इतना ही है कि उत्तम पुरुष अपने अनित्य एव नाशवान् शरीर को त्यागते हुए भी सदैव के लिये अपने यश से मानव-समुदाय के हृदय-मंदिर में अजर अमर बने रहते हैं, जिनकी कीर्तिरूपी कलिका नित्य नवीन पुष्पकली की भाति उत्तम गुणों को विविध प्रकार से प्रफुल्लित एव प्रसारित करती हुई सारे ससार को सुवासित करती रहती है, जिसकी समीरमात्र से वडे वडे महापुरुष अपने को धन्य मानते हुए आत्मा को शीतल करते हैं। ऐसे नीतिज्ञ, सद्गुणी और प्रजा-वत्सल नरेश का ससार से उठ जाना भला किसके लिये दु खदायी नहीं होगा।

जो जन्म लेता है, वह एक दिन अवश्य मरता है। इस नियम को उल्लघन करने की सामर्थ्य मनुष्य की शक्ति से वाहर है। महाराजाधिराज महाराणाजी श्री फतहसिंहजी स० १६४१ मे मेवाड की गद्दी पर विराजे थे। अपने राज्यकाल मे उन्होंने प्रजा का पुत्रवत् पालन किया। अनेक दु खो, दुर्भिक्षो एव रोगों से प्यारी प्रजा की तन, मन और धन से रक्षा की। महासमर तक मे प्रचुर धन देकर अपने प्यारे जनों को वचाया। ऐसे प्रजा-पालक और धर्मरक्षक नरेश, जिनके राज्य की सुखद शीतल छत्र-छाया मे मेवाड की राज्य-भक्त प्रजा ने नाना प्रकार के सुखो का उपभोग किया था, उसी शीतल छत्र-छाया के सहसा हट जाने का भय भला किसे कपित किये विना रह सकता है? इस ससार के नियमानुसार ऐसे धर्मशील प्रजावत्सल मर्यादा-पुरुषोत्तम नरेश श्री वडे हुजूर के स्वर्गवास के दु खद पट के चित्र-दर्शन का विकट समय मेवाड की प्रजा के लिये सन्निकट आ उपस्थित हुआ।

श्री वडे हुजूर महाराणाजी श्री फतहसिंहजी स० १६८६ के वैशाख में कैलाशपुरी मे देव-दर्शन करते हुए कुभलगढ पधारे। कैलाशपुरी से ही आपका शरीर अस्वस्थ रहना प्रारभ हो गया किन्तु कुभलगढ पहुचने पर आपको एक दम ज्वर आने लगा और दिल की वीमारी शुरू हो गई। वहा पर आवश्यक उपचार किये गये, परतु कोई लाभ होता न देख आप उदयपुर पधार गये। यहा पधारने पर आपको सारे शरीर मे जलन ही जलन होने लगी किन्तु ऐसी स्थिति में भी आपने नित्य नियम, पूजा पाठ आदि मे कोई अन्तर नहीं आने दिया। शारीरिक जलन एव असह्य रोग भी खमाचुके महाराणा को ईश्वराराधन और अपूर्व प्रभु-भक्ति से तनिक भी विचलित न कर सका। इसी व्याधि के प्रारभ मे गर्मी विशेष लगने से श्री दरवार एक दिन सध्या समय समोर के वगीचे मे पधारे। कुछ देर वहा पर विराजे किन्तु वहा भी शान्ति प्रतीत न हुई। थोडी देर में कोठारीजी का हाथ थाम कुछ कदम पधार तामजाम मे विराज वापिस अपने प्रिय प्रासाद शभुनिवास में पधार गये किन्तु वहा

भी कोई शान्ति प्राप्त नहीं हुई। अतः वहाँ से जगनिवास जलमहल मे पधराये गये। वहां विराजने पर भी कोई लाभ न हुआ। वंबई और अजमेर के प्रसिद्ध प्रसिद्ध डाक्टरों को बुलाकर उपचार करवाया गया किन्तु आपके शरीर की जलन, जो आपकी प्यारी प्रजा ही नहीं वल्कि आपके प्यारे पशु-पक्षियों तक को विरहरूपी दावानल के लपेटे में लेना चाहती थी, किसी प्रकार शान्त न हुई। मेवाड़ भर ने अपने इष्टदेव की मिन्नतें मनाईं। मंदिर, मस्जिद इत्यादि देवालय प्रार्थना के शब्दों से गूँज उठे। शहर भर मे लोगों के चेहरे चिन्तातुर हो गये। फिर भला कोठारीजी जैसे स्वामिभक्त सेवक की व्यथा का वर्णन करना तो मेरी शक्ति से परे ही नहीं अपितु असंभव है। कोठारीजी के अनुभव मे भी अपने स्वामी से जुदाई का विकट अवसर निकट आ उपस्थित हुआ।

पितृभक्त वर्तमान महाराणा साहव ने अपने आदर्श पिताश्री के रोगनिवारण के लिये अनेकों धर्म, पुण्य, ईश्वरोपासना इत्यादि कृत्य करवाये किन्तु वे सब निरर्थक हुए।

कोठारीजी का हृदय-मंदिर चिन्ता, दुःख और ईश्वर-प्रार्थना से भर-भरकर रह गया, किन्तु ईश्वर ने एक भी प्रार्थना स्वीकार नहीं की और हिन्दुओं के सूर्य अस्त होने की संध्या निकट आ पहुँची। ज्येष्ठ कृष्णा ११ को सायंकाल के समय ज्यों ही सूर्य अस्ताचल को चला गया तथा संध्या की आरती एवं घंटानाद से मंदिर देवालय गूंज-गूंजकर शान्त हो गये ऐसी शान्ति के समय मे मेवाड़नाथ आर्य-कुल-कमल-दिवाकर क्षत्रिय-शिरोमणि सदा के लिये अदृश्य हो गये। श्रीमानों के स्वर्गवास से शहर भर में सन्नाटा छा गया। लोगों में त्राहि त्राहि मच गई। क्या वालक, क्या वृद्ध, क्या युवक, क्या प्रौढ़, क्या वालिकाएँ, क्या युवतियाँ, क्या वृद्धाएँ, सब ही के नेत्रों से अश्रुधारा वह गई। उस विकट रात्रि का अनुभव जिसने किया होगा, वही सच्ची व्यथा जान सकता है। कोठारीजी प्रायः महलों में ही हाज़िर रहा करते थे। उस दिन भी सारी रात महलों में ही रहे। दूसरे दिन ज्येष्ठ कृष्णा १२ को प्रातःकाल के समय श्री दरवार की वैकुंठी सज-धजकर गंगोद्भव (दाह-संस्कार के स्थान) के लिये तैयार हो गई और शंभुनिवास महलों से, जहां आपके मृतक शरीर को सुरक्षित रक्खा गया था, उस वैकुंठी मे आपको विराजमान किया। महलों के सारे चौक मनुष्यों से भर गये। ज़मीन आँसुओं के छिड़काव से तर हो गई। मनुष्य तो क्या पशु, पक्षी, हाथी, घोड़ों तक ने आपके वियोग मे धैर्य छोड़ दिया। कोठारीजी और गिरधारीसिंह जी तो सारी रात महलों मे ही चिन्तामग्न थे। मै भी प्रातःकाल शंभुनिवास महल में वैकुंठी में विराजे हुए श्री दरवार के दर्शन कर अपने आपको भूल गया।

ऋषितुल्य आपका शिव-निवास-आश्रम रूपी प्रासाद जिसमे नित्य हरिण, मोर,

शुक, पिक इत्यादि नाना प्रकार के पशु-पक्षी कोलाहल किया करते थे उसमें आप भस्मी धारण किये श्वेत वस्त्र पहिन रुद्राक्ष की माला गले में धारण कर एकलंगी धोती बगुल-बंडी और पादुकाएँ धारण किये एक राजर्षि के समान एक कमरे से दूसरे कमरे में पधार ईश्वर भजन के लिये विराजते थे। ये सब दृश्य सदा के लिये स्वप्न हो गये। अन्तत रोते पीटते हज़ारों मनुष्यों के समूह के साथ श्रीमानों की सवारी आहाड नामक ग्राम में गंगोद्भव जैसी पुण्य-भूमि के लिये चल पडी।

मेवाडवासी या भारतवासी तो क्या, रेज़िडेंट इत्यादि युरोपियन ऑफिसर जो वैकुंठी के पीछे पीछे चल रहे थे, इस दृश्य को देखकर चकित हो गये और सदा के लिये उन्हें पक्का अनुमान हो गया कि वास्तव में राजा और प्रजा के बीच प्रेम का यह एक आदर्श नमूना है। शोकाकुल युरोपियन ऑफिसरों के मुँह पर भी ये शब्द थे कि वास्तव में श्रीदरबार सच्चे रईस थे। सारे शहर में कोलाहल मच गया। जिधर देखो, उधर स्त्री-पुरुषों के करुणानाद के सिवाय और कुछ सुनाई नहीं पडता था। कोठारीजी को अपनी पत्नी, पुत्री तथा पुत्र-वधुओं के वियोग में जितना दुःख हुआ, उससे कहीं बढ कर यह वज्र दुःख सिर पर आ गिरा। कोठारीजी कहा करते थे कि मेरे जीवन में महाराणा साहब सज्जनसिंहजी के स्वर्गवास से ४६ वर्ष के बाद महान् दुःख का यह दूसरा ही अनुभव है। कोठारीजी ऐसे दृढ धीर पुरुष थे कि उनको बडे से बडे शोक पर भी लोगों ने अधीर होते न देखा होगा, किन्तु इस अवसर पर उनका भी धैर्य जाता रहा। अस्तु, वैकुंठी गंगोद्भव पहुँची। दाह-संस्कारादि कार्य समाप्त हुए। बडे बडे सामन्तों व नरेशों के स्मारक सहसा किसी कवि का एक वाक्य याद दिलाये बिना नहीं रह सकते। वह यह है —

> जिन राजन के चरण में, नमते नृपति किरीट।
> तिनकी आज समाधि पे, काग करत हैं बीट॥

यदि यह वाक्य, गंगोद्भव के स्मारकों का विरक्त दृश्य और जीवन की नश्वरता को मनुष्य नित्य याद रक्खे तो वह कई कुकर्मों से बचते हुए इहलोक तथा परलोक दोनों में ही सुख का भागी बन सकता है किन्तु प्राय मनुष्य ऐसे सुमार्ग का अवलम्बन न कर उल्टे मार्ग पर ही चलते पाये जाते हैं। सत्पथ का आश्रय विरले ही प्राप्त कर सकते हैं। मेवाडनाथ का वृद्ध, सुडौल और सुदृढ शरीर सदा के लिये अपने यश शरीर को अमर करते हुए भस्मीरूप में परिणत हो गया। सब ने अपने अपने घर की राह ली। सारा शहर शून्य दिखाई देने लगा। शहर में हडताल हो गई। ऐसे

आदर्श शासक के विछोह में उदयपुर शहर और मेवाड़ तो क्या किन्तु दूर दूर देशों में तथा अन्य रियासतों तक ने हड़तालें डलवा शोक प्रदर्शित किया।

स्वर्गस्थ महाराणा साहब का व्यक्तित्व एवं राज्यकाल।

श्रीमान् मेदपाटेश्वर महाराणा साहब फतहसिंहजी कुलाभिमानी, पराक्रमी, प्रभावशाली, तेजस्वी, सदाचारी, सहनशील, दयालु, कर्त्तव्य-परायण, धर्मनिष्ठ, ईश्वर-भक्त, न्यायशील, धीर, वीर, गंभीर, शरणागतप्रतिपालक, मितव्ययी, राजऋषि, एवं आदर्श शासक थे।

मेवाड राज्य की वंशपरंपरा के अनुसार आपके राजत्व में बाहर के राज्यों के आये हुए कई आपद्-ग्रस्त एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आश्रय मिला और बड़े आदर से उन्हें यहां रक्खा गया। श्रीमान् की दिनचर्या का मुख्य भाग राजकीय कार्यों, ईश्वरोपासना, एवं आखेट में व्यतीत होता था। आप नित्य ब्राह्म मुहूर्त्त में उठते। केवल उसी समय ही नहीं बल्कि रात दिन में कई घंटे भगवद्भजन में व्यतीत करते। आप शिवधर्म के पक्के उपासक थे। मेवाड़ के भूतपूर्व महाराणा जिस प्रकार अपने आपको श्री एकलिंगजी का प्रतिनिधि स्वरूप मानते आये हैं, उसी पवित्र उद्देश्य का आपने भी अक्षरशः पालन किया। मेवाड़ के मोटो—राज्यचिह्न—"जो दृढ़ राखे धर्म को, तिहि राखे करतार" को आपने खूब समझा और उसी प्रकार भगवान् श्री एकलिंगेश्वर ने हमेशा श्रीमानों के प्रण की रक्षा की।

आप प्राचीन सभ्यता, रहन-सहन, रंग-ढंग तथा प्राचीन प्रथाओं के बड़े प्रेमी थे। इस जमाने मे उन प्राचीन प्रथाओं को महत्त्व देकर जीवित रखना श्रीमानों का ही आदर्श कार्य था। आपका प्रभाव एवं पुण्य इतना महान् था कि बड़े बड़े उच्च पदाधिकारी, प्रतिष्ठित अफ़सर, रईस तथा देशी और विदेशी महापुरुष आपके सामने बात करने मे संकोच खाते थे। आपका दर्शन करते ही उनके हृदय में आपके प्रति आदर के भाव पैदा हो जाते थे। श्रीमानों की भव्य एवं पुण्यशील आकृति पर अपरिचित व्यक्ति भी मुग्ध हुए विना नही रह सकता था और वह आपके दर्शनों को हमेशा स्मरण रखता था।

राज्य का सारा कार्य श्रीमानों की आज्ञा से होता था। आप कई घंटे अनथक परिश्रम कर राज्य-कार्य फ़रमाते। प्रत्येक कागज़ को आप स्वयं मुलाहज़ा कर फिर दस्तखत (आज्ञा की मुहर) फ़रमाया करते थे।

शिकार, व्यायाम, घोड़े की सवारी, तैरना, बंदूक और तलवार का चलाना आदि क्षत्रियोचित शिक्षाओं मे आप अति प्रवीण एवं निपुण थे। आपका शरीर ऐसा

सुडौल, नीरोग तथा परिश्रमी था कि आप घोडे पर विराजे हुए पहाडो में कोसों तक निकल जाते। बडे बडे पहाडों पर, कंधे पर बंदूक रखकर बडी सुगमता एव तेजी के साथ चढ जाते। यह स्थिति युवावस्था में ही नहीं किन्तु वृद्धावस्था मे एव अन्तिम रुग्णावस्था के पूर्व तक पूर्णरूपेण बनी रही। पहाड पर भी इस तेजी के साथ पधारते थे कि युवा मनुष्य को भी दौडकर साथ करना पडता था। आपको शिकार का शौक जीव-हिंसा के लिये नहीं अपितु गरीब प्राणियों की रक्षा एव व्यायाम के लिये था। जीव-दया के तो आप इतने पक्षपाती थे कि मच्छर एव चींटी तक की प्राणरक्षा का ध्यान रखते थे। उदाहरणार्थ आपके प्रिय प्रासाद शिव-निवास में दो आशा पाले के वृक्ष हैं। उन पर हजारो पक्षी आकर बैठते किन्तु घूघू आदि हिंसक पक्षी उन्हें मार डालते थे। अतः आपने उन वृक्षों को ऐसी जाली से ढकवा दिया कि उसके अन्दर चिडियाँ आदि जीव तो जा सकें परन्तु उनके भक्षक पक्षी न जा सकें। प्रायः खास ओदी की तरफ सायंकाल के समय घूमने पधारा करते किन्तु वर्षा ऋतु में यदि उधर गजायें इत्यादि जन्तु निकलते हुए पाये जाते तो पहले ही पता लगा उधर नहीं पधारते। इसी प्रकार शिकार आदि में भी यदि कहीं चींटियाँ इत्यादि निकल आतीं तो उन्हें साथ वाले कोई कुचल न दें, उनकी निगहबानी के लिये भी किसी को नियत कर फिर आगे पधारते। हिंसक जीवों के शिकार मे भी आप मादा का शिकार नहीं फरमाते थे। सिंह सूअर आदि, जो गाय आदि मूक प्राणियों के प्राणहरैया थे, उनका शिकार करते। जब कभी श्रीमानो को कोई व्याधि हो जाती तो प्रायः उपवास कर दिया करते और थोडा चित्त प्रसन्न होते ही पुनः आखेट प्रारंभ कर देते, जिससे शीघ्र नूतन शक्ति का संचार हो जाता।

आपने ४६ वर्ष के लंबे काल तक अदम्य उत्साह और पूर्ण मनोयोग के साथ शासन किया और समय समय पर आप प्रजाहित के अनेक कार्य करते हुए अपूर्व उदारता एवं प्रजावत्सलता का परिचय देते रहे। साराश यह है कि श्रीमानो ने पुत्रवत् प्रजा का पालन किया।

श्रीमानो के शासन-काल मे देशी-विदेशी उच्चकोटि के अनेकों सज्जन मेवाड में आये। वे श्रीमानो की नम्रता, शिष्टाचार, सरलता, लोकप्रियता और अतिथि-सत्कार से प्रसन्न हो आपके गुणों की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते गये। लार्ड डफरिन से लेकर इरविन तक के कुल ही वायसराय तथा भारत सरकार की कौंसिल के सदस्य, कई एक बड़े बड़े सेनापति, गवर्नर और देशी नरेश—जोधपुर, जयपुर, कृष्णगढ, कोटा, बडोदा, इन्दौर, काश्मीर, बनारस, धौलपुर, नाभा, कपूरथला, लीमडी, मोरवी, भावनगर आदि रियासतों के रईस जो भी उदयपुर पधारे और जिन्हें श्रीमानो के सम्पर्क का शुभ

अवसर प्राप्त हुआ, वे सब श्रीमानों के आदर्श आचरण एवं आदर-सत्कार से अत्यन्त प्रसन्न हुए।

श्रीमानों ने कुत्सित वासनाओं का दमन कर सच्ची विजय प्राप्त की। अफ़ीम आदि नशीली वस्तुओं से सदा परहेज़ किया और पिछले वर्षों में तो शराब का भी बिलकुल परित्याग फ़रमा दिया और अपना जीवन दूसरों के लिये आदर्शरूप बनाया। यही आपके जीवन की विशेषता है।

आपने एक-पत्नी-व्रत धर्म का पूर्णतया पालन फ़रमाया और श्रीमती महारानी साहिबा की भी श्रीमानों के प्रति अटल आदर्श पति-भक्ति रही।

श्रीमानों ने हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस को डेढ़ लाख रुपये, भारतधर्म महामंडल काशी को डेढ़ लाख रुपये और मेयो कालेज अजमेर को भी डेढ़ लाख रुपये बख्शे। इतना ही नहीं, इनके अतिरिक्त अनेक फंडों मे दान देते हुए समय समय पर अपनी उदारता का परिचय दिया। वर्ष में सैकड़ों ही नहीं बल्कि हज़ारों लाखों ब्राह्मण, साधु, संत, अनाथ और अबलाओं को भोजन इत्यादि कराया जाता। कई प्रकार के गुप्त दान दिये जाते। यह दान मेवाड़ तक ही सीमित नहीं था अपितु सुदूरवर्ती तीर्थस्थानों तक मे भी समय समय पर ऐसे ही प्रचुर दान होते रहते थे। स्वर्ण, रजत के तुलादान भी करवाये। संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त होगा कि यदि श्रीमानों के लिये धर्ममूर्ति, गौ एवं ब्राह्मणों के रक्षक, दीन और अनाथों के आलंबन एवं दानवीर विशेषणों का प्रयोग किया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

मेवाड़ में कई प्रारंभिक पाठशालाएँ, शफ़ाख़ाने खोले तथा विक्टोरिया हॉल में पुस्तकालय व अजायबघर स्थापित किया। सं० १९५१ मे भारतवर्ष के वायसराय लार्ड लैन्सडाउन के नाम पर हाथीपोल दरवाजे के भीतर एक नया अस्पताल बनाया। इसी प्रकार वाल्टर फ़ीमेल हॉस्पिटल की भी नई इमारत तैयार कराई गई। उदयपुर, चित्तौड़-गढ़, टीड़ी, बारापाल आदि स्थानों मे यात्रियों की सुविधा के लिये पक्की सरायें बनवाईं। चित्तौड़ से देबारी तक रेलवे लाइन खोली जो सं० १९५६ के अकाल के समय उदयपुर तक बढ़ा दी गई जिससे उस भीषण अकाल के समय बाहर से उदयपुर में अन्न आदि लाने मे बड़ी सुविधा हो गई। लाखों रुपये खर्च करके मेवाड़ मे अनेक तालाब बनवाये और पुराने तालाबों की मरम्मत भी करवाई।

उक्त महाराणा साहब को शिल्प-कार्यों से बड़ी रुचि थी। अतएव स्थान स्थान पर कई एक महल, मंदिर, शिकार के लिये ओदियां आदि नये रूप से बनवा मेवाड़ की शोभा में वृद्धि की और पुरानी इमारतों की मरम्मत करा जीर्णोद्धार किया। महाराणा

साहब के बनवाये हुए महल आदि में दरबार हॉल, विक्टोरिया हॉल, शिवनिवास, कुंभलगढ एवं चित्तौडगढ के नये महल, खास ओदी इत्यादि दर्शनीय प्रासाद तथा फतहसागर का सुन्दर सरोवर श्रीमानों के शिल्प-कला के प्रति अत्यंत रुचि होने के जीते जागते उदाहरण हैं। चित्तौड के जैनकीर्ति-स्तम्भ, जयसमुद्र के महल तथा बांध, इसी प्रकार चित्तौड एवं कुम्भलगढ के किलों की मरम्मत कराते हुए उनको दृढ एवं नये के समान बनवा दिया।

श्रीमानों ने अपने राजत्व में युद्धऋण, रेड क्रॉस एसोसियेशन, एयरक्राफ्ट आदि कई एक युद्धसंबंधी फंडों में लाखों रुपयों का चंदा देकर अंग्रेजी सरकार के साथ अपनी पूर्ण सहानुभूति एवं मित्रता का परिचय दिया। यही नहीं बल्कि शाहजादा एलबर्ट विक्टर के उदयपुर आने पर उन्हीं के हाथ से महारानी विक्टोरिया की संगमरमर की मूर्ति का सज्जननिवास बाग में विक्टोरिया हॉल के सामने उद्‌घाटन कराया। गवर्नमेन्ट सरकार ने G C S I, G C I E, G C V O इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया और श्रीमानों की २१ तोपों की जाती (व्यक्तिगत) सलामी करते हुए पूर्ण मित्रता का परिचय दिया।

स्वर्गीय महाराणा साहब का शुभ नाम उनके आदर्श आचार, शुद्ध विचार, चारित्रबल और धर्म-शीलता आदि अपूर्व गुणों के कारण मेवाड के ही नहीं बल्कि भारतवर्ष के इतिहास में भी स्वर्णाक्षरों में देदीप्यमान होकर चिरस्मरणीय रहेगा।

वर्तमान महाराणा साहब की गद्दी-नशीनी।

ज्येष्ठ कृष्णा १२ सं० १९८६ ता० २५ मई सन् १९३० की संध्या को ५ बजे सभा सरोवरण में दरीखाना हुआ। श्रीमानों के युवराज श्रीमान् वर्तमान महाराणा साहब श्री भूपालसिंह जी की गद्दी-नशीनी हुई। पश्चात् दरीखाना बरखास्त हुआ। ज्येष्ठ शुक्ला ६ ता० ५ जून को आपका राज्याभिषेकोत्सव हुआ। इसके दूसरे ही दिन दरबार में श्रीमानों ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी तेजसिंहजी महता द्वारा निम्न आशय की घोषणा प्रकट कराई—

"जिन ज़िलों में बन्दोबस्त हुआ है, उनके विक्रम सं० १९८५ तक के हासिल का बकाया माफ़ कर दिया गया है और जिनमें बन्दोबस्त नहीं हुआ है, उनके उसी संवत् की ज्येष्ठ सुदी १५ की किश्त में ५) रुपया सैकड़ा से रिआयत की गई है। उमरावों, सरदारों, जागीरदारों तथा माफ़ीदारों के सिवाय विक्रम सं० १९७० के पहले का मुकदमों के संबंध का राज्य का बकाया जो अन्य लोगों के जिम्मे लेना था, वह छोड़ दिया गया है। जागीरदारों के, यहां के माफ़ीदारों के साथ भी यह रिआयत की गई है। लोगों में पहले का राज्य का जो कर्ज़ा बाकी था, उसमें से पन्द्रह लाख रुपये छोड़ दिये गये हैं।

इसके सिवाय विवाह चंवरी नाना घर झूंपी आदि छोटी छोटी सब लागतें माफ़ कर दी गई हैं। परलोकवासी श्रीमान् श्री बड़े हुजूर की यादगार में उदयपुर में एक सराय बनाई जायगी, जिसमें मुसाफिर तीन दिन ठहर सकेंगे और उनके आराम का प्रबन्ध राज्य की ओर से होगा। निजी ख़ज़ाने से एक लाख रुपया नोबल स्कूल को दिया गया। इस रकम के सूद से गरीब राजपूत विद्यार्थियों को भोजन और वस्त्र मुफ़्त दिये जायँगे तथा उनके रहने के लिये राज्य खर्च से छात्रालय बनवाया जायगा।"

श्री बड़े हुजूर के पीछे भोज का प्रबंध कोठारीजी के सुपुर्द होना और कोठारीजी की बीमारी।

स्वर्गवासी महाराणा साहब फ़तहसिंहजी के पीछे श्रीमान श्रीजी हुजूर ने लाखों रुपयों का पुण्य किया और सारे शहर की हर एक जाति व देहात तक के मनुष्यों को भोजन कराया। यह पहला ही अवसर था कि सारे नगर की प्रत्येक जाति को इस प्रकार भोजन कराया गया हो। इस विशाल भोजन का सारा प्रबंध कोठारीजी के सुपुर्द किया गया। इन्हीं दिनों कोठारीजी को पेचिश की सख़्त तकलीफ़ हो गई और करीब १५ सेर वज़न कम हो गया। किन्तु इन्होंने अपनी तकलीफ़ की तरफ़ ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। कई लोगों ने कोठारीजी को परहेज़ रखने के लिये कहा पर उन्होंने ऐसा ही उत्तर दिया कि यह शरीर नाशवान् है, जिस मालिक ने ४६ वर्ष मेरे सिर पर हाथ रक्खा, संसार की विविध यातनाओं से बचा हर समय मेरी रक्षा की, अंतिम रुग्णावस्था तक मेरे हाथ पर हाथ धरना समीर के बगीचे में जो मालिक नहीं भूले, उनकी अंतिम सेवा, मेरे लिये इस कार्य के सिवाय और बाकी क्या रह गई है। अतः यह सेवा समाप्त हुए बिना मुझे चैन नहीं हो सकती। इस विशाल प्रबंध को उन्होंने कई टुकड़ों में महता जीवनसिंहजी, गिरधारीसिंहजी कोठारी, बोहरा मोतीलालजी मगनलालजी पंचोली व कई एक अन्य हाकिमान ज़िला व ऑफीसरान के तहत में कर अपनी निगरानी व देख-रेख से सुचारु रूप से करा दिया तथा ब्राह्मणों को दो दो रुपये दक्षिणा में दिये गये और अपनी रुग्णावस्था की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया।

हरणिया की बीमारी और गांधीजी से मिलन।

इधर कोठारीजी की पेचिश की बीमारी ने भयंकर रूप धारण कर लिया। करीब ३-४ महीने तकलीफ़ हुए को हो गये और कोई लाभ न हुआ। अन्त में रायबहादुर डाक्टर छगनाथजी का इलाज शुरू करवाया। इनको यश मिलना बदा था। इन्होंने कहा कि तीन चार इन्जेक्शन से तबीयत ठीक हो जायगी, किन्तु दैवकृपा ऐसी हुई कि एक ही इन्जेक्शन से बीमारी लुप्त हो गई और इसके बाद ३-४ महीने में औषध का सेवन करने से कोठारीजी की कमज़ोरी भी बहुत कम हो गई। किन्तु इसके

साथ आत उतरने 'हरणिया' की बीमारी शुरू हो गई और अपने स्वर्गवासी मालिक के शोक और पेचिश की कमजोरी के साथ साथ इस बीमारी ने भी कोठारीजी के शरीर में अपना घर कर लिया।

इसी वर्ष संवत् १९८७ के वैशाख मास में कोठारीजी हरणिया के इलाज के लिये बंबई गये। वहा पर अपने परम स्नेही जौहरी अमृतलालजी रायचन्द्रजी के महमान हुए। जिस भवन मे कोठारीजी ठहरे हुए थे, वहीं पर महात्मा गाधी आने वाले थे। महात्माजी के वहा आने पर कोठारीजी को उनसे २० मिनट वार्तालाप करने का अवसर प्राप्त हुआ। बंबई के बडे बडे डाक्टरो ने वृद्धावस्था होने से ऑपरेशन करने से इनकार किया और ट्रस (कबानी) लगाये रखने की राय दी, जिससे कि आत उतरने न पावे। इससे कोठारीजी को लाभ मालूम हुआ और कबानी (ट्रस) बराबर लगाये रखना प्रारभ किया। किन्तु फिर भी दो एक साल तक यह व्याधि विशेष रूप से सताती रही।

कोठारीजी पर डबल निमोनिया का आक्रमण।

स० १९८९ से आत उतरने की बीमारी बहुत कम हो गई और कबानी लगाने पर आराम मालूम होने लगा। इधर आत की जाच करा ट्रस बनवा उदयपुर के लिये रवाना होने को ही थे कि एकाएक कोठारीजी को ज्वर आ गया। बंबई की आबोहवा ठीक न होने से बंबई से चौदह मील की दूरी पर अधेरी नामक ग्राम मे रहा के प्रसिद्ध सेठ जौहरी भोगीलाल लेहरचद्रजी के अत्यन्त आग्रह करने पर वहा चले गये। इन सेठजी से कोठारीजी का परिचय बंबई जाने के कुछ ही दिन पहले हुआ था। किन्तु उन्होने इस अवसर पर इतना अपार स्नेह प्रदर्शित किया कि जैसे वर्षों की गाढी मित्रता हो। कोठारीजी को अधेरी जाने पर डबल निमोनिया हो गया और करीब दो मास तक वहा रहना पडा। उक्त सेठजी ने परम स्नेह से कोठारीजी को वहा पर रक्खा और अपना स्वार्थ त्यागकर आवश्यक धधो को छोड सेठ लेहर भाई और जौहरी अमृतलाल भाई ने सच्चे हृदय से कोठारीजी की सेवा-शुश्रूषा की। हम लोग उनका उपकार मानते हुए जितनी भी उनकी प्रशसा करें, कम है। बंबई में कई एक बडे बडे सर्जन व डाक्टरो को बुलवाया किन्तु कोठारीजी की हालत देख सबने निराशा-जनक उत्तर दिया। लेकिन अभी हमारे दिन अच्छे थे। हमारे भाग्यों में उनकी छत्र-छाया का कुछ सुख बदा था। अत जौहरी अमृतलाल भाई होमियोपैथिक डाक्टर ए० सी० दास को लाये, और उनका इलाज शुरू करवाया। इनकी औषध की प्रथम ही मात्रा से आश्चर्यजनक परिवर्तन मालूम होने लगा और दिन प्रति दिन आराम होता गया। डेढ महीने में बिलकुल स्वस्थ कर कोठारीजी को उदयपुर के लिये रवाना कर

दिया । उक्त डाक्टर होमियोपेथिक इलाज के लिये बंबई में प्रसिद्ध हैं। आप बड़े सरलस्वभावी, संतोषी, योग्य, अपनी विद्या में निपुण और पूरे अनुभवी हैं । आपने कोठारीजी के इलाज में बहुत परिश्रम किया। घंटों तक आप कोठारीजी के पास बैठे रहते, और थोड़ी थोड़ी देर में औषध के बदलने की आवश्यकता होने पर स्वयं बदलकर देते। कोठारीजी के साथ उस समय सिर्फ़ अकेला मैं ही था अतः तकलीफ़ बढ़ने पर तार देकर गिरधारीसिंहजी को भी बंबई बुला लिया।

इन्हीं दिनों इन्दौर के प्रसिद्ध दीवान सर सिरेमलजी बापना—जो कोठारीजी को बड़ी आदर की दृष्टि से देखते और पूरा स्नेह रखते थे—की छोटी कन्या का विवाह था और तदर्थ हमारा इन्दौर जाने का पक्का विचार था। किन्तु कोठारीजी की असह्य वेदना के कारण सिरेमलजी के अत्यन्त आग्रह करने पर भी कोई न जा सका और तार तथा चिट्ठियों के द्वारा अनुपस्थिति के लिये कोठारीजी ने असमर्थता प्रकट की। बंबई से उदयपुर आने पर कुछ महीने तक कोठारीजी देहली दरवाज़े के बाहर की अपनी वाड़ी में ठहरे और थोड़े दिनों बाद कुछ शक्ति आने पर शाम के वक्त आनन्द-भवन जा श्रीजी हुजूर के दर्शन किये।

आहाड़ में वाड़ी विकाव।

इन्हीं दिनों माफी के झगड़ों के सबब गंगोद्भव पर की वाड़ी के विकाव का प्रश्न चल रहा था। अतः तत्कालीन सेटलमेन्ट एवं रेवेन्यू कमिश्नर मिस्टर ट्रेन्च गिरधारीसिंहजी को साथ लेकर गंगोद्भव की वाड़ी का मौका देखने गये। वापसी के वक्त कोठारीजी की आराम-पुरसी की और श्रीजी हुजूर में मालूम करा गंगोद्भव में की वाड़ी पांच सौ रुपये में वापी करा दी।

द्वितीयबार महद्राज-सभा का सदस्य होना।

सं० १९८८ माघ शुक्ला ७ को राज्य श्री महद्राजसभा के पुराने व उलझनभरे पेचीदा मुकद्मों को फ़ैसल करने के लिये एक अलग इजलास कायम किया गया और उसमें कोठारीजी को भी मेम्बर मुकर्रर किया। इस इजलास में इलावा कोठारीजी के बेदलेराव नाहरसिंहजी, देलवाड़े राज जसवन्तसिंहजी, महता जगन्नाथसिंहजी और महता फतहलालजी भी मेम्बर मुकर्रर हुए। अंतिम समय तक कोठारीजी इसके मेम्बर रहे। इस इजलास की बैठक रंगनिवास प्रासाद में होने से यह रंगनिवास इजलास के नाम से मशहूर हो गया। हालां कि अब इसकी बैठक विक्टोरिया हॉल मे होती है।

सं० १९८८ फाल्गुन कृष्णा ११ को श्रीजी हुजूर के जन्मोत्सव के शुभ

गिरधारीसिंहजी का सुवर्ण सम्मान। अवसर पर शाम के वक्त दरीखाने में श्रीमान् श्रीजी हुजूर ने गिरधारीसिंहजी को पैरो मे पहनने के सोने के लगर वख्श सम्मानित किया।

सं० १९८९ के श्रावण मे कोठारीजी को निमोनिया की बीमारी शुरू हो गई। इसके कुछ समय पहले से इन्दौर मे ही बहुत ज़ोरो से मेरे कान मे दर्द शुरू हो गया था और इस दर्द के कई हमले हो गये थे। अत वहा के डाक्टरो ने मुझे राय दी कि एक वर्ष के लिये मुझे विलकुल आराम करना चाहिये। किन्तु फिर भी मैंने एल-एल० बी० का अध्ययन जारी रक्खा। परन्तु कोठारीजी की बीमारी के कारण मुझे यहा आना पड़ा। कोठारीजी के आराम होने पर मैंने विद्याध्ययन के लिये पुन जाने की इच्छा प्रकट की किन्तु उन्होने आज्ञा नहीं दी और कहा कि स्वास्थ्य को धक्का पहुँचने के भय से ऐसी स्थिति मे अध्ययन वद कर देना चाहिये। अत मुझे यहा (उदयपुर) ही रहना पडा। अस्वस्थता के कारण कोठारीजी अब सरकारी दुकान का काम छोडना चाहते थे। यही काम सं० १९८९ भादों सुदी १२ को श्री दरबार ने कृपा कर मेरे सुपुर्द फ़रमा दिया। इन वर्षो में प्राय कोठारीजी के अस्वस्थ रहने के कारण वहा के कर्मचारियो को ठीक अवसर मिला और जब मैंने सरकारी दुकान के खजाने को सभाला तो वहा का खजानची एकाएक फ़रार हो गया। इस पर शक पैदा हुआ और सरकारी दुकान के ख़ज़ाने को चिट वन्द किये जाकर श्रीजी हुजूर की आज्ञानुसार हिसाब दफ़तर के हाकिम मोतीलालजी वोहरा और रावावत मानसिंहजी की शामलात से खजाना सभाला गया। करीब बीस हजार चित्तौडी रुपये (कलदार ११०००) की कमी पाई गई। कोठारीजी को भी बडी चिंता थी और खजानची का पता लगाने की फ़िराक मे थे। नदलालजी महता को भी इसकी तलाश के लिये कहा गया। इस अर्से में कुछ ही दिनो बाद खजानची को रतलाम से तलाश कर नदलालजी महता ने यहा पेश कर दिया। वाजाब्ता इसकी तहकीकात होकर वहा के नायब और खजानची दोषी सिद्ध हुए और घटत की कुल रकम आधों-आध दोनो से वसूल की जाकर इनको तीन तीन वर्ष की क़ैद तथा एक एक हज़ार रुपया जुर्माने का दड हुआ।

(हाशिया: सरकारी दुकान के काम का तबादला और बीस हजार रुपयों की घटत।)

अब तक के इतिहास के अवलोकन से पाठको को भली भांति अनुमान हो गया होगा कि कोठारीजी को अपना शिकार बनाने के लिये द्वेषी लोग किस तरह सदा ताक में रहते थे। अतएव इस गबन के अवसर पर भी उन्हें अच्छा मौका मिला और उन्होंने यह वार जमाना चाहा कि कोठारीजी भी इस गबन मे शरीक हैं और लाखो रुपयो की

कमी निकलेगी और यह रकम उनसे वसूल होनी चाहिये, इत्यादि । लेकिन कोठारीजी की सत्यता पर मेवाड़नाथ को पक्का विश्वास था ।

जब संभाला समाप्त होने पर जाँच पड़ताल किये जाने के बाद केवल २००००) वीस हज़ार रुपयों के करीब ही रकम कम हुई तो उन लोगों को, जो कोठारीजी को भी लपेटे में लेना चाहते थे, बड़ा असन्तोष हुआ । एक सामान्य बुद्धि का व्यक्ति भी अनुमान कर सकता है कि जिन कोठारीजी का मन अपनी तनख्वाह के तीन लाख रुपये लेने के लिये नहीं ललचाया, क्या वे दस-वीस हज़ार का ग़बन करने को तैयार हो जायँगे ।

सेशन जज रायावत जवानसिंहजी अपने फैसले में स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि "मुलज़िम शंकरलाल का मामला तो बहुत साफ़ है । खजाने में उसकी तेहवील की रकम कम होना उसको तसलीम है । उसका महज़ ये उज्र है कि यह रकम उसने नायब को दी । लेकिन ऐसा करने से उसकी ज़िम्मेवारी जुर्म के निसबत कम नहीं हो सकती । दूसरा उज्र इस मुलज़िम का यह है कि अफ़सर दुकान कोठारीजी के इल्म मे यह ग़बन नायब ने किया । लेकिन कोठारीजी खुद को इल्म होने बाबत इनकार है । न क्यास में आता है कि कोठारीजी को इस ग़बन का इल्म होते हुए इसको छिपाये रक्खें । इलावा इसके अगर कोठारीजी खुद की इसमें साज़िश होती तो क्या ज़रूरत थी कि वे तेजसिंह जी को एकदम संभाला करने से नहीं रोकते । कमी वगैरह पूरी करा कर संभाला लेवाते ।"

जब शत्रुदल के घोर प्रयत्न करने पर भी उन्हे सफलता न हुई, तो कोठारीजी की हतक करने के लिये उन्होंने कोठारीजी का बिना ज़रूरत ही इस मुकद्दमे मे बयान कराने की कोशिश की, किन्तु श्री दरबार तो कोठारीजी की सत्यता और ईमानदारी से भली भांति परिचित थे । बयान की भी स्वीकृति नहीं बख्शी और जो सवाल दर्याफ़ करना हो, तहरीर के ज़रिये दर्याफ़ करने की ही आज्ञा प्रदान की ।

७१ वर्ष की उम्र मे—जिस पुरुष ने करीब ५५ वर्ष तक ४ नरेशों की निरन्तर सेवा की—उस वृद्ध मन्त्री तक का अपमान कराने मे लोगों को ज़रा भी हिचकिचाहट न हुई । इसमे उनका दोष नहीं क्योंकि एक कवि सत्य कहता है :—

अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोपिति च स्पृहा ।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥

अर्थात् दया न करना, बिना कारण वैर करना, पराया धन और पर स्त्री की

इच्छा करना, अपने परिवार तथा मित्रों से असहिष्णुता अर्थात् ईर्ष्या करना, दुष्ट मनुष्यों का स्वभाव सिद्ध ही है।

कोई कहे कि विना कारण ही कोठारीजी के शत्रु क्यों खडे हो जाते थे। सच बात यह है कि दुर्जनों के लिये कारण की आवश्यकता नहीं रहती है। क्योंकि विना कारण वैर करना यह प्रकृति दुर्जनों की ब्रह्मा द्वारा रची गई है। बचारे दुर्जनों का इसमें दोष ही क्या है? दूसरे कवि ने दुर्जनों का वर्णन करते हुए लिखा है—

एते सत्पुरुषा परार्थघटका स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृत स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसा परहित स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये निघ्नन्ति निरर्थक परहित ते के न जानीमहे॥

अर्थात् उत्तम पुरुष वे हैं, जो अपना स्वार्थ छोडकर दूसरों के कार्य करते हैं। मध्यम श्रेणी के मनुष्य वे हैं, जो अपने स्वार्थ को साधते हुए भी परोपकार करते हैं और जो अपने स्वार्थ के लिये दूसरों का काम बिगाडते हैं, उन्हें मनुष्य के रूप में भी राक्षस समझना चाहिये किन्तु जो विना किसी प्रयोजन के ही दूसरों को दुःख पहुँचाने को तत्पर रहते हैं उन्हें क्या कहा जाय, वह कहने में कवि भी असमर्थ है। ऐसे पुरुषों से बडे बडे कवि भी थक बैठ हैं, तो सामान्य व्यक्ति उसका पार कैसे पा सकता है।

वर्तमान महाराणा साहब का प्रारंभिक काल।

श्रीमान् आर्य-कुल-कमल-दिवाकर, सहृदय, देवाराधक, पितृ-भक्त, प्रजावत्सल एवं दयानिधान महाराणा साहब श्री भूपालसिंहजी का जन्म सं० १६४० वि० फाल्गुन कृष्णा ११ को हुआ था। श्रीमानों को बाल्यकाल ही में घोडे की सवारी, तैरना, गोली चलाना इत्यादि क्षत्रियोचित शिक्षा उत्तमतया दी गई और होते होते इन सब ही में आपने अच्छी निपुणता प्राप्त की। बढते बढते गोली चलाने में तो इतना उत्तम अभ्यास हो गया कि कई बार श्रीमान् बड़े हुजूर, जो निशाना लगाने में बडे निपुण थे, कभी निशाने से चूक जाते तो आप इनको आज्ञा देते और तुरन्त ही शिकार मार लेते। ऐसे अवसर अनेकों बार उपस्थित हुए। आपको बचपन में ही हिन्दी संस्कृत का अभ्यास उत्तम होने से प्रोफेसर मतिलालजी भट्टाचार्य एम० ए० की अध्यक्षता में अंग्रेजी का पठन-पाठन कराया गया। सं० १६५७ से ही आपको रीढ की बीमारी हो गई। श्री बड़े हुजूर ने अनेक उपचार कराये, किन्तु एक पैर में तो हमेशा के लिये तकलीफ बनी ही रह गई। ऐसी स्थिति में भी उम्र मेधावी एवं नितान्त परिश्रमी होने से आपने अंग्रेजी का बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। विद्याध्ययन की अपेक्षा

आपका अनुभव बहुत ही बढ़ा चढ़ा हो गया। क्योंकि ५४ वर्ष के इस लंबे समय में सैकडों प्रकार के अवसर आपके सम्मुख उपस्थित हुए और ४८ वर्ष की अवस्था तक तो आपके पूज्य पिता श्री स्वर्गीय महाराणा साहब की छत्र-छाया में आपको राजकार्यों का बहुत अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिला, जो विरले शासकों को ही संभव हो सकता है। धर्म के प्रति तो श्रीमानों को बचपन से ही अत्यन्त प्रेम है और दया एवं दानशीलता के अनुपम गुण श्रीमानों में पूर्णतया भरे हुए हैं। अतिथि के लिये राजद्वार नित्य खुला रहता है और छोटे से बड़े तक प्रत्येक व्यक्ति श्रीमानों के सत्समागम से हर्पित एवं संतुष्ट होकर लौटता है। बड़े बड़े रईस एवं अंग्रेज़ी ऑफिसर जिन जिनको श्रीमानों के समागम एवं आतिथ्य लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ, उन्होंने आपके आतिथ्य से बड़ी प्रसन्नता प्रकट की है। दानवीर मेदपाटेश्वर के दरबार में साधु, संत, दीन, दुःखी अथवा शरणागत की आशा पूर्ति होना और उसके दुःख निवारण हो आत्मा को शान्ति मिलना तो श्रीमानों के प्रतिदिन के कर्तव्य हैं।

श्री बड़े हुजूर द्वारा वर्तमान महाराणा साहब को राज्य कार्यों का सुपुर्द होना और शासन-सुधार आदि।

सं० १९७८ से तो आपका राजकीय कार्यों मे विशेष रूप से भाग लेना प्रारंभ हो गया और बहुत से राज्याधिकार कुँवर पद (युवराज पद) मे ही प्राप्त हो गये, जिसके फलस्वरूप आपने राज्य के कई विभागों मे सुधार करना प्रारंभ कर दिया। गद्दी विराजने पर प्रत्येक विभाग के सुधार की ओर विशेष रूप से आपका ध्यान आकर्पित हुआ। न्यायविभाग मे सुधार किया गया। अब चीफ जस्टिस और अलग अलग कई जस्टिस मुकर्रर किये गये। अदालत मुन्सफी, सिटी मैजिस्ट्रेटी, व दो सेशन कोर्ट की स्थापना हो जाने से लोगों को न्याय मिलने में बड़ी सुविधा हो गई। इसके अतिरिक्त पुराने मुकद्दमों का शीघ्र फैसला करा देने के लिये एक महद्राजसभा का नया इजलास अलग ही कायम किया, जिसमें अनुभवी मेम्बर नियुक्त किये गये। इससे उलझे हुए पेचीदा मुकद्दमों में भी शीघ्र न्याय मिलने की संभावना हो गई है।

इसी प्रकार किसानों की स्थिति सुधारने एवं उन्हे अहल्कारों की ज़्यादतियों से बचाने के लिये नये सिरे से बंदोबस्त कराया जाकर ठेका मुकर्रर करने की व्यवस्था की गई और यह कार्य भी योग्य, परिश्रमी एवं अनुभवी यूरोपियन अफसर मिस्टर ट्रेंच के सुपुर्द किया गया, जिनके कार्यों से कृपकों को भी बड़ा संतोप रहा। वैसे ही कृषि-सुधार का फंड अलग खोला जाकर कृषकों को आवश्यकता पड़ने पर बहुत ही कम सूद पर रुपया कर्ज़ मिलने की व्यवस्था की गई और बहुत सी छोटी मोटी लागतें, जो कृषकों को कष्ट देती थीं, माफ कर दी गई। सायर महसूल की भी नई व्यवस्था की

गई। कृषि-फार्म कायम कर वैज्ञानिक साधनो द्वारा खेती की उन्नति का नया ढग बतलाने की योजना की गई और भीलवाडे मे व्यापार की उन्नति के हेतु भूपालगज नाम की मडी बनवाई और कपडे बनाने का मिल भी स्थापित हुआ है।

सन् १९२३ में आबकारी का नया महकमा कायम कर मादक वस्तुओ की बिक्री के कवायद मे सुधार किया गया, जिससे मादक द्रव्यो का प्रचार कम होकर प्रजा का द्रव्य बुरे रास्ते जाते हुए बचने की सभावना है।

मावली से मारवाड जकशन तक नई रेलवे लाइन खोली गई, जिससे जोधपुर जाने का मार्ग बहुत निकट हो गया और मेवाड के जगत्प्रसिद्ध श्रीनाथजी—नाथद्वारा, काकरोली, चारभुजा आदि तीर्थों मे जाने की वडी सुविधा हो गई। इसी प्रकार अब तो उदयपुर एव राजनगर से हवाई जहाज (Aeroplane) के मुख्य स्टेशन बन रहे हैं।

रुई की गाठें बाधने के पेच चपालाल रामसरूप के पास ठेके पर थे। उसकी अवधि समाप्त होने पर सन् १९२७ मे ये कारखाने राज्य के अधिकार में ले लिये गये और छोटी सादडी, चित्तौड मे और देवस्थान के तअल्लुक आमेट मे भी नये सरकारी कारखाने खोले गये, जिससे आय मे वृद्धि हो रही है।

उदयपुर मे इन्टर मीडियेट कालेज, भूपाल नोबल स्कूल, फतहभूपाल ब्रह्म विद्यालय और देहातो मे जगह जगह स्कूल व शफाखाने विशेष रूप से दृष्टिगोचर होने लगे हैं। यह केवलमात्र श्रीमानो के उदारहृदय होने का ही फल है। कन्याओ की शिक्षा के लिये प्राइमरी स्कूलो की स्थापना की और छात्रो को प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति विशेष रूप से मिलना, यात्रियो के लिये श्रीमानो के पिता श्री की स्मृति मे फतह मेमोरियल तथा श्रीमानो के मातेश्वरी की स्मृति मे स्टेशन पर माजी साहिबा की सराय का निर्माण होना, फतहपुरा का बसाया जाना श्रीमानो का अखड पुण्य जताते हुए उदारता के अमर उदाहरण ही नहीं अपितु श्रीमानो की *मातृपितृ-भक्ति* के अद्वितीय प्रमाण हैं। देवभक्ति भी श्रीमानों की आदर्श है। वर्ष मे कई बार दर्शनार्थ कैलाशपुरी पधारते हैं और श्री एकलिंगेश्वर ही वशपरपरानुसार परम इष्ट है। समय समय पर कई बहुमूल्य वस्त्राभूषण आदि भेंटकर सेवा फरमाते हैं और श्री कैलाशपुरी ही नहीं बल्कि अन्य देवस्थानो मे भी श्रीमानों की पूर्ण भक्ति है। समय समय पर नाथद्वारे, काकरोली, चारभुजा इत्यादि पधारना होता रहता है, और भक्तिपूर्वक विविध भेंट एव सेवाएँ करते हैं।

प्रत्येक धर्म की स्वतत्रता, धर्म का पालन एव इस कलिकाल मे भी मेवाड मे वही धर्म का स्वरूप विद्यमान होना केवलमात्र श्रीमानो के धर्मशील होने का ही फल है। श्रीमानो के राज्य मे मछली, मोर, कबूतर आदि गरीब प्राणियों की रक्षा का पूरा

ध्यान रहता है। और समय समय पर इसके प्रतिवन्ध स्वरूप आज्ञाएँ होती रहती हैं एवम् अपराधियों को दंड दिया जाता है। वर्ष में कई वार अकते भी रखाये जाते हैं, जो मूक प्राणियों की रक्षा के साथ ही साथ श्रीमानों के करुणासागर एवं दयाशील होने के ज्वलंत प्रमाण हैं।

श्रीमानों को शिल्पकला से भी अत्यन्त प्रेम है। जगनिवास, जगमंदिर, जलप्रासाद जीर्ण हो गये थे। इनको श्रीमानों ने लाखों रुपये लगा प्रायः जीर्णोद्धार करा नवीन वना दिया है। जगनिवास का चंद्रप्रकाशमहल तो एक नूतन दर्शनीय प्रासाद वन गया है। समोर, लक्ष्मीविलास, भूपालभवन, चित्तोड़ इत्यादि अनेक नये महल भी तैयार कराये गये हैं, जिनमे शिल्पकला का अच्छा दिग्दर्शन है। इसके अतिरिक्त कई एक मंदिर, महल इत्यादि की भी मरम्मत करवाई है। श्रीमानों ने कई तालाव इत्यादि निर्माण कराते हुए मेवाड़ देश को विशेष हरा भरा वना एवं कृषकों की सुविधा की तरफ भी पूर्ण तवज्जह फरमाई है।

उदयपुर शहर में म्यूनीसिपैलिटी की स्थापना कर सारे शहर मे विजली का प्रवन्ध किया गया। शहर में ही नहीं किन्तु देहात तक में भी कई जगह म्यूनीसिपैलिटी की स्थापना की गई और रोशनी का प्रवन्ध कराया गया है। मुख्य देवस्थानों में भी विजली का प्रवन्ध हुआ है। गंभीरसिंहजी चौहान की देख-रेख में चारभुजा मे सराय वनवाई जाकर यात्रियों को सुविधा की गई है।

राज्य के प्रथम वर्ग के उमरावों के वीच अधिकार के विपय मे जो झगड़ा चला आता था, उन्हे न्यायसंवन्धी अधिकार साफ़ तौर से प्रदान कर झगड़ा मिटाते हुए चहूँद चाकरी की भी सुविधा कर दी गई है।

गद्दी विराजने पर मुसाहव आला की नई जगह कायम हुई और वहां पर जोधपुर के वयोवृद्ध पंडित सर सुखदेवप्रसादजी—जो अर्से तक जोधपुर के दीवान रहे और स्वर्गीय महाराणा साहव के समय यहां पर भी मंत्री रह चुके थे—को नियत किया गया। इनका संवत् १९९२ में देहान्त हो जाने पर मुसाहव आला की जगह दीवान वहादुर पंडित धर्मनारायणजी को नियत कर दिया गया। इनका स्थान खाली होने से महक्माखास मे वावू प्रभासचंद्रजी के साथ अपने विश्वासपात्र और अनुभवी प्राइवेट सेक्रेटरी तेजसिंहजी महता को मंत्री नियत किया।

श्रीमानों ने अपने शुभचिन्तक तथा राज्य के हितैषी सेवकों मे से कई एक को समय समय पर अपने शासनकाल में ताजीम, सोना, जागीर और पारितोषिक वख्शते हुए असीम गुणग्राहकता का परिचय दिया है।

भोमट व मरवाड़े के जिलों का वापस मेवाड़ के अधीन होना केवलमात्र श्रीमानों की प्रबल राजनीति और बुद्धिमत्ता का ही फल है।

कोठारीजी पर कृपा।

बाल्यकाल से ही कोठारीजी के प्रति श्रीमानों की पूर्ण कृपा रही और श्रीमानों के विवाह इत्यादि मुख्य मुख्य अवसरों पर कोठारीजी से ही स्वर्गीय महाराणा साहब ने सेवाएँ ली थीं। ५४ वर्ष के लंबे समय में कोठारीजी की प्रत्येक स्थिति बहुत करके श्रीमानों के दृष्टिगोचर हो चुकी थी और कोठारीजी की राजभक्ति एवं शुभचिन्तकता के संबंध में श्रीमानों को भी पूर्ण अनुभव हो गया था। प्रत्येक राज्य व प्रत्येक गृहस्थी के घर में प्रत्येक व्यक्ति में परस्पर न्यूनाधिक प्रेम होता है किन्तु कोठारीजी की एकनिष्ठ स्वामिभक्ति तथा श्रीमानों की उदारहृदयता और श्री बड़े हुजूर की असीम कृपा का ही फल था कि कोठारीजी ही नहीं बल्कि उनके घर के बच्चे-बच्चे तक को श्रीमानों ने तथा श्री बड़े हुजूर ने तथा श्रीमानों के यहां श्रीमती मांजी साहिबा तथा राणीजी साहिबा ने पूरी रुवावदी रख पालन पोषण कर पूर्ण सहानुभूति और अनुग्रह दृष्टि प्रदर्शित करते हुए समय समय पर उनकी रक्षा की और शत्रुओं के चंगुलों से हमेशा बचाया।

शत्रुओं को सुअवसर।

राज्य के न्याय-विभाग में स्टाम्प और कोर्ट फ़ीस रजिस्ट्री तथा मियाद का नया कायदा बनाया गया। इसमें लोगों को हानि नहीं बल्कि कितनी ही सुविधाएं थीं। परन्तु कुछ कमसमझ लोगों ने बिना समझे इसके लिये हो-हुल्लड़ मचा दिया और सं० १९८८ के आषाढ़ में राज्य के दफ़्तरों तक में हुल्लड़ मचाने को घुस गये। इस पर उनको साम, दाम, दंड, भेद से समझाया और हुल्लड़ शान्त कर दिया गया।

जगह जगह बताया जा चुका है कि कोठारीजी के कपट-हितैषी शुरू से ही बहुत रहे हैं। महाराणा स्वरूपसिंहजी से लेकर वर्तमान महाराणा साहब तक इन पांचों नरेशों की असीम कृपा का ही फल है कि कोठारीजी का पैर टिका रह सका। वरना समय समय पर वार करने में कपट-हितैषियों की ओर से कोई कसर बाकी नहीं रक्खी गई। इस हुल्लड़ के लिये भी कई लोगों ने यह प्रसिद्ध किया कि यह हुल्लड़ यहां के मुसद्दियों ने करवाया है और इसमें अग्रगण्य नाम कोठारीजी का ही रक्खा गया। इस मामले को ऐसे ढंग से और ऐसे प्रपंच के साथ फैलाया गया कि उसमें सत्यता दिख जाय किन्तु थोड़े समय में ही यह संशय दूर हो गया।

प्रत्येक व्यक्ति सोच सकता है कि ऐसे दयालु महाराणा साहब के राज्य में प्रत्येक सेवक जो उनके उपकारों से गले तक भरा हुआ है और उसमें भी मुख्य कर

कोठारीजी, जिनके अणु अणु में स्वामिभक्ति कूट-कूटकर भरी हुई थी, वे भला ऐसी सलाह कैसे दे सकते थे किन्तु कर्मो के चक्कर मे पड़कर सूर्य चन्द्र को भी ग्रसा गया। महादेव का नग्नत्व और विष्णु का नाग पर सोना भी इसी का फल है। कहा भी है :—

"अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य, महाहिशयनं हरेः॥"

समय का फेर आने पर वड़े वड़े महापुरुषों को भी विपत्ति के झोंके खाने पड़े हैं फिर कोठारीजी के लिये तो कहा ही क्या जा सकता है। थोड़े समय के लिये स्वर्ण पर भी कालिमा आ जाती है किन्तु थोड़े अग्नि-ताप का कष्ट सहन करने से पुनः वही शुद्ध एवं चमकीला वन जाता है। ठीक वैसे ही समय समय पर कोठारीजी के जीवन मे ऐसे ऐसे कठिन अवसर उपस्थित होते रहे हैं। किन्तु थोड़े ही काल मे उन्हें थोड़ी सी तपाई होने पर ही वह कालिमा प्रायः नष्ट-भ्रष्ट हो गई और निर्मलता, शुद्धता दृष्टिगोचर होने लगी।

राजमातेश्वरी का स्वर्गप्रस्थान।

श्रीमती माँजी साहिवा (महाराणा साहव फ़तहसिंहजी की महाराणी साहिवा), जो अपने पतिश्री के वियोग से व्याकुल थीं और इसी महादुःख के साथ साथ शरीर से भी अस्वस्थ थीं, का व्याधि के वढ़ने से सं० १९८९ फाल्गुन कृष्णा अमावस्या को स्वर्गवास हो गया। इनके शरीर-त्याग से कोठारीजी के हृदय पर श्रीमान् वड़े हुजूर के देहान्त के थोड़े ही समय वाद यह दूसरा वज्रपात हुआ। कोठारीजी के भाग्य में निज जननी का सुख तो जन्म से ही नहीं वदा था, किंतु केवलमात्र इन्हीं राजमातेश्वरी श्रीमती माँजी साहिवा का ही आश्रय था। इस अवसर पर कोठारीजी ने अपने शोकसंतप्त हृदय के भावों को महियारिया कवि नाथूदानजी के सामने व्यक्त किया। उन्होंने उन्हीं भावों को सुन्दर कविता में गूँथ दिया है, जो इस प्रकार हैं :—

दोहा

उगणीसे सित्यासिये, जेठ कृष्ण पख जाण।
सुरग गयो एकादशी, भूप फ़तो हिन्दुवाण॥

कवित्त

पति हिन्दुभान जव स्वर्ग को पयान कीन्हो,
अव जग जीनो कहा याने मन जानीही।
धर्म दिन अम्मावस लीन्हो धर्मधारिनीही,
वो ही मग लीन्हो धन्य ठीक ठाह ठानीही।

माता भुवपाल कीरु सारे मेदपाट हू की,
भारत की भूमि हू पे धर्म की निसानीही।
स्त्रीव्रत पुरुषन के गुरु फतमल्ल थेरु,
पतिव्रत नारिन की चावरी गुरानीही॥

दोहा

उगणीसे निव्यासिये अम्मावस शुक्रवार।
वास कियो धन चावड़ी, फागण स्वर्ग मझार॥
कोठारी वलवन्त कह्यो वुधिजनन बारम्बार।
दोहा कवित यों लिख दिया, मैं नाथू महियार॥

वास्तव मे श्रीमती राजमातेश्वरी पातिव्रत-धर्म-पथ-प्रदर्शिका एव आदर्श महाराज्ञी थी। कोठारीजी एव उनके कुटुम्ब पर राजमातेश्वरी श्रीमती मॉजी साहिवा की पूर्ण कृपा रही और वे सुख-दु ख में हमेशा कृपा एव सहानुभूति प्रदर्शित फरमाते रहे।

नई बाड़ी की वख्शीश।

सवत् १९९२ कार्त्तिक कृष्णा ११ को श्री जी हुजूर ने कोठारीजी को उनकी वाडी से मिली हुई सडक के पास वाली हनूमानजी की देवरी के सामने आहाड जाने वाली सडक क दक्षिण की ओर तीन वीघ पौने चार विस्वा ज़मीन नवशाऊ वख्शी और इसी वर्ष के फाल्गुन मास मे कोठारीजी के प्रिय प्रपौत्र के जन्म पर उनकी हवेली मेहमान हो मुझे तथा हरनाथसिंहजी महता को सोने के लगर वख्शे, जिसका वर्णन नीचे दिया जाता है।

कोठारीजी के प्रपौत्र कँवर मोहनसिंह का जन्म।

कोठारीजी के प्रपौत्र कँवर का जन्म पौप कृष्णा ७ भौमवार सवत् १९९२ तद्नुसार ता० १७ दिसम्बर सन् १९३५ ईस्वी के प्रात काल ८ वजकर ४७ मिनट पर पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र मे हुआ। इसकी सूचना फौजवख्शी महता लक्ष्मणसिंहजी क यहाँ से आने पर जन्म अकुर तथा नाम सुधवाने क लिये ज्योतिषी दयाशकर जी आदि को बुलाया। जन्माक्षर वनवाकर मोहनसिंह नाम रक्खा गया।

मेवाड की प्राचीन प्रथा क अनुसार पूर्वोक्त शुभ अवसर आने पर परदादा को सोने की नीसेनी पर चढाया जाता है। अत माघ शुक्ला १२ मगलवार के दिन सोने की नीसेनी पर चढने का दस्तूर आम वाले चौक मे कोठारीजी वलवन्तसिंहजी एव मोतीसिंहजी द्वारा किया गया। इसी शुभ अवसर पर कोठारीजी न वाहर से अपने रिश्तेदारो एव मित्रो को भी न्योता भेज आग्रहपूर्वक बुलवाया था। उनका तथा स्थानीय रिश्तेदारो का आदर सत्कार कर उनको यथायोग्य सिरोपाव आदि दिये और

नौकरों को पगड़ी एवं साड़ियाँ तक्सीम कीं। इस प्रकार बड़े आनन्दपूर्वक उत्सव मनाया गया।

कोठारीजी ने अपने प्रपौत्र के जन्म की खुशी में अपने यहाँ पर श्रीमान् श्री जी हुजूर की पधरावणी कराने का निश्चय किया और माघ कृष्णा ६ सं० १९९२, ता० १४ जनवरी सन् १९३६ ईस्वी मंगलवार के दिन महलों में जाकर श्रीमानों के चरणकमलों में अपनी रज से हवेली को पावन करने के लिये अर्ज़ की, जिस पर श्रीमानों ने स्वीकृति बख्शी। और फाल्गुन कृष्णा ११ अर्थात् जन्मोत्सव के पहले किसी दिन पधारने का निश्चय करने के लिये हुकुम फ़रमाया। इसके दूसरे दिन श्री जी हुजूर का पधारना जयसमुद्र हो गया। जयसमुद्र से वापस उदयपुर पधार चंपाबाग़ से देहली पधारने की तैयारी हुई। चंपाबाग़ मे माघ शुक्ला ५ के दिन हवेली पधारने के लिये फाल्गुन वदि ७, ९, १२ इनमे किसी दिन पधारने को अर्ज़ की। इस पर फाल्गुन कृष्णा ९ रविवार के दिन हवेली पधारने की तिथि निश्चित फ़रमाई। उसी दिन श्रीजी हुज़ूर का पधारना देहली हुआ। उन दिनों गिरधारीसिंहजी कपासन ज़िले के हाकिम थे। अतः ये कपासन तक साथ ही स्पेशल ट्रेन से चले गये। उनके रास्ते मे अर्ज़ करने पर प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू रामगोपालजी को हुकुम बख्शाया सो उन्होंने राजश्री महक्माखास में तेजसिंहजी महता 'मिनिस्टर' के नाम पधरावणी के मुतअल्लिक जो प्रबन्ध सरकारी कारख़ानों के ताल्लुक का हो, करा देने के लिये लिख भेजा। इधर पधरावणी के मुतअल्लिक प्रबन्ध शुरू किया गया। उधर कोठारीजी का सकल परिवार चातक की भाँति टकटकी लगाये इस शुभ अवसर की बाट जोहने लगा कि कब वह शुभ दिन आये और श्रीमानों के चरणकमलों की रज से यह गृह पवित्र हो।

प्रपौत्रजन्म के उपलक्ष में मेवाड़नाथ की पधरावणी।

समय की गति बड़ी विचित्र है। युग के युग बीतने में भी देर नहीं लगती। प्रतीक्षा करते करते वह दिन भी निकट आ गया और आखिर फाल्गुन कृष्णा ९ को शुभ घड़ी मे सूर्यदेव ने अपनी अरुण लालिमा के साथ दर्शन दिये। इसी मंगल प्रभात में कोठारीजी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो श्रीजी हुज़ूर से हवेली पधारने की अर्ज़ करने के अर्थ महलों में गये और अर्ज़ कर वापिस लौट आये।

श्रीमानों की ऐसी पधरावणी के जलूस को देखने का अवसर उदयपुर की जनता को कई वर्षों से प्राप्त नहीं हुआ था। अतः जनता इस जलूस को देखने के लिये बड़ी उत्कंठित थी क्योंकि श्रीमानों के राज्य-सिंहासन पर विराजने के बाद उदयपुर शहर में इस तरह की पधरावणी का यह पहला ही अवसर था। महलों से लेकर कोठारीजी की हवेली तक दर्शकों की भीड़ लग रही थी। श्रीजी हुज़ूर महलों से सफ़ेद

घोडो की चौकडी की वग्घी में सवार हुए। अन्य सरदार वगैरह पीछे की वग्घियों में बैठ। श्रीजी हुजूर की वग्घी के आगे और पीछे पकी वर्दी के २५ सवार थे। रास्ते में करीब २० मिनट लगे और पौने दस वजे के लगभग हवेली पर पधारना हुआ। हवेली के दरवाजे पर गमले फुलवाद वगैरह सजे हुए थे। इसी दरवाजे पर सुनहरी अक्षरों में लाल कपडे पर निम्न सोरठा लगाया गया था —

शबरी बेर सनाथ, त्यों हि सुदामा तादृशा।
सेवक किये सनाथ, पृथिपति गेह पधारि के॥

इस दरवाज़े पर कोठारीजी के अतिरिक्त अन्य कई लोग भी हाजिर थे। यहाँ पर वग्घी से पागडा छाटने पर कोठारीजी ने पाँच रुपये से नजराना तथा दो रुपये से निछरावल (न्योछावर) किया। इसी प्रकार कोठारीजी मोतीसिंहजी ने दो रुपये से नज़राना किया। यहाँ से श्रीमान् का तामजाम सवार होकर दरीखाने में—वारणों तक लाल टूल के पगमंड बढाते रहे—पधारना हुआ। जहाँ से तामजाम सवार हुए वहाँ से ठेठ तक चवर आदि सब लवाजमा साथ में हाज़िर रहा। जहाँ हवेली के खुरे की चढाई समाप्त होती है, वहाँ पर हवेली की दासियों—डावडियों—ने गीत गाते हुए कलश बधाया और पास ही चबूतरी पर श्री जैन-शिक्षण-संस्था भडभूजा घाटी के विद्यार्थियों ने अभिनन्दनात्मक मंगलगानपूर्वक स्वागत किया। नीम के वृक्ष के नीचे बैन्ड ने सलामी उतारी। भोई न दही एव कुम्भकार ने कलश बधाया। इस प्रकार सब का स्वागत स्वीकार फ़रमाते हुए जनसमूह के मध्य से ऊपर पधारे। दरीखाने के दरवाज़े से गादी तक मसरू के पगमंडे किये गये। दरीखाने के गोखडे में जरदोज़ी गादी लगी हुई थी। उस पर श्री दरबार के विराजने पर कोठारीजी ने स्वरूपशाही मोहर और ५) रुपये से नज़राना कर ५) रुपये न्योछावर किये। सोने चादी के फूल व ४) रुपये गद्दी के नीचे रक्खे। इसके बाद कोठारी मोतीसिंहजी व गिरधारीसिंहजी ने, मैंने, दुलेहसिंहजी और शिवदानसिंहजी ने नज़राना किया। फिर रिश्तेदार कामदार सरदार उमरावों के वकील आदि तअल्लुक वालों के नज़राने कराये गये। इसके बाद श्रीजी हुजूर का पधारना ड्योढी ऊपर के मकान में हो गया। वहाँ मिठाई की लकडी के पाटिये पर वाडी नज़र होती है, वह की गई। इसके थोडी देर बाद वापस दरीखाने में पधार कुर्सी पर विराजना हो गया। नगरसेठजी के बीमार होने से उनके पुत्र गणेशलालजी तथा पंच साहूकार और जौहरी वगैरह के नज़राने भी करवाये गये।

कोठारीजी के हितचिंतक दधिवाडिया करणीदानजी अपने रिश्तेदारों में गमी हो जाने से नहीं आ सके। उन्होंने कोठारीजी की एतिहासिक कविता बनाई और वह बारेठ चालकदानजी के साथ भेजी, जो उन्होंने पढकर श्रीजी हुजूर के चरणों में अर्पण की। वह कविता निम्न प्रकार है—

कोठारी सुवंश जात, चोहित भे कुम्भ समे,
मंत्री पद पायो उच्च कुंभल दुरग को।
महारान जगत प्रथम राजसिंह समे,
चतुर्भुज वही पद पायगो सुरग को॥
राज्यकर्मचारी भारी वंश या अनेक भये,
करि के सफल गये जीनो निज जग को।
स्वामी पहिचान्यो शुद्ध सेवा भाव इनको सु,
इन हितकारी जान्यो सेवा धर्म मग को॥१॥

कोठारी प्रधान कियो केहरी स्वरूप रान,
अक्षत दे मौक्तिक दवात हेम कलमें।
मंत्रिन उचित उच्च सन्मान कीन्हो सब,
लखि के असूया भरी वहु खलदल में॥
भाग्यवश स्वर्ग सिधाये गुनग्राही भूप,
पंच सरदारन प्रपंच उठे पल में।
विपतिनिवारण को एकलिंग जाय रह्यो,
तोउ न हट्यो न वह स्वामि धर्म भल में॥२॥

भाग्य फेर उदय स्वरूप पाट शंभु आये,
पुरी कयलास ते बुलाय मंत्री कीन्हो जो।
सहस पचास मुद्रा अर्पि निज इष्टदेव,
स्वामि भाव वत्सलता परिचय दीन्हो जो।
हाय वह केहरी ही पंचतत्त्व प्राप्त भयो,
अनुरूप वलवंतसिंह गोद लीन्हो जो।
खावन्दी खयाल राख्यो या पे शंभु सज्जन ने,
ये भी स्वामि सेवकाई पूर्ण रंग भीन्यो जो॥३॥

सज्जन नृपाल पाट फतमाल वड़भाल,
धन्य जा वखानी जात गुन की गहायता।
स्वामि धर्म धारी निज सेवक परम जान,
पूर्णतया राखी वलवंत की सहायता॥
पायन सुवर्ण दे वनायो मुख्य मंत्री निज,
स्वामि अरु सेवक को निभ्यो सर्वथानता।

पूरन सु पुन्य कर्म महर महीपन की,
मानव मिलत जेसी होत चित्त चाहता ॥४॥

जान्यो अन्धकार सो कृपाल फतमाल जात,
पै जु भुवपाल हिन्दभानुसो उदय भो।
जाकी बाल्यकाल कृपा किरण प्रकाश पाय,
गिरधारी हिय पद्म हर्ष अतिशय भो॥
सन्मान कीन्हो हेम लगर दे पायन में,
स्वामिपन वत्सलता पूर्ण परिचय भो।
मुन्सफी दुकान कार्य पुत्र तेजसिंह सौंपि,
तीन पुश्त खानिन्दी खयाल प्रभु जय भो ॥५॥

इसके अतिरिक्त महियारिया नाथुदानजी ने निम्न कविता श्रीजी हुजूर में अर्ज की—

दोहा

थयो सनाथ हगाम थट्ट नरपत ने घर नूंत,
पल पल मूघी प्राण सू वध वध करे वलूत॥
पिता वलवंत हु को बुद्धि वलवंत भयो भूप,
रान शम्भु ते दीवान पद पाये हैं।
राज भार जाके भुज धरि के चढ़ायो मान्य,
चित्रगढ़ नाथ मुक्ता अक्षत चढ़ाये हैं॥
स्वामिभक्ति सेवा याकी नित्य वलवन्त रही,
फता ने पिछान के प्रधान ही बनाये हैं।
आज वलवत हु को भाग्य वलवत भयो,
स्वामि भुवपाल महमान घर आये हैं॥१॥

स्वामि महमान आये सात्विक दिवान घर,
कदर करी है कर्मचारिन के कामा की।
रावरी कृपा सो महामगल वधाई होत,
हद ही दिखाई छवि हर्ष हगामा की॥
स्वामि और सेवक को नता दिखलायो आज,
कहानी दिखाई सत्य पत्ता अरु भामा की।

धनि भुवपाल बलवंत घर आये धन्य,
प्रगट दिखाई प्रीति कृष्ण सुदामा की ॥२॥

दधिवाडिया करणीदानजी तथा महियारिया नाथुदानजी के अतिरिक्त अन्य भी चारण कवियों ने कविता अर्ज की और एक कविता कोठारी जी ने अपनी तरफ़ से करणीदानजी को कहकर बनवाई, वह भी करणीदानजी के न आने से बारेट चालकदानजी को कहकर उनसे अर्ज कराई। वह इस प्रकार है:—

साञ्जलि विनय करों कहाँ उच्च स्वामिपद
कहाँ लघु किंकर की सेवा भुविकंत की।
मैं ओ गिरधारी तेज, डुलह, शिवदान
दास, मोहन बखाने कैसे महर अनन्त की॥
चाकर परम पाले पालते हो पालोहीगे
मालिक चिरायु रहो आशिश अतन्त की।
विरद विचार दीनबंधु भुवपाल प्रभु
पावन की झोंपरी सुदामा बलवंत की॥

सोरठा

मालिक महर प्रमाण वर्णी न धणियाँ बंदगी।
राखी जे महाराण पूरण कृपा बलवंत पर॥

इधर चौक में भगतनियों (वेश्याओं) का नृत्य एवं गायन बैन्ड पर होता रहा। लगभग पौने ग्यारह बजे लक्ष्मीनाथजी पांडे को हुकुम बख्शा और कोठारीजी के दोहिते हरनाथसिंहजी मेहता को सोने के लंगर बख्शे। इसके कुछ देर बाद ड्योढ़ी ऊपर के मकान मे आराम फ़रमाया। कितने ही सरदार पासवान इत्यादि को जगह की कमी होने के कारण पहले ही जीमने का हुकुम बख्शाया। अतः वे सब आम वाले चौक जनानी हिस्से की कुल छतें दरीखाना ड्योढ़ी ऊपर के मकान की छतों पर जिमाये गये। इनके जीम चुकने पर जानेवालों को इत्र पान का स्वागत मैंने किया। इसी प्रकार सब सरदार पासवानों को माजम हरनाथसिहजी महता और मैंने दी। करीब साढ़े ग्यारह बजे दरीखाने के गोखड़े मे गादी तैयार होकर श्रीजी हुजूर का बैठके पर विराजना हुआ। गोखड़े के दरीखाने में करजाली काकाजी लक्ष्मणसिंहजी, शिवरती भाईजी, शिवदानसिंहजी, इनके छोटे भाई हमेरसिंहजी, करजाली कुंवर जगतसिंहजी और अभयसिहजी, इनके सिवाय अन्य ख़ास ख़ास सरदार पासवान चारण कवि आदि

दरीखाने से लेकर ऊपर की छतो तक मे जीमने वैठे । जब तक अरोगना हुआ तब तक कोठारीजी मोडे—तकिया—के पीछे वैठे रहे और ५०) रुपया न्योछावर कर भगतनियो को दिये। ढोलनिये, नगारची आदि भी चौक मे हाजिर थे। वैन्ड भी वजता रहा। श्रीजी हुजूर क अरोग चुकने पर पुन ड्योढी के ऊपर क मकान में पधारना हुआ। वहा कोठारीजी ने श्रीजी हुजूर के चरणारविन्दो मे इत्र धारण कराया। श्रीजी ने निज श्रीहस्त से कोठारीजी के कन्धे पर इत्र फरमाया। सुनहरी वर्क की बीडी वख्शी। इधर पाण्डजी को हुकुम वख्शा सो वे मुझे दरीखाने मे लाये और सोने के लगर[1] वख्शे। व मुझे महिदोत से पहनवा श्रीजी मे ले गये। वहा पर कोठारीजी ने तथा मैंने पाच पाच रुपये से नजराना किया, वह रखाया गया। गिरधारीसिंहजी ने दो रुपये से नजराना किया, सो दुगुणा वख्शा। इसके वाद हम सब ने भोजन किया। कारखान वालों को गम्भीरसिंहजी चौहान ने ६५० रुक्के तक्सीम किये। इसके वाद श्रीजी हुजूर मे राजश्री महक्माखास की पशी हुई और सुख फ़रमाया। तीसरे पहर चार वजे लक्ष्मीनाथजी पाडे ने कोठारीजी क प्रपौत्र मोहनसिंह का नजराना कराया, सो दुगुणा वख्शा। इसके वाद भँवरी दौलतकुमारी, भाणेज हरनाथसिंहजी, सवाईसिंहजी और जोधपुर के कोठारीजी के छोटे जमाई (दामाद) महता कानमलजी के वालको के नजराने कराये गये। यहाँ के जनानी नजराने चाँदी की ताशक मे भतीज कालूमलजी कोठारी आफ़िसर निज खर्च की मारफत करवाया। सो रखाने वालो क रखाये, शेप दुगुणे वख्शे। दो थालो मे हरा मेवा भी नज़र करवाया और हवेली की तरफ से सरोपाव नजर होता है, उसमे पाग, दुपट्टा, अदरग, दानेदार मोठडे का सुनहरी छपमा, चिक्न थान दो तथा पारचे का थान एक था। कठी सरपेच का नुक्ता पाँडजी की ओवरी से रखाया गया। फिर सब का ठडाई आदि से स्वागत किया गया। करीब पौने पाँच वजे श्रीजी हुजूर पोशाक धारण कर ड्योढी ऊपर क मकान से दरीखाने मे पधारे। तब वेदले रावजी नाहरसिंहजी शाम को हाजिर हुए। उन्होंने नजराना तथा न्योछावर की और श्रीजी हुजूर गादी पर विराजे। ठडाई, शराब, खार, भजना सरूदारों में शुरू हुआ। उस समय भगतनियो की घूमर तथा गायन नीचे होता रहा। फिर श्रीजी हुजूर की ओर से हुकुम हुआ सो पाँडेजी ने कोठारीजी को मोतियो की कठी पहनाई। इसक तीन सौ रुपये चित्तौडी सालित थे, ये मिले और असार्फी मोठडे का छपमा मेल पाग दुपट्टा कोठारीजी को वख्शा। इसक वाद गिरधारीसिंह

---

[1] यह दोहा करनीदानजी ने महलों मे जाने पर श्रीजी हुजूर में मालूम किया—

महिप भूपाले की महर मेट्यो गर्ला मिजेन।
भँवर पण वगस्यो भला, त पग सुवरण वेन ॥

जी को प्रसादी मोठड़े का मेल, मुझे कसुमल मेल, दुलहसिंहजी को कसुमल मेल तथा शिवदानसिंहजी को लैहरिया पाग वख्शी । सब ने नज़राना किया, सो कोठारीजी और गिरधारीसिंहजी का रखाया और बाकी को दुगुणा वख्शा । कोठारीजी ने सुनहरी पवित्रा और पुष्पमाला श्रीजी हुजूर में धारण कराई । उनको श्रीजी हुजूर ने चौसर (माला) वख्शी और भी सब को चौसरें तकसीम हुईं । फिर थोड़ी देर में पधारने को फ़रमाया । कोठारीजी ने पचास रुपया लाल कपड़े में बाँध श्रीजी हुजूर के न्योछावर कर भगतनियों को दिये । चौक मे बँधे हुए मीढ़े एवं बकरों का श्रीमानों ने निरीक्षण फ़रमाया । शाम को साढ़े पाँच बजे तामजाम सवार हो पधारने लगे तो चौक में वलाणा घोड़ा टापर पायगा से मंगा नज़र किया सो माफ़ फ़रमाया और दरवाजे बाहर मोटर सवार हो पारसी की दुकान होते हुए महलों में पधार गये । कोठारीजी को दरवाज़े से ही जाने की आज्ञा प्रदान की । गिरधारीसिंहजी, मैं और दुलहसिंहजी महलों तक साथ में गये । वहाँ से साढ़े सात बजे सीख वख्शी । मुझे लंगर वख्शाये सो नेग के २५) रुपये पांडेजी के यहाँ भेजे और पाँच रुपये महिदोत (पटवा) को दिये । पधरावणी के दो दिन पहले फाल्गुन कृष्णा ७ को मुझे एक पारचा (कीमती करीब १५० रुपये का) आँगा बनवाने के लिये भी वख्शा था ।

जब श्रीजी हुजूर का पधारना हवेली हुआ, तब इस माफिक रुपये वख्शाये—

२५) नौकर-चाकरों को
  १) भोयणों ने कलश बंधाया
  १) तम्बोली ने बीड़ी नज़र की
  १) बारी ने पनवाड़ा नज़र किया

१०) बड़े कलश मे
  १) बाड़ी के माली ने छाब नज़र की
  १) महिदोत ने बटवा नज़र किया

जीमन में कुल खांड १७ मन खर्च हुई । खासा रसोड़े के जीमन में ४०) रुपये जमा कराये । बड़े सरदारों के लिये बड़े रसोड़े (भोजन-शाला) से भोजन तैयार होकर आया । उसके १२३।।) एक सौ साढ़े तेईस रुपये जमा कराये गये ।

हवेली के खुरे पर एक सुन्दर दरवाज़ा बना । शुभागमन लगवाया गया था । इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर सुनहरी अक्षरों में कविताएँ लिखकर लगवाई गईं, जो इस प्रकार हैं—

धन्य आज शुभ दिन घड़ी, धन्य आज मो धाम ।
पावन कियो पधारके, रान प्रभू वियराम ॥
धणिया री धणीयाप, पूरण पीढ़ी पाँच सूँ ।
या खाविन्दी आप, चाकर चरणारी शरण ॥

संवत कर ग्रह अंक शशि, फाल्गुन असित सुपक्ष।
निधि तिथि रवि पावन कियो, बलवत इज्जत वक्ष॥

श्रीजी हुजूर के जन्मोत्सव के कारण गोस्वामीजी महाराज उदयपुर पधारे। उनकी भी पधरावणी कोठारीजी ने फाल्गुन कृष्णा १३ को की। त्रयोदशी के दिन गोस्वामीजी महाराज श्री भीमपरमेश्वरजी ठहरे हुए थे। वहाँ पर उन्हें लेने के लिये गिरधारीसिंहजी गये। श्री गोस्वामीजी महाराज वहाँ से हाथी पर सवार हो लवाजमा के साथ कोठारीजी की हवेली पधारे। गोस्वामीजी महाराज के पीछे हाथी पर चँवर करते हुए गिरधारीसिंहजी बैठकर आये। हवेली पधारने पर उनका स्वागत कर कोठारीजी ने मोहर तथा ५) रुपये भेंट किये और सभी ने यथायोग्य भेंट की। शाम को ५०) रुपये का दुशाला धारण कराया और सब साथ वालों को जिमाया। शाम को गोस्वामीजी महाराज ने कोठारीजी तथा हम सब को सरोपाव बख्शे और मोटर सवार हो कैलाशपुरी पधार गये।

कैलाशपुरी के गोस्वामीजी का शुभागमन।

गुणग्राहक, प्रजावत्सल और कृपाशील महाराणा साहब ने कोठारीजी की सेवाओं से प्रसन्न हो देहली दरवाज़े के बाहर इनकी बाडी से मिली हुई तीन बीघा पौने चार बिश्वा ज़मीन संवत् १९९२ के कार्त्तिक में इनायत फ़रमाई थी। इस ज़मीन के अन्दर ही कोठारीजी ने गौओं एवं घाम से तप्त तृषित पशुओं के पानी पीने के लिये संवत् १९९३ के भादों में प्याऊ (पो) बनवाई। किन्तु कहावत है कि—

मूक पशुओं के पानी पीने की प्याऊ बनाने में विघ्न और श्रीमेदपाटेश्वर की अर्ज़ी हुआ।

"श्रेयांसि बहुविघ्नानि।"

अर्थात् अच्छे कामों में अनेक विघ्न होते हैं। पुण्य कार्य करना, यह भी सद्बुद्धि एवं सत्कर्मों का फल है किन्तु ऐसे पुण्यकार्यों का सरलता से बन जाना भी इस कलिकाल में कठिन समस्या है। अतः पौ बन रही थी कि म्युनिसिपैलिटी के तत्कालीन अफ़सर लाला प्यारेलालजी ने उसका कितना एक हिस्सा गिरवा दिया। इसके लिये श्रीजी हुज़ूर में अर्ज़ की तो शाम को (संवत् १९९३ के प्रथम भादों वदी ५ गुरुवार) सैर करने पधारते वक्त उसी तरफ़ पधार मुलाहज़ा फ़रमाने का हुक्म बख्शाया और मुझे भी साथ ले पधारे। प्यारेलालजी को भी मौक़े पर हाजिर रहने की आज्ञा की। पांच बजे ही उधर पधारना हुआ। बाडी के बाहर पौ के पास मोटर में ही करीब आठ नौ मिनट बिराजना रहा। वहां मैंने नज़राना कर बाडी की आली नज़र की। ज़मीन मुलाहज़ा फ़रमाई तो जितनी ज़मीन कोठारीजी को बख्शी गई थी, उसके ही बहुत हद

अन्दर अन्दर पौ वनाई पाई गई। अतः वापस वनवा देने का हुकुम वख्शाया, जिसको जगनिवास से चतुर्भुजजी जेठी ने कारीगर भेज उसे वनवा दिया। इस प्रकार कोठारी जी की पुण्याभिलाषा पूर्ण हुई। इस पौ के निर्माण हो जाने से तृषित एवं घामतप्त मनुष्य एवं पशुओं की आत्माओं को जो शान्ति मिलेगी, उसका अखंड पुण्य श्रीमान् मेदपाटेश्वरों को है, जिन्होंने स्वयं पौ मुलाहज़ा करने का कष्ट फ़रमाया और वापस वनवाने की आज्ञा वख्शी। श्रीमानों के सत्यान्वेषक, न्यायनिष्ठ, सहृदय एवं कोठारीजी पर आदर्श दयालु होने का यह भी एक उदाहरण है।

कोठारीजी का अपूर्व मान।

संवत् १९९३ कार्त्तिक कृष्णा अमावस्या अर्थात् दीपावली के दिन कोठारीजी को ताज़ीम व चैत्र शुक्ला ८ संवत् १९९३ को दरीखाने का बीड़ा वख्श सम्मानित किया और संवत् १९९३ के आश्विन शुक्ला १० को गिरधारीसिंहजी को तथा इसी वर्ष के होली के दिन मुझे सुनहरी माँजा वख्शा। इस प्रकार श्रीमानों ने कोठारीजी और उनके परिवार पर असीम कृपा प्रदर्शित करते हुए गुणग्राहकता, दयालुता तथा सहृदयता का परिचय दिया। ईश्वर उन्हें दीर्घायु करें।

जिस दिन कोठारीजी को ताज़ीम वख्शी, उस दिन श्रीजी हुजूर का विराजना प्रीतमनिवास मे था। शाम के वक्त दीपावली के दरीख़ाने मे पधारते समय प्रीतमनिवास की नाल उतर सूर्य चौपाड़ में पधारे। यहीं पर कोठारीजी को ताज़ीम वख्शी और कोठारीजी ने नज़र निछरावल कर श्रीमानों के चरण वंदन किये। फिर इस अपूर्व कृपा के लिये गिरधारीसिहजी ने और मैने भी श्रीमानों के चरणों मे नज़राना किया।

इसी प्रकार चैत्र शुक्ला ८ संवत् १९९३ को दरीख़ाने के वीड़े का मान वख्श कोठारीजी को सम्मानित किया। इस दिन संध्या समय हाथी घोड़ों के पूजन का दरीख़ाना था। पोशाक धारण कर श्री दरबार दरीखाने मे पधार रहे थे। उस समय प्रीतमनिवास मे इस सम्मान के लिये कोठारीजी ने नज़राना और निछरावल की। गिरधारीसिंहजी उस दिन राजनगर थे। अतः मैने ही नज़राना किया और महियारिया प्रतापदानजी ने निम्न सोरठा श्रीजी हुजूर मे निवेदन किया :—

"वलवंत कीन्हो मान, बीड़ो ताजिम वख्शतां।
नेक पिछाणी राण, चार रईसां चाकरी॥"

इसके अतिरिक्त जब से कोठारीजी के हरनिया की बीमारी रहने लगी, तब से एक वग्घी नित्य कोठारीजी के लिये श्रीजी हुजूर ने तैनात फ़रमा दी और दो मोटरें भी वख्शीं। इसके अलावा छोटी मोटी कई एक कृपाएँ श्रीमानों ने इस घराने पर फ़रमाई है और फ़रमा रहे हैं, जिसके लिये यह वंश चिर ऋणी रहेगा।

ऐसे तो महाजनमात्र किसी न किसी अंश में जैन कहाते ही हैं किन्तु कोठारीजी के घर में शुरू से ही शिव धर्म का इष्ट माना जाता है। कोठारी केशरीसिंहजी से पहले उनके पूर्वजों में विशेष रूप से श्वेताबर मंदिर-मार्गी धर्म प्रचलित था किन्तु केशरीसिंहजी के समय से तो शिव धर्म का पक्का इष्ट है और अब तक बराबर यही इष्ट माने जा रहे हैं।

कोठारीजी का धर्म और इष्ट।

कोठारी केशरीसिंहजी के माफ़िक कोठारीजी भी शिव धर्म के पक्के उपासक थे और अपने बैठने की जगह एक तसवीर लगा रक्खी थी, जिसमें श्री एकलिंगजी तथा सम्मुख दर्शन करते हुए स्वर्गवासी महाराणा स्वरूपसिंहजी और कोठारी केशरीसिंहजी का चित्र है। इसी चित्र के प्रात साय कोठारीजी दर्शन किया करते थे। वर्ष मे दो चार बार श्री कैलाशपुरी दर्शनों के लिए जाया करते और श्री परमेश्वरों में एक हजार रुपये का सोने क पतरड में मडा हुआ एक सुन्दर काच भी वहा भेट किया है। इसके अतिरिक्त छोटी मोटी सेवाएँ श्री परमेश्वरो की किया ही करते। कई दफ़े कैलाशपुरी मे सारी पुरी को भोजन कराया।

गौओ के परमभक्त होने से वहा पर गौओ और नन्दिकेश्वर इत्यादि को लपसी बनवा बडे प्रेम से उन्हे खिलवाते और शिवोपासना किया करते थे। वैसे तो कोठारी केशरीसिंहजी के नगर-निर्वासन का कुल ही समय तथा कोठारी बलवन्तसिंहजी के नगर-निर्वासन का कुछ समय कैलाशपुरी मे व्यतीत होने से वहा के लोगो के साथ भी बडा प्रेम हो गया था और श्री गोस्वामीजी महाराज के स्थान को तो यह अपना गुरुद्वारा ही मानते थ।

मुख्यत शिव के उपासक होते हुए भी कोठारीजी को किसी धर्म से राग-द्वेष न था। धर्म के प्रति इनक विचार बडे ही उन्नत और उदार थे। प्रत्येक धर्म से ये गुण बटोरने की ही खोज में रहते थे। ये किसी भी धर्म या वेश के अध उपासक न थ किन्तु गुणियो और गुणो के उपासक थ। श्रीनाथजी, काकरोली, चारभुजा, [1]श्रीऋषभदेवजी इत्यादि देवस्थानों मे भी ये कभी कभी जाया करते और तन, मन एव धन से भक्तिपूर्वक सेवा व दर्शन करते थे।

जैन साधु अथवा दूसरे साधु सन्यासी वगैरह किसी को भी नमन करने में इन्हें सकोच न होता था। किन्तु यदि उन्हें यह निश्चय हो जाता कि अमुक साधु केवल वेशधारी ही है तो उसके प्रति इनकी एकदम अश्रद्धा हो जाती थी।

---

१ कोठारीजी ने श्री ऋषभदेवजी में एक चाँदी का मेरु कलश भी कीमती करीब १०००) एक हजार रुपया का भेंट किया है, जो वहा सेवा में आता है।

जैनधर्मावलंबी बाईस संप्रदाय के साधुओं के प्रति प्रारंभ से ही इनकी विशेष रूप से श्रद्धा न थी। परन्तु बाईस संप्रदाय के पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज का चातुर्मास सं० १९५३ में उदयपुर में हुआ। यह महात्मा बड़े ही संतोषी, ज्ञानी, वैराग्यवान् और प्रभावशाली थे। इनके चातुर्मास में प्रत्येक जाति तथा प्रत्येक धर्म के हज़ारों मनुष्य इनका व्याख्यान एवं उपदेश श्रवण करने आने लगे और उपकार भी बहुत कुछ हुआ।

जैन के बाईस संप्रदाय के साधुओं से संपर्क।

इनकी प्रशंसा कोठारीजी के कानों तक भी पहुंची किन्तु इनके उपदेश श्रवण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उन दिनों मेवाड़ के प्रधान पद पर भी आप ही थे। अतः आपको अवकाश भी विशेष नहीं था।

चातुर्मास समाप्त होने पर मार्गशीर्ष कृष्णा १ के दिन महाराज श्री विहार कर आहाड़ ग्राम, जो उदयपुर से दो मील की दूरी पर है, वहां पधारे। शाम को अपनी बगीची वहां होने से कोठारीजी भी घूमते घामते वहीं जा निकले। महाराज भी वहीं ठहरे हुए थे। महाराज के पास जाने का विचार किया, किन्तु संकोच खा गये। थोड़ी देर बाद कोठारीजी ने विचारा कि सब साधुओं को एक जैसा समझ लेना ग़लती है और इन महात्मा की इतनी प्रशंसा भी सुनी जाती है तो जाने में हर्ज ही क्या है। अतः इन्होंने महाराज के पास जाने का निश्चय कर लिया और तुरंत सेवा में जा उपस्थित हुए।

कोठारीजी ने संथारा, मैले कुचैले रहना, मुँहपत्ति बांधना इत्यादि कितनी ही शंकाएँ जो इनके मन मे उत्पन्न होती गईं उनके संबंध में महाराज से प्रश्न किये। किन्तु उन सब ही प्रश्नों का कोठारीजी को बहुत ही संतोष-जनक उत्तर मिला और उसी क्षण से इन पूज्य श्री के प्रति इनके मन-मंदिर में श्रद्धा के भाव जम गये। दूसरे दिन फिर ये अपने मित्र व बहनोई महता गोविन्दसिंहजी को साथ लेकर आहाड़ ग्राम में गये। वहां पर कितने ही प्रश्न महाराज से फिर किये, किन्तु उनका भी हृदयंगम और युक्तियुक्त उत्तर मिलने से कोठारीजी की श्रद्धा महाराज और उनके धर्म के तत्त्वों के प्रति विशेष रूप से बढ़ गई।

तत्पश्चात् कई बार पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज तथा इनके युवाचार्य वर्तमान पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के दर्शनों के लिये जहां तक हो सकता एक दूसरे चातुर्मास में कोठारीजी जाया ही करते थे। इन आचार्यों के प्रति इनकी श्रद्धा हो जाने पर भी जिस विषय में कोठारीजी के विचार उनसे न मिलते उन्हें स्पष्ट करने में इन्हें

कभी सकोच नहीं होता था और जब तक प्रत्येक विषय पूर्णतया हृदयगम न हो जाता, तब तक उस बात को मानने के लिये भी वे कभी तैयार नहीं होते थे।

जैन साधुओं में पूज्य श्री श्रीलालजी तथा पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के प्रति कोठारीजी की वैसी ही उच्च दृष्टि थी, जैसी ससारी पुरुषों में कविराजा श्यामलदासजी के प्रति थी। किन्तु कोठारीजी अपने विचारों के इतने पक्के और निडर थे कि हाँ में हाँ मिलाना तो वे कभी सीखे ही न थे। पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के उपदेश में प्राय मृतक-भोजनिषेध का विषय चला करता था, किन्तु कोठारीजी इसमें सहमत न थे। उनका यह कहना था कि अन्नदान जैसा महान् दान और आत्मा को शान्ति पहुचाने वाला दूसरा कार्य नहीं है। मृतक-भोज में कई अनाथ अबलाएँ, विधवा स्त्रियाँ, अपग जाति भाई इत्यादि छोटे मोटे क्षुधा-पीडित व्यक्तियों की तृप्ति होती है जिनको कि सूखी रोटियाँ भी मिलना कठिन हो रहा है। इस जमाने मे पैसा जेब से निकलना बहुत कठिन है और ऐसे अवसरों पर मृतक-भोज के नाम से पैसा खर्च हो ही जाता है। अत ये महाराज श्री के इस उपदेश में प्राय प्रश्न किया करते और महाराज श्री तथा कोठारीजी के मध्य कई बार इस विषय पर चर्चा हुआ करती थी, किन्तु अन्त तक भी वे इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हुए कि यह प्रथा बुरी है। हाँ, अलबत्ता इतना मानने को वे सदा तैयार थे कि जिसकी हैसियत न हो, उसे कभी दूसरों की देखा-देखी अपनी शक्ति के बाहर अपव्यय न करना चाहिये। उदयपुर की महाजन जाति मे यह आवश्यक भी नहीं है कि आर्थिक स्थिति न होते हुए भी किसी व्यक्ति को ऐसे कार्यों के लिये बाध्य किया जाय। यही एक विषय मुख्य कर ऐसा रह गया था, जिस पर महाराज श्री के और इनके मध्य प्राय मतभेद चला करता था।

कोठारीजी के दृढ विचार।

इसी प्रकार कविराजाजी, जिनको कोठारीजी पिता-तुल्य पूज्य-दृष्टि से देखते थे, के साथ किसी विषय पर मतभेद होने से कोठारीजी ने अपने स्पष्ट विचारों को प्रकट करने में कभी सकोच नहीं किया। एक समय किसी मुकदमे मे श्री दरबार ने कविराजाजी और कोठारीजी की राय ली। दोनो के विचारो में मतभेद था, अत दोनों ने अलग अलग राय पेश की। आखिर कोठारीजी की राय पसन्द फरमा वही पास की गई। कोठारीजी को ख्याल हुआ कि शायद कविराजाजी बुरा न मान जायँ, किन्तु अपनी राय मुकद्दमाती मामले में गलत देना और हाँ मे हाँ मिलाना, यह तो मेरे से नहीं हो सकता। बाहिर आने पर कविराजाजी ने कोठारीजी को शाबाशी दी और कहा कि मैं तुम्हें ऐसे ही निर्भय और न्यायतत्पर देखना चाहता हूँ। मुझे आज तुम्हारी इस योग्यता पर बडा ही सतोष हुआ और मैं अपने को धन्य समझता हूँ कि मैं तुम्हें

इतना योग्य बना सका कि तुम्हारी अनुमति उत्तम समझ स्वीकार फरमाई गई। ईश्वर दिनों दिन तुम्हारी उन्नति करे। क्योंकि :—

"सर्वेभ्यो विजयम् इच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराजयम्।"

कविराजाजी के इस कथन से कोठारी जी के हृदय में उनके प्रति श्रद्धा, प्रेम और भक्ति पहले से भी द्विगुणी हो गई। कविराजाजी का आशीर्वाद पूर्णांश में सफल हुआ किन्तु कविराजाजी को कोठारीजी के हरे दिन देखने का विशेष अवसर न मिल सका। कारण सं० १६५१ मे ही उनका देहान्त हो गया था, जब कि कोठारीजी उन्नत अटारी की सीढ़ियों पर जोरों से आगे ही आगे कदम वढ़ा रहे थे।

कोठारीजी का धर्म-युगल और अखण्ड पुण्य।

इस संसार में पति-पत्नी का जोड़ा जो ईश्वर ने नियत किया है, संसारचक्र को चलाने के लिए वड़ा ही आवश्यक है। यह युगल जितना धार्मिक हो, सुयोग्य हो, और एक विचारों वाला हो, उतना ही न केवल सांसारिक वल्कि इस सांसारिक जीवन के साथ साथ अपना जीवन पारमार्थिक वनाने में भी मनुष्य को वड़ी सहायता मिलती है। इससे दोनों ही लोक मे मनुष्य के लिये कल्याण के द्वार खुले रह सकते हैं। जैसे कोठारीजी एक उच्च आत्मा थे, वैसे ही उनकी धर्म-पत्नी भी एक देवी और मंगलमूर्त्ति स्त्री थी। प्रायः संसार में ऐसी सती स्त्रियों का संयोग मिलना किसी मनुष्य के सुकर्मों का ही फल कहा जा सकता है। ईश्वर ने भी पूर्ण कृपा कर ही यह जोड़ी वनाई थी। कोठारीजी की धर्मपत्नी प्रारंभ से ही वड़ी पतिव्रता, भगवद्भक्ता और एक परोपकारिणी गृहलक्ष्मी थी। इनका प्रभाव केवल स्त्रीसमाज में ही नहीं किन्तु मानव समाज में भी इतना वढ़ा-चढ़ा था कि प्रत्येक मनुष्य जो इनके सम्पर्क में आता था, वड़े ही आदर तथा सम्मान की दृष्टि से इनके साथ वर्त्ताव करता था। श्रीमती महाराणी साहिवा श्रीचावड़ीजी की तो इन पर इतनी कृपा थी कि जिसका अनुमान करना सामान्य मनुष्य की वुद्धि के परे है। जिन कामों को करने मे कोठारीजी को भी असफलता रहती, वे कार्य ये सुगमतया करने को उद्यत हो उनमें फलीभूत होती थीं। दो तीन वार श्री वड़े हुजूर को विशेष रूप से खेद हो गया। औषध और भोजन का उपचार भी करवाना श्री दरवार ने स्वीकार नहीं फरमाया। कई लोगों ने अर्ज की। कोठारीजी ने भी अर्ज की, किन्तु स्वीकृति न मिली। अन्त में कोठारणजी ने जाकर श्रीमती महाराणी साहिवा को अर्ज कर वाहर अर्ज करवाई। इनकी प्रार्थना स्वीकार कर औषध और भोजन के लिये तुरन्त ही श्री दरवार ने आज्ञा वख्श दी। इनकी योग्यता तथा वुद्धिमत्ता के लिये तो श्री दरवार कभी कभी कोठारीजी को हँसी में ही फ़रमाया करते थे कि तुम्हारे पास काम ज़्यादा है तो कुछ काम कोठारणजी को दे दिया करो, सो वे कर

दिया करेंगी। पाठक अनुमान कर सकते हैं कि इनकी योग्यता के विषय में श्री बड़े हुजूर तक की कितनी उच्च दृष्टि थी। इस संसार में शान्ति और सुख के साथ नित्य जीवन का व्यतीत होते रहना, यह भी संसार के नियमों के प्रतिकूल है। परिवर्तन मनुष्य-जीवन के साथ लगा हुआ है। अनेक विपत्तियों के झेलने के बाद कोठारीजी को कुछ वर्षों से शान्तिपूर्वक जीवन बिताने के शुभ दिन प्राप्त हुए और कोठारणजी जैसी योग्य धर्मपत्नी के साथ सांसारिक जीवन सुख से बीतने लगा। संसार-क्षेत्र में अब इनकी डगमगाती डोलर सी स्थिति न रही थी, अतः अपनी धर्मपत्नी के साथ सुख की घड़िया कटने लगीं। किन्तु इस सुखी युगल को भी खंडित करने के लिये दुष्ट कराल काल कटिबद्ध हो गया था। पिछले वर्षों में मुसीबतें झेलने से और देशीय रहन-सहन के ढंग इत्यादि ने कोठारणजी के स्वास्थ्य पर पहले ही से बुरा असर डाल दिया था। शरीर दिनों दिन क्षीण होता गया। फलतः सुख के दिनों में हजारों उपचार करने पर भी कोठारणजी का स्वास्थ्य न सँभल सका और सं० १९६४ के वर्ष से कोठारणजी विशेष रूप से बीमार रहने लगीं। होते होते ज्येष्ठ मास में तो ज्वर, श्वास तथा दस्तों की बीमारी ने उग्र रूप धारण कर लिया और कोठारीजी के लिये संसार के सुख रूपी रथ के पहिये के टूटने का समय आ उपस्थित हुआ। ज्येष्ठ शुक्ला ११ निर्जला एकादशी सं० १९६४ वि० को कोठारणजी का स्वर्गवास हो गया और इस प्रकार ईश्वर ने यह जोड़ी असमय में ही खंडित कर दी। विमाता के ताडव नृत्यों का दृश्य कोठारीजी की आखों पर जमा हुआ था, साथ ही पुत्र-प्रेम और संसार की नश्वरता पर विचार करते हुए उन्होंने दूसरा विवाह न कर त्याग एवं दूरदर्शिता का परिचय दिया। कोठारणजी की बीमारी में इन्होंने दो दो हजार रुपये तो अपनी दोनों कन्याओं को दिये। कितना ही धर्म पुण्य किया और ३५००) रुपये धर्म कार्य में निकाले। अपनी धर्मपत्नी की रुग्णावस्था ही में ज्येष्ठ शुक्ला ७ सं० १९६४ को कोठारीजी ने उनका यश तथा पुण्य सदा के लिये स्थिर करने के उद्देश्य से दस हजार इकावन रुपये धर्म कार्य के लिये निकाले और इस प्रकार कुल ही (१३५५१) रुपये की रकम कायम कर यह परमार्थ सीगे में रख इसके ब्याज में यह बंदोबस्त कर दिया कि इसकी आमद से पारमार्थिक कार्य होते रहें और नित्य गरीबों को अन्न, कुत्तों को रोटियाँ, कबूतरों को मक्की, मछलियों को गोलियां आदि जो कोठारीजी के यहा से नित्य दी जाया करती थीं, वे स्थायी एवं विशेष रूप से मिलती रहें और साधु-सन्तों को भी आश्रय मिले। इस प्रकार इस आदर्श युगल ने धर्म कार्य कर अक्षय पुण्य अर्जित किया। कोठारणजी का जन्म सं० १९२१ मृगशिर शुक्ला १४ को हुआ था। इनके पिता का नाम पृथ्वीराजजी और माता का नाम महताब कुंवर था। ये लोढा गोत्र के थे, और जोधपुर के रहने वाले थे।

गंगोद्भव का जीर्णोद्धार।

संवत् १९६७ में उदयपुर से पूर्व की तरफ़ दो मील की दूरी पर आहाड़ नामक ग्राम में गंगोद्भव का कुंड है। यह स्थान बड़ा प्राचीन और पवित्र गंगा का उद्भव स्थान माना जाता है। कई एक ब्राह्मण आदि भी प्रायश्चित्तनिवृत्ति के लिये यहां पर हेमाद्रि आदि के लिये जाया करते हैं। यह कुंड और इसके पास की धर्मशाला सब बिलकुल जीर्ण हो गये थे। इन सब को उद्योग कर कोठारीजी ने पुनः नये बनवा पुनरुद्धार करा दिया। इस कार्य में करीब सत्तर-अस्सी हज़ार रुपयों से कम खर्च न होता, किन्तु स्वयं परिश्रम उठा कोठारीजी ने इस काम की पूरी देख-रेख की। इसके अतिरिक्त कितना ही पुराना पत्थर काम में ले आने से यह सब काम सिर्फ बीस हज़ार रुपयों में ही नया तैयार हो गया। इन बीस हज़ार रुपयों में से ग्यारह हज़ार रुपये तो चंदे से इकट्ठे हुए और बकाया रकम कोठारीजी ने अपने घर से लगाई। यह स्थान बड़ा ही रमणीय और यात्रियों के लिए विश्रामदाता बन गया है। कई एक साधु संत भी समय समय पर यहां आकर आश्रय पाते हैं। कार्त्तिक शुक्ला ११ को यहां पर भीलों का बड़ा मेला होता है और ज्येष्ठ शुक्ला ११ को तो यहां पर हज़ारों नर-नारी गंगोद्भव के कुंड में स्नान कर अपने को पवित्र मानते हैं। जैसी जिसकी आन्तरिक भावना और शुद्ध मनोकामना होती है, ईश्वर भी उसमें पूर्णतया सहायक बन जाता है। कोठारीजी ने जिन शुद्ध भावों से इस स्थान का जीर्णोद्धार कराया मानो उनकी धर्मपत्नी की स्मृति में ही ज्येष्ठ शुक्ला ११ को यहां पर हज़ारों नर-नारी इकट्ठे होते हैं; ऐसा प्रतीत होता है। कारण कि इसी ज्येष्ठ शुक्ला ११ सं० १९६४ को कोठारीजी की धर्मपत्नी ने इस असार संसार से विदा ली और इनका निवास स्थान स्मारक के रूप में बनाया गया, जिसके लिये गंगोद्भव की पवित्र भूमि नितान्त उपयुक्त थी। आपके स्मारक से मिली हुई छोटी सी वाटिका नित्य मधुर पुष्प समीर से अब भी आपके सुयश को सुगंधि द्वारा प्रसारित कर रही है।

शीशारमा में आदिनाथ भगवान् के मंदिर का जीर्णोद्धार

उदयपुर के पश्चिम की तरफ शीशारमा नामक ग्राम है। वहां पर श्री वैद्यनाथ महादेव का एक बड़ा ही प्राचीन मंदिर बना हुआ है। इसके पीछे ही थोड़ी सी दूरी पर श्री आदिनाथ भगवान् के पगलिये की छत्री चार स्तंभों की नीले पत्थर से बनी हुई है। यह छत्री सं० १८८४ के मृगशिर कृष्णा ५ को कोठारीजी के पूर्वज चैनरामजीसुत मोतीरामजी जोतमानजी ने बनाई थी, जिसका लेख चरणपादुका पर खुदा हुआ था। इसे श्री शीतलनाथजी महाराज के उपाश्रय के यतिजी ने कोठारीजी को दिखलाया। यह छत्री जीर्ण हो जाने से कोठारीजी ने राजनगर के सफेद तथा चित्तौड़ के श्याम

पत्थरों से चनवा दी और एक वडा चबूतरा भी इसके नीचे वनवा दिया। इसकी प्रतिष्ठा में दो हजार रुपये लगे तथा पास ही में एक कुआं खुदवाया, जिसमें करीब ग्यारह सौ रुपये खर्च हुए। यह स्थान पहाड के नीचे आ जाने से और भी विशेष सुन्दर और रमणीय बन गया है। समय समय पर यहा लोग दर्शनार्थ आया करते हैं। मुख्यत कार्त्तिक शुक्ला १५ के दिन तो यहा वडा भारी मेला लगता है। श्री भगवान् का पूजन कोठारीजी की तरफ से भी कराया जाता है और श्रावक लोग स्वामिवत्सल भी किया करते हैं। वहीं पर एक छोटी देवरी बनवा श्री शकर का शिवलिङ्ग भी स्थापन किया है।

जो लेख चरणपादुका पर खुदा हुआ है, उसकी नकल यह है —

"स० १८८४ वर्षे मृगसिर वदि ५ गुरो ओसवाल ज्ञातीय वृद्धि शाखा रणाधीरोत ईसभ गोता कोठारी चेनराम सुत मोतीराम जोतमानेन श्री आदिनाथ पादुका कारा पिता श्री तपागच्छ सकल भट्टारक पुरन्दर श्री विजयधर्म सूरिस्वर पट्टालकार श्री विजय-जिनेन्द्रसूरिभि प्रतिष्ठिता।

श्री उदयपुरनगरे श्री समस्तसंघस्य शुभ भवतु।'

सिंघाडे की खेती मेवाड में प्राय होती थी। लेकिन इसमें अत्यधिक जीवहिंसा होने के कारण स० १९६९ वि० मे जब कोठारी जी के सुपुर्द राजश्री महक्माखास के अतिरिक्त आबकारी का काम भी था, श्री वडे हुजूर की सेवा में अर्ज कर सिंघाडे की खेती नये सर न होने का सरक्यूलर (फ़रमान) जारी करवाया।

सिंघाडे की खेती का बद होना।

स० १९७२ में साधुमार्गी जैनसम्प्रदाय के पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज का चातुर्मास उदयपुर मे हुआ। इस चातुर्मास मे महाराज श्री ने महाजन बालकों की शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान देने का प्रभावशाली व्याख्यान दिया। इनके व्याख्यान ने जनता पर वडा प्रभाव डाला। फलत महाजन जाति में धर्मोपदेश एव बालकों मे धार्मिक सस्कार की नीव जमाने का सहारा कायम हो गया और कुछ ही समय में शहर तथा देश-विदेश से चदा होकर रुपया इकट्ठा होने पर जैनपाठशाला के नाम से मदरसा कायम किया गया। इसके साथ बोर्डिंग भी रक्खा गया और स० १९७६ से तो बहुत ही उत्तमता से इसका कार्य चलने लग गया। पिछले वर्षों से पाठशाला की आर्थिक स्थिति कमजोर हो रही है और यदि यही स्थिति बनी रही तो पाठशाला का चलना भी कठिन हो जायगा। इस पाठशाला के स्थापित होने में मुख्य हाथ कोठारीजी का रहा है। दस

जैनपाठशाला की स्थापना।

भाल भी आप ही के जिम्मे रक्खी गई है। समय समय पर इसके प्रधानत्व के लिये भी आप ही का चुनाव हुआ और इस पाठशाला के स्थापित होने से ये सं० १९७६ से दस रुपये मासिक चन्दा देते रहे हैं। इस पाठशाला का चन्दा एकत्रित करने में रत्नलाल जी महता ने भी बहुत कुछ प्रयत्न किया था।

तपगच्छ के श्री पूज्यजी की पधरावणी।

संवत् १९७६ के ज्येष्ठ मास में तपगच्छ के श्री आचार्यजी महाराज श्री चन्द्रविजयसूरिजी यहां आये और सं० १९७७ का चातुर्मास भी यहीं किया। इस अवसर पर इनकी पधरावणी कोठारीजी ने अपनी हवेली पर की और श्री आचार्यजी के नव अंगों का पूजन कर सोने के फूल चढ़ाये। इसमें करीव साढ़े चार सौ रुपये खर्च हुए और चातुर्मास के खर्चे के चन्दे में भी दो सौ रुपये दिये। श्री आचार्यजी महाराज ने गुजरात में गाँव मंगरवाड में जहाँ पर श्री मणिभद्रजी का मन्दिर है, एक धर्मशाला वनवाई। उसके चन्दे में भी कोठारीजी ने ढाई सौ रुपये दिये। यह श्री आचार्यजी यति थे। इनकी उम्र सिर्फ़ २६ वर्ष की ही थी। जोधपुर इलाके के गाँव चापासनी के ये रहने वाले थे और जाति के ओसवाल महाजन थे। इस गच्छ मे आचार्य ओसवाल ही होते आये हैं। जिस प्रकार आज कल कई एक साधु सिर्फ़ वेषधारी ही होते हैं, वैसे ये नहीं थे। ये एक सद्गुणी महात्मा थे। इन्होंने सिर्फ़ नौ वर्ष की उम्र में ही दीक्षा ग्रहण की और अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया। ये संस्कृत और प्राकृत के अच्छे ज्ञाता, विद्वान्, ज्ञानी, सद्गुणी, संतोषी, निर्लोभी और शांत प्रकृति के संयमी यति थे। परिग्रहधारी यतियों में यह परम त्यागी थे क्योंकि आर्थिक एवं वाह्याडम्बर होते हुए त्याग के ऐसे अनुपम गुण विरले महात्माओं में ही पाये जा सकते हैं। यदि इनकी आयु लम्बी होती तो हज़ारों प्राणियों का उपकार होने की आशा थी, किन्तु इस कलिकाल में ऐसे महात्मा का समागम वड़ा कठिन है। अतः एक वर्ष वाद ही सं० १९७८ मे गाँव खोडाला इलाके जोधपुर मे सेवा पूजन करते हुए सिर्फ़ २७ वर्ष की अवस्था में ही इन वालब्रह्मचारी महात्मा का स्वर्गवास हो गया। ऐसे महात्मा के असमय में स्वर्गवासी हो जाने से कोठारीजी को भी वड़ा शोक हुआ।

जैन साध्वीजी का विलक्षण संथारा और सिंह को अभयदान।

संवत् १९७६ के वर्ष वाईस संप्रदाय की आर्याजी सती-साध्वी श्री राजकुँवरजी महाराज का यहाँ चातुर्मास हुआ। ये वड़ी ही तपस्विनी, शांत और संतोषी आर्या थीं। इनकी वीमारी वढ़ने पर इन्हें दर्शन देने के लिये पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज, जो उस समय यहाँ से सुदूर प्रान्त में विचर रहे थे, पधारे। उस समय श्री आर्याजी ने संथारा कर लिया था। पूज्य श्री उन्हें दर्शन देने प्रायः नित्य ही जाया करते और

उनकी कुशल पूछा करते थे। एक दिन पूज्य श्री के कुशल-समाचार पूछने पर आर्या जी ने निम्न दोहा निवेदन किया—

दोहा

मरने से जग डरत है, मम मन वहु आनन्द।
कद मरसूँ कद भेंटसूँ, पूरण　　परमानन्द॥

इन आर्याजी के प्रति कोठारीजी की भी वडी ही श्रद्धा तथा भक्ति थी और वे भी इनके दर्शन करने प्राय जाया करते थे। एक दिन आर्याजी ने कोठारीजी को कहा कि श्री दरवार मे अर्ज कर एक सिंह को अभयदान दिलाया जाय। एक दो दिन तो कोठारीजी ने श्रीजी हुजूर मे अर्ज नहीं की और इसी विचार में रहे कि यह अर्ज कैसे की जाय। सिंह के न तो कान मे कडी डाली जा सकती है, न कोई खास चिह्न ही किया जा सकता है। सिंह एक जगल से दूसरे जगल मे चला जाय तो यह भी पता नहीं पड सकता कि यह वही सिंह हे, जिसे अभयदान दिया गया है। किन्तु फिर भी कोठारीजी ने विचारा कि इन साध्वी सती ने न जाने किस आशय से अपने अतिम समय मे यह प्रकट किया है, एक वार अर्ज तो कर ही देना चाहिये। अत उन्होने प्रथम आर्याजी से ही पूछा कि सिंह को अभयदान कैसे दिया जा सकता है, जिस पर आर्याजी ने कहा कि मेरा मतलव सिर्फ इतना ही है कि एक वार विलकुल गोली के वार मे सिंह आ जाय तो उसे नहीं मारा जावे। कोठारीजी ने आर्याजी का विचार श्रीजी हुजूर मे अर्ज किया। इस पर श्रीजी हुजूर ने आर्याजी का पूरा हाल दरयाफत फरमा उनके कठिन व्रत की प्रशसा की और आर्याजी का विचार भी स्वीकार फरमाया। इसके वाद जव श्रावण कृष्णा १० स० १९७६ वि० को आर्याजी का देहान्त हो गया तो मालूम होने पर श्री दरवार ने भी इनकी वहुत प्रशसा की और वर्ष मे कई वार कोठारीजी को फरमाया करते कि आर्याजी ने तुम्हे कहा था, वह सिंह का अभयदान अभी वाकी है। इसके चार-पाच वर्ष वाद एक दिन श्री दरवार शिकार के लिये पधारे। तव ठीक गोली के निशान मे मूल के नीचे एक सुनहरी सिंह, एक सिंहिनी और दो उसके वच्चे धीरे धीरे ठहरते ठहरते जा रहे थे। उन पर श्री दरवार ने निशाना ताका लेकिन गोली न चलाई। शिकार सम्मुख आने पर उसे छोड देना और मन को रोकना यह कितना कठिन तथा दृढ-प्रतिज्ञ महापुरुषो का कार्य है। इसकी कठिनता का अच्छे अच्छे शिकारी ही अनुमान कर सकते हैं। श्री दरवार के साथ वालो को भी वडी उत्सुकता हुई और कई वार गोली चलाने के लिये अर्ज भी की लेकिन श्री दरवार ने वार वार निशाना ताकते हुए भी गोली न चलाई और शिकार को चला जाने

दिया। इस प्रकार पांच वर्ष बाद भी आर्याजी के विचार को याद रखते हुए उसको पूरा किया। इसके कुछ महीनों बाद गिरधारीसिंहजी को फ़रमाया कि कोठारीजी ने मुझे कहा था, वह आर्याजी का सिंह का अभयदान तो अभी बाकी ही है। इस पर गिरधारीसिंहजी ने अर्ज की कि एक ही नहीं बल्कि चार जीवों को शिकार में अभयदान बख्शा जा चुका है। इस पर फ़रमाया कि शायद हुआ हो। ऐसे प्रतिज्ञा के पक्के और उसको पूरा करने वाले महापुरुष ही ऐसे प्रश्नों के आन्तरिक मर्म को समझने में समर्थ हो सकते हैं।

कोठारीजी का मध्यस्थ बनाया जाना।

बाईस संप्रदाय के साधुओं में पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज एवं पूज्य श्री मन्नालालजी महाराज में दो संप्रदाय हो गये थे। सं० १९७७ में इनका मिलाप अजमेर में हुआ। वहां कोठारीजी भी गये। दोनों संप्रदायों की ओर से दो दो मध्यस्थ नियत किये गये। इसमें पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज ने कोठारीजी और बीकानेर के महाराव बुधसिंहजी महता को मध्यस्थ चुना और दूसरी ओर से देहली के लाला गोकुलचन्द्रजी एवं अजमेर के पीरुलालजी मध्यस्थ नियत हुए। किन्तु अन्त में वहां समझौता न हुआ।

हितेच्छु श्रावक मंडल की स्थापना।

बारह पंथी साधुओं में पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज बड़े ही सद्गुणी आचार्य हो गये हैं, जिनका वर्णन समय समय पर किया जा चुका है। इन्हीं आचार्य श्री के शिष्य पूज्यजी महाराज श्री जवाहरलालजी के दर्शनार्थ कोठारीजी सं० १९७८ में रतलाम गये। वहां पर बहुत जगह के श्रावक इकट्ठे हुए और इस संप्रदाय का नाम चिरस्थायी कर परोपकार तथा सुकार्यों के हेतु सब की सम्मति से श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के संप्रदाय का हितेच्छु श्रावक मंडल स्थापित किया। इस फंड के चंदे में एक हजार रुपये कलदार सं० १९७८ मे ही कोठारीजी ने भी दान मे दिये और मंडल की बैठक के सभापति भी श्रीसंघ ने आग्रह कर आप ही को चुना।

शुद्ध शक्कर की दुकान।

उदयपुर शहर मे मोरस तथा पेच की अशुद्ध शक्कर आने लग गई थी। इनमें कई एक अशुद्ध चीजें मिश्रित होने से धर्मरक्षा के हेतु कोठारीजी ने उद्योग कर ओसवाल बड़े साजनों का यह जाति ठहराव कराया कि ओसवालों के पंचायती नोहरे मे शुद्ध देशी बनारस खांड के अतिरिक्त दूसरी शक्कर न आने पावे। किन्तु यह कठिन प्रश्न आ उपस्थित हुआ कि बनारस खांड यहां पर उपलब्ध होती रहने का प्रबन्ध कौन और कैसे करे।

कोठारीजी अग्रगण्य हुए और स० १९७९ के आश्विन कृष्णा ५ को बनारसी शक्कर की एक पचायती दुकान अलग कायम करवा दी। इसकी देख-रेख सब कोठारीजी के अधीन रही। इस दुकान मे कई लोगो ने रकम बतौर हिस्सेदारो के दी और इस प्रकार शुद्ध शक्कर मिलने की सुगमता हो गई। नोहरे के भोजन क अतिरिक्त प्रत्येक जाति के नागरिक भी यहा से शुद्ध शक्कर खरीद अपना धर्म निभा सके, ऐसी व्यवस्था कर दी गई। किन्तु इन वर्षों मे कलदार रुपयो का भाव महँगा रहने और मेवाड में शक्कर के दो एक दूसरे कारखाने खुल जाने तथा यह शक्कर कुछ महँगी मिलने से लोगो ने खरीदना कम कर दिया। अत इसकी आवश्यकता न समझ स० १९९१ मे दुकान का काम भी बद कर दिया गया। किन्तु उदयपुर मे ओसवालों के पचायती नोहरे में अब भी यही शुद्ध देशी बनारसी शक्कर काम मे लाई जाती है।

घाटकोपर जीवदया मडल को फड में दान।

स० १९८० मे पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज का चातुर्मास बबई क निकटवर्ती ग्राम घाटकोपर मे हुआ। कोठारीजी भी दर्शनार्थ गये। वार्षिक बैठक के सभापति भी वहा पर श्रीसघ ने आप ही को चुना। बबई और घाटकोपर के बीच मे बान्दरा और कुरला नामी गाँवों क कत्लखान प्रसिद्ध हैं। वहा पर प्रति वर्ष हज़ारों गायें, भैंसे कटती हैं। उन्हे बचाने के लिये पूज्य श्री ने विविध प्रकार से अपनी ओजस्वी और प्रभावशाली भाषा मे उपदेश दिया। फलत वहा के और दूसरे शहरो के धनी दानी व्यक्तियों ने चदा देकर इन मूक पशुओं की रक्षा के हेतु डेढ लाख रुपये का चदा इकट्ठा कर लिया। इसमें ५०१) रुपये कलदार कोठारीजी ने भी दिये और कुछ पशुओं को बचाकर उदयपुर भी लाये। इस सस्था का कार्य अब भी सतोषजनक चल रहा है और कई एक धनी दानी गृहस्थ इन मूक पशुओं की रक्षा करते हुए अखड पुण्य अर्जित करने के साथ साथ अपना कर्तव्य भी बजा रहे हैं, जो धन्यवाद के पात्र हैं।

गोरक्षा।

सवत् १९८६ के वर्ष बीकानेर प्रान्त मे अच्छी अच्छी गौएँ दुर्भिक्ष के कारण भूखों रह-रहकर मरने लगीं और कसाइयो के हाथ दो-दो रुपयो मे बिकने लगीं। कोठारीजी—जो गौओ क अनन्य भक्त थे—को मालूम होते ही उन्हे इन गौओं के बचाने की फ़िक्र आ लगी और श्री बैकुठवासी बडे हुजूर श्री फ़तहसिंहजी से अर्ज की तो दो हज़ार रुपयों की गौएँ श्रीजी हुजूर ने खरीदने का हुकुम बख्शा। इस पर बहुत सी गौएँ कोठारीजी ने बीकानेर से मँगाई। कितनी एक तो इन्होंने स्वय रक्खीं अथवा दान मे दीं, कुछ लोगों ने भी खरीदीं। इस जमाने में गौओ के भक्त विरले महापुरुष ही पाये जात हैं। किन्तु मेद-

पाठेश्वर सच्चे गौओं और ब्राह्मणों के प्रतिपालक हैं। गौएँ यहाँ आ जाने पर स्वयं श्रीजी हुजूर नाहरमगरे पधारे। गिरधारीसिंहजी उन दिनों गिरवा के हाकिम थे। वे भी साथ गये और श्रीजी हुजूर ने गौओं के झुंड के वीच में घूम-घूमकर उनका अवलोकन किया। मेदपाठेश्वर के दर्शनों से गौएँ भी ऐसी मुग्ध होकर चुपचाप खड़ी रहीं, मानों वे उनके रक्षक के शरण ही में पहुँच गई हों, इसका उन्हें भी ज्ञान हो। इनमें से सौ गौएँ श्री दरवार ने निकट के ग्रामों के ब्राह्मणों को, जो उत्तमतया उनका पालन-पोषण कर सकें, दान कीं। वाकी वेची गई। लेकिन फिर भी कितनी ही गौएँ वच गईं और विक न सकीं। इतने मे ही श्री वड़े हुजूर का स्वर्गवास हो गया, किन्तु श्रीमान् पितृ-भक्त, गौ-प्रतिपालक, दानवीर, वर्त्तमान मेदपाठेश्वर ने दो हज़ार रुपये जिसके लिये स्वर्गीय महाराणा साहव ने फ़रमाया था, वही नहीं वल्कि कुल कीमत के चार हज़ार रुपये ही वख्शते हुए गौरक्षा, उदारता एवं दान-शीलता का परिचय दिया। वर्त्तमान समय में ऐसे गोरक्षक नरेश विरले ही दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हीं गौओं में से दो सुन्दर वछड़े जो कसाइयों के हाथ पड़ चुके थे, उनको भी कोठारीजी ने छुड़ा मँगाया और कई महीनों तक अपनी हवेली में ही रक्खा। वाद में करीव दो या तीन वर्ष पीछे एक वछड़ा जो सफ़ेद रंग का था, वह तो वीमार होकर मर गया और काले रंग का वछड़ा कोठारीजी ने श्री एकलिंगेश्वर मे भेंट कर दिया, जो अव भी मौजूद है। इसकी खुराक के लिये वहीं अपने निजी सदाव्रत से ही प्रवन्ध कर दिया है।

शुद्ध वस्त्रप्रचार।

संवत् १९८७ में पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज का शुद्ध वस्त्र पहनने पर प्रभावशाली उपदेश उदयपुर में हुआ और उन्होंने विदेशी वस्त्रों के प्रयोग से देश के धननाश इत्यादि कई एक लाभालाभ जनता को समझाये। साथ ही यहां की विधवाओं की करुण दशा का चित्र भी जनता के सामने रक्खा और उपदेश किया कि यदि प्रत्येक घर में एक एक रेंटिया चलाने वाली वाई भी हो जाय तो कितना उपकार हो सकता है और अनाथ विधवाओं की जीविका का कैसा सुगम मार्ग खुल सकता है। उन दिनों उस उपदेश का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा और कोठारीजी के विशेष उद्यम से सैकड़ों चरख़े यहाँ पर बनवा लिये गये और समूल्य एवं अमूल्य भी कई स्त्रियों को दिये। कुछ दिनों इसका सदुपयोग भी हुआ और प्रचार जारी रहा, जिसके लाभ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगे। किन्तु इस कलियुग में मनुष्यों को सुख से शान्तिप्रद जीविका उपार्जन करना भाग्य में बदा ही नहीं है। अतः थोड़े ही दिनों मे यह चरखे का काम जो ज़ोरों से शुरू हुआ था, पुनः शिथिल हो गया। यहाँ की जनता और महाजन जाति, जिनकी स्त्रियां वाहर मज़दूरी इत्यादि से जीविका उपार्जन कर्म नहीं करती हैं, यदि इस हुनर पर लग जातीं तो आजकल

की सी करुण एव शोचनीय दशा यहा की अवलाओ की दृष्टिगोचर न होती । किन्तु जब दिन उल्टे होते हैं तब श्रेष्ठ मार्ग का अवलवन नहीं होता । बुद्धि विचलित हो जाती है ।

मडल एव समाज सेवा

जैनसमाज और मुख्यत स्वर्गस्थ पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज एव इनके पाटानुपाट पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज के प्रति कोठारी जी की श्रद्धा एव भक्ति विशेष होने क कारण प्राय यह दोनो पूज्य श्री के सत्समागम का केवलमात्र लाभ ही नहीं लिया करते थे, किन्तु सामाजिक सेवाओ मे भी मुख्य हाथ वटाया करते थे । पूज्य श्री के दर्शनो के अतिरिक्त पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज क हितेच्छु मडल की कई एक वार्षिक वैठको मे भी आप सम्मिलित होते रहत थ । स० १९७८ मे रतलाम, स० १९८० घाटकोपर, स० १९८२ रतलाम, स० १९८५ सरदार शहर, स० १९८७ बीकानेर, स० १९९० जावद, स० १९९१ रतलाम, स० १९९२ रतलाम, और स० १९९४ में जामनगर में मडल की वार्षिक वैठको मे भी आप सम्मिलित हुए । प्राय श्रीसघ आपको सभापति का स्थान ग्रहण करने के लिये वाध्य किया करता, किन्तु आप अपनी वृद्धावस्था एव अशक्तता के कारण इन्कार कर दिया करते थे । फिर भी श्रीसघ के विशेष आग्रह होने से स० १९८२, १९८५, १९९१ एव अन्तिम वैठक स० १९९४ में सभापति का स्थान आप ही को सुशोभित करना पडा । इसके अतिरिक्त स० १९९० में अजमेर में वृहत् एव प्रसिद्ध साधुसम्मेलन हुआ । उसमे भी आप सम्मिलित हुए । इस सम्प्रदाय के पूज्य श्री एव स्थान स्थान के श्रीसघ मुख्यत जिन्हें भी आपके परिचय का सुअवसर मिला, उनकी आपके प्रति प्रेम की छाप जमती ही गई और प्रत्येक श्रीसघ आपका पूर्ण आदर एव सम्मान करता रहा ।

राजमातेश्वरी का अखड पुण्य और कोठारी जी री अर्ज

श्रीमान् महाराणा जी श्री फतहसिंह जी की महाराणी साहिवा श्रीमती माँजी साहिवा श्री चावडी जी ने एक लाख रुपये परमार्थ में निकालने की इच्छा कोठारीजी से प्रकट कराई और फ़रमाया कि वल्लभकुल के मन्दिर या जगदीश वगैरह मे कहीं पर ऐसा प्रवध सोचो कि इस रकम क व्याज से श्री ठाकुर जी क भोग लगा करे या कहीं कोई नया मन्दिर वनवा दें । इस पर कोठारी जी ने अर्ज कराई कि मेवाड में मन्दिर पहले ही वहुत वने हुए हैं और फुटकर तौर पर सामग्री अरोगाने में भी कोई विशेष लाभ नहीं है । मेरी समझ मे तो ऐसा आता है कि अगर इच्छा हो तो कुछ आदमियों के लिये तो रोजाना पक्वान्न का जीमन वनकर श्री ठाकुरजी के भोग लग एक आदमी खाय उतना पुजारी को मिल, वकाया पात्र साधु अभ्यागत और ब्राह्मणों को जीमाया जावे

और कुछ पेटिये रोज़ाना ब्राह्मणों को दिलाये जावें। सामग्री का भोग श्री जगदीश के लगा करे, जिससे भूखे प्यासे क्षुधातुर प्राणियों को शान्ति प्राप्त हो और श्रीमती मातेश्वरी का अखंड पुण्य सदा के लिये कायम रहे। यह तजवीज़ श्रीमती मॉजी साहिवा ने भी बहुत पसन्द फ़रमाई और इसी माफ़िक इसका प्रवन्ध होकर इसका सब इन्तज़ाम कोठारीजी की ही देख-रेख में कर दिया गया। कोठारीजी की उत्तम व्यवस्था के कारण इसमें तीस-इकतीस मनुष्यों के पेट भरने का उपाय हो गया और नित्य श्री ठाकुरजी के भोग लगकर गरीव अभ्यागत साधु ब्राह्मण आदि को अन्नदान मिल रहा है। इस प्रकार श्रीमती माँजी साहिवा ने यह अखंड पुण्य कर सदा के लिये अपनी कीर्त्ति को अमर किया है। इसका प्रवन्ध श्रीमती माँजी साहिवा श्री चावड़ीजी के स्वर्गवास के पश्चात् देवस्थान के अधीन कर दिया गया है।

फ़तहभूपाल विद्यालय की स्थापना।

आरंभ से ही मेदपाठेश्वर यहां पर ऐसे पुण्यवान् एवं दानवीर होते आये हैं कि उन्होंने सैकड़ों ही ग्राम, भूमि इत्यादि साधु संत (ठिकाणाधारी महन्त) और ब्राह्मणों को समय समय पर दान में दी हैं। किन्तु इस समय वैसे चरित्रशील ब्राह्मण अथवा संत महन्त विशेष रूप से न रहने से उस द्रव्य का दुरुपयोग होने लगा। इसके लिये कोठारीजी की हार्दिक इच्छा थी कि ऐसे संत महन्तों के लिये धार्मिक शिक्षा प्राप्त करना और उपदेश देना अनिवार्य कर दिया जाय। इसी प्रकार ब्राह्मणों के वालकों के लिये भी यह शिक्षा अनिवार्य की जाय ताकि इस कलिकाल में भी धर्म का स्वरूप दृष्टिगोचर होते हुए भावी ब्राह्मणपुत्र अथवा संत महन्त भावी जनता के लिये पूजा के पात्र वन सकें और अपना तथा देश का कल्याण करने में सहायक हो सकें। इसी आशय को लेकर कोठारीजी ने श्रीजी हुजूर में अर्ज की। इसकी पूर्णांश मे सफलता तो न हुई किन्तु श्रीजी हुजूर ने उदारता, धर्मशीलता, एवं विद्याप्रेम प्रदर्शित फ़रमाते हुए एक स्कूल की स्थापना फ़रमाई और इस स्कूल का नाम 'फ़तहभूपाल ब्रह्मविद्यालय' रक्खा जाकर ब्राह्मण वालकों के लिये संस्कृत की उच्च शिक्षा का प्रवन्ध किया गया और यहां पर संस्कृत में आचार्य तक की शिक्षा दी जाने लगी। इसकी देख-रेख भी कोठारीजी के अधीन की गई और दरभंगा प्रान्त के संस्कृत के अच्छे विद्वान् सदाचारी और सुयोग्य अध्यापक पंडित त्रिलोकीनाथजी मिश्र को बुलाकर इसका मुख्य अध्यापक नियुक्त किया। काम जम जाने पर कुछ दिनों वाद ता० ६।१।३१ से इसका प्रवंध भी डाइरेक्टर आफ़ पवलिक इन्स्ट्रक्शन के अधीन कर दिया गया। लेकिन कुछ समय वाद मुख्याध्यापक त्रिलोकीनाथजी और कर्मचारियों के मध्य न पटने से वे यहां से अपने देश को चले गये।

कोठारीजी के धार्मिक जीवन के विषय को समाप्त करते करते सहसा एक कवि का वाक्य याद आ जाता है—

जाको राखे सॉइया, मारि सके नहिं कोय।
बाल न बॉका करि सके, जो जग वैरी होय॥

इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण पाठको के सम्मुख रख देना अप्रासगिक न होगा।

श्रीमान् मेदपाठेश्वरो—वर्तमान महाराणा साहब—के गद्दी विराजने के थोडे ही दिनो बाद का जिक्र है कि गुलाबबाग मे चिडीखाने सिंह इत्यादि हिंसक पशुओ के खाद्य के लिये बकरे, मींढे इत्यादि मारे जाते हैं। एक दिन मारे जाने वाले जानवरो मे से एक मींढा (मेढा) खडा था और बेचारा अपने जीवन के अतिम क्षण गिन रहा था। उसे मारने को ज्यो ही पकडा कि वह छुडाकर एकदम भाग गया और माछला मगरा नामी पास ही के पहाड पर चढ गया। इसी पहाड मे एक चीता—अदवेसरा—रहता था। लेकिन उसके चगुल से भी इसे परमात्मा ने बचाया। यही मींढा इस मगरे से उतर दूद तलाई नामी तालाब में चला गया। इसमे प्राय मगर इत्यादि पानी के हिंसक जानवर विशेष रूप से रहते हैं। लेकिन उनसे भी बचता हुआ पार हो गया और थोडी दूर सडक पर जा पुन: तालाब मे गिरा और सादीनाथजी साधु की धूणी पर जा निकला। वहा से बाकी नाम के पहाड पर चढ गया और करीब एक सप्ताह तक इसी पहाड मे रहा। इसी पर्वत में एक चीता रहता था किन्तु इस मींढे की शिकार उसके हाथ न लगी। योगानुयोग इसी चीते की शिकार के लिये श्रीजी हुजूर का पधारना इसी मगरे मे हुआ। रेजिडन्ट साहब भी साथ थे। शिकार मे यही मींढा निकल आया। प्रत्येक ही को शिकार मे एक अजनबी जानवर देख सहसा आश्चर्य हुआ। इतने ही में चीता भी निकल आया और इस मींढे पर लपका। ज्यों ही यह मींढे को पकडने को था कि एकाएक गोली लगी और चीता वहीं रह गया। इस प्रकार कराल काल के पजे से मींढा फिर भी बच गया। इसे पकडवाने की कोशिश की गई लेकिन हाथ न आया और एक नोकरिये के टक्कर लगाकर भाग गया। दूसरे दिन दयानिधि मेदपाठेश्वरों ने उसे पकडने को बीस-तीस नोकरिये भेजे और वह मींढा पकड लिया गया। वहा से लाने पर मुलाहजा फ़रमा इसे कोठारीजी की हवेली भेजाया और हुकुम बख्शाया कि इसे कोठारीजी के यहा भेज दो, वहा बडे आराम से रहेगा। अत कोठारीजी के यहा आन पर करीब सात-आठ वर्ष हो चुके, यहीं पर है और इसकी कोठारीजी ने पूरी हिफ़ाजत कर रक्खी है। वर्तमान महाराणा साहब की स० १९९२ मे हवेली पधरावणी हुई और स० १९९४ मे कोठारीजी की आरामपुरसी के लिये पधारना हुआ तब भी इसे याद

रख मुलाहज़ा फ़रमाया। श्री मेदपाठेश्वरों की दया एवं करुणा का यह भी एक उदाहरण है।

कोठारीजी जीवरक्षा के पूरे पक्षपाती थे और मोर, कवूतर, मच्छी इत्यादि अनेकों जीवरक्षा के कार्यों में इनका पूरा उद्योग रहता था।

इसी विषय में कोठारीजी की अन्तिम वीमारी में नन्ददास वैरागी ने एक सुन्दर कविता वनाई, वह नीचे उद्धृत की जाती है—

स्थायी

राम रखै तिहि मारि सके को, कालहु के मुख तैं गहि कारे।

अन्तरा

वैरी प्रवल होय कोउ कैसो, अपनो वल कर पचि पचि हारे।
कृतयुग रक्षा कीन्ह हरी ने, मंजारी के वाल उवारे॥१॥

हिरण्यकशिपू क्रोधित ह्वैके, खड्ग हाथ दूतन ललकारे।
मारो जा प्रहलाद तुरतही, देर न ह्वै सुनु वचन हमारे॥२॥

गिरितैं पटकि गयँद छुड़ायो, सर्पन के खोलेजु पिटारे।
अग्नि माँहि ते वैठी होली, दग्ध करन तव कीन विचारे॥३॥

वचि गये भक्त जरी खुद होरी, सिर पर खरे वचावन हारे।
जल में पटक्यो जाय सिपाहिन, त्वरितहि प्रभु ने दियो निकारे॥४॥

जव लै खड्ग मारिवे धायो, मैं देखूँ अव कौन उवारे।
तवै वचाय अग्नि जलतैं राख्यो, गिरि गयँद तैं राखन हारे॥५॥

सो ही रक्षा करि है मेरी, वचन विनय प्रहलाद उचारे।
नर हरि तवै खंभते प्रकट्यो, हिरणकशिपू उदर विदारे॥६॥

मख की रक्षा किय त्रेता में, अहल्यादि कइ भक्त उवारे।
द्वापर रक्षा की द्रुपदा की, चीर वढ़ायो नन्ददुलारे॥७॥

टींटोडी के वाल वचाये, गज की घंटा महि तल डारे।
वेर अनेक करी रक्षा तुम, निज भक्तों के काज सुधारे॥८॥

कलियुग करुणा सुनी मेष की, प्रान वचावन आप पधारे।
सुनो वड़ापन करुणानिधि को, तुच्छ-जीव हित हुवै सहारे॥९॥

इक दिन एक कसाई घरतें, नव मेषन को वार निकारे।
लैके चल्यौ सिंह खज खातिर, तहाँ गयो जहँ नित प्रत मारे ॥१०॥

छुरा लेय मूली गाजर ज्यों, काटि कसाई सवन संहारे।
समय परे की मेष वीनती, मन में प्रभुहि पुकारे ॥११॥

कान पकरि इतने में ले आगे, झटका करिवे हाथ पसारे।
त्वरितहि प्रभु ने ये मति दीन्ही, चमकि भग्यो वह वारे ॥१२॥

पकरो पकरो करत रहे सव, चल्यो जाय तव मच्छु पहारे।
छोड़े कौन गरीव मेड को, पकरन को दौरे दस वारे ॥१३॥

हल्ला करि पर्वत पर पूगे, आगे मेख मनुज सव लारे।
विकल पर्यौ तव जाय दुखारी, दूध तलाई मझारे ॥१४॥

सव मिल कौतुक देखन लागे, मींढो निकस्यो मोखा वारे।
जलमय भूमी देखी चहुँठाँ, कित जाऊँ अव मैं मनहि विचारे ॥१५॥

हिंसक जीव जहाँ वहु घातक, मगरमच्छ लागे कइ लारे।
रक्षा करो अवै रघुनन्दन, दीनवधु है विरद तिहारे ॥१६॥

आगे भक्त अनेक उवारे, कीजै रक्षा मेष पुकारे।
हरे वृक्ष भू हरि हरि देखी, धीरज तव कछु धारे ॥१७॥

राम राम कहि वाहिर निकस्यो, आय तलाई किनारे।
रोम रोम काँपत मींढे को, धूज रह्यो तन ठड के मारे ॥१८॥

देखी धूप शान्ति तव आई, मिटी थकान मिटे दुख सारे।
चरतो रह्यो सवहि वन माँही, कर्मन की गति टरे न टारे ॥१९॥

रहे सिंह तहँ अति वल ऐको, पशुन मारि वह करत अहारे।
सुनिके मेष गर्जना सिंह की, चकित डर्यो वह भय के मारे ॥२०॥

कीन पुकार मेष फिर प्रभु को, हा हा नाथ रचा रे।
गज की अरज सुनी करुणानिधि, तुरतहि नगे पाय सिधारे ॥२१॥

नरसी की हुंडी जो सिकरी, साँवल सेठ पधारे।
मो गरीव को संकट काटो, अव तो प्रभु रघुवश-दुलारे ॥२२॥

आरत वचन सुनत ही आये, भक्तन के प्रति-पारे।
खोजी तव मालुम करवाई, वाँकी माँहि सिंह वल कारे ॥२३॥

सिंह खबर सुनि रान भुपाला, बीर जाय के सिंह वकारे।
हाथी पैदल हाका बाँध्यो, साथ सुभट रण वंके सारे ॥२४॥

खलबल मची जन्तु सब जबही, भागन इत उत लगे विचारे।
आयो मेष सिंह के आगे, अब तिहि कौन उवारे ॥२५॥

दीनन हित अवतार धर्‌यो इन, राम रूप भूपाल हमारे।
मार्‌यो सिंह अभय मीढे को, दान दियो दातारे ॥२६॥

मार्‌यो सिंह मेख मन हरख्यो, धन धन रक्षक वचन उचारे।
मो गरीब को जीव दान दै, दुख सब आप मिटारे ॥२७॥

अमर करे इकलिंग आपको, दम्पति जोड़ रहो जु सुखारे।
मेष तवै महारॉन मँगायो, लाये पकर भिल्ल द्वै लारे ॥२८॥

मेष देखि राना फ़रमायो, राम बचावै तिहि को मारे।
अमर करो मेष को अब ही, कान कुरकि दिय डारे ॥२९॥

राज मंत्रि अति चतुर शिरोमणि, जीव दया के पालन हारे।
प्रान समान जीव सब राखे, वहाँ भेज दो मेष विचारे ॥३०॥

ले गये मेष बलवन्तसदन को, देखि मेष हरखे बहु सारे।
धन्य मेष की पूरब करणी, धन्य नृपति जिन प्राण उबारे ॥३१॥

नन्ददास कर जोरि विनति किय, भक्त सुयश जो मुखन उचारे।
ताकी रक्षा कर करुणानिधि, जैसे मेष वहारे ॥३२॥

हर्ष एवं शोक के अवसर उपस्थित होने पर व्यय और राज्यकृपा

कोठारी केसरीसिंह जी का मृत्यु-भोज और उत्तर-क्रिया।

सं० १९२८ में कोठारीजी ने अपने पिता श्री के स्वर्गवास पर क्रिया कर्म तथा बावनी के भोजन में करीब पन्द्रह हज़ार रुपये खर्च किये और गंगोद्भव में ८ खंभों की छतरी बनाई। इस अवसर पर राज्य की ओर से दो हज़ार रुपये बख्शाऊ मिले और करियावर के दिन राज्य से ४६) रुपये का सरोपाव सफ़ेद कोठारीजी के पाग बंधाई के दस्तूर में आया। इसके कुछ ही दिनों बाद रंग का सरोपाव ३५) रुपये का कोठारीजी को बख्शा गया।

सं० १९५२ में कार्त्तिक कृष्णा १ को कोठारीजी की माता इन्द्रकुँवरबाई

कोठारीजी की माता का मृत्यु-भोज और उत्तर-क्रिया।

का देहान्त हुआ। इस अवसर पर मार्गशीर्ष शुक्ला ४ को ५२ बावन गावों की बावनी हुई। खाड १५० मन गाली गई। इसमें कोठारीजी के करीब ग्यारह हजार रुपये लगे। महासतियों में ८ खभो की छतरी बनवाई, जिसमें १३००) तेरह सौ रुपये लगे। राज्य से ४०००) रुपये बख्शाऊ बख्शे गये और कोठारीजी के रग के दस्तूर में कपड़ा के भडार से सरोपाव एक आले अदरग ७३।) सवा तिहत्तर रुपये कीमती और इनके भाई मोतीसिंहजी के सरोपाव एक कीमती ७६) रुपये का आया।

ज्येष्ठ कन्या का विवाह।

स० १९५६ माघ वदि ५ को कोठारीजी की वडी कन्या भोमकुँवरबाई का विवाह कटारिया महता भूपालसिंहजी के पुत्र जगन्नाथसिंहजी से हुआ। तोरणहाथी के होद वधवाया गया। लवाजमा वगैरह दस्तूर माफिक राज्य से बख्शाया और इस विवाह में कोठारीजी ने बाईस हजार रुपये खर्च किये। इस अवसर पर श्रीजी हुजूर ने एक स्याह मखमल का गगा-जमनी सलमे के काम का आगा भी कोठारीजी को इनायत फरमाया।

पुत्रविवाह।

स० १९६२ मार्गशीर्ष शुक्ला १५ को कोठारीजी के पुत्र गिरधारीसिंहजी का विवाह सवाई जयपुर के सेठजी मूलचद्रजी गोलेछा क बडे बट धनरूपमलजी की वडी कन्या सरदारकुँवरबाई से हुआ। इनकी माता का नाम आनन्दकुँवरबाई था। यह विवाह जयपुर रियासत के गाव नराणे, जो दादूपथियों का मुख्य स्थान है, में हुआ। करीब ६०० आदमी बरात मे ले गये। तोरण हाथी के होद बाधा गया। हाथी उदयपुर से बख्शा। बाजा लवाजमा वगैरह भी साथ लिया। इस विवाह में सत्रह हजार रुपये खर्च हुए। किन्तु नकद रुपयो की जरूरत होने से कोठारीजी ने श्रीजी हुजूर मे अर्जी नजर कराई कि जेवर या गेनावट क गॉव गिरवी रख दस हजार रुपये मुनासिब सूद पर कर्ज बख्शाये जायँ। लेकिन श्रीजी हुजूर न खावदी फ़रमा उस अर्जी पर कुछ भी हुकुम नहीं बख्शा और अलग कागज पर हुकुम लिखा। दस हज़ार रुपये बिना व्याज कर्ज बख्शाये। इसके अतिरिक्त इस अवसर पर ७०) रुपये का सरोपाव कपडे के भडार से भी बख्शाया।

छोटी कन्या का विवाह।

स० १९६७ ज्येष्ठ कृष्णा ११ को कोठारीजी की कन्या यशकुँवरबाई का विवाह जोधपुर के महता शिवचन्दजी के पुत्र कानमलजी से हुआ। इस विवाह में करीब बीस हजार रुपये खर्च हुए।

सं० १९६४ में कोठारीजी की धर्मपत्नी जोरावरकुँवरबाई को श्वास, ज्वर और बीच बीच में दस्तों की भी तकलीफ़ शुरू हुई और यह बीमारी बढ़ती गई। आखिर सं० १९६४ ज्येष्ठ शुक्ला ११ के पुण्य दिवस को इनका स्वर्गवास हो गया। इनके दाहसंस्कार और पाश्चात्यिक भोज (करियावर के जीमन) में करीब छः हज़ार रुपये खर्च हुए तथा गंगोद्भव में ८ थंभों की छतरी बनवाई। उसमें २८००) रुपये खर्च हुए।

कोठारीजी की धर्मपत्नी का देहान्त और पाश्चात्यिक कर्म।

इनके पीछे तेरह हज़ार पांच सौ इकावन रुपये धर्म में कोठारीजी ने स्थायी रूप से निकाले, जिसका वर्णन धार्मिक विभाग में किया गया है। इसके अतिरिक्त कोठारीजी ने इनके पीछे तथा बीमारी मे भी बहुत सा धर्म पुण्य किया। इसके बाद रंग तबदीली के अवसर पर सं० १९६५ कार्त्तिक कृष्णा ४ को श्रीजी हुजूर ने गिरधारीसिंहजी को एक कपासी धारणा का प्रसादी मेल और श्रीमती महाराणी साहिबा चावड़ीजी ने रंग के दस्तूर में कोठारीजी तथा गिरधारीसिंहजी को मोठड़े की पागें और कोठारीजी की पुत्रवधू, मोतीसिंहजी की पत्नी और कोठारीजी की दोनों कन्याओं भोमकुँवरबाई और यशकुँवरबाई को अदरंग सुनहरी मुगजी की साड़ियां बख्शीं।

सं० १९६६ में पौष कृष्णा १० को मेरे जन्म के बाद कोठारीजी ने सं० १९६७ पौष कृष्णा १० के दिन प्रसादी कर सारी जाति, रिश्तेदारी और व्यवहार मे मेवे की केसरियां, लड्डू जो फ़ी लड्डू वज़न में डेढ पाव का था, बनवाकर तकसीम किये तथा जितने भी शहर भर में देवताओं के स्थान हैं, वहां पर एक एक नारियल भेंट भिजवाया।

कोठारीजी के चिरञ्जीवी पौत्र का जन्म।

सं० १९६९ में कोठारीजी की दोनों बहिनों नजरकुँवरबाई और हुकमकुँवरबाई का देहान्त हो गया। इनकी गोरणियाँ भी कोठारीजी ने कराई, जिनमे करीब एक हजार रुपये खर्च हुए।

कोठारीजी की बहिनो की मृत्यु।

सं० १९६९ से कोठारीजी की पुत्र-वधू (मेरी माता श्री) सरदार कुँवरबाई का शरीर अस्वस्थ रहना आरंभ हुआ और अन्त में ज्वर, दस्त तथा बाद में कितनेक रोगों ने भी घर कर लिया। सैकड़ों इलाज कराने पर भी कोई लाभ न हुआ। अन्त में सं० १९७१ ज्येष्ठ कृष्णा ११ के दिन इनका स्वर्गवास हो गया। इनके पीछे धर्म पुण्य वगैरह के अतिरिक्त जातिभोज में करीब ४४००) रुपये खर्च किये और गंगोद्भव में चार थंभों की छत्री बनवाई, जिसमें दो हज़ार रुपये खर्च हुए।

पुत्र-वधू का देहान्त।

कोठारीजी के पुत्र का द्वितीय विवाह।

स० १९७२ मार्गशीर्ष कृष्णा १० को कोठारीजी के पुत्र गिरधारीसिंहजी का दूसरा विवाह भी सेठजी धनरूपमलजी गोलेछा के यहा ही गिरधारीसिंहजी की प्रथम धर्मपत्नी की छोटी बहन उदयकुँवरबाई के साथ हुआ। यह विवाह चित्तौड मे किया गया और इसमे सात हज़ार रुपये खर्च हुए।

कनिष्ठ पुत्री का देहान्त।

स० १९७५ मे कोठारीजी की छोटी कन्या यशकुँवरबाई, जिनका विवाह जोधपुर हुआ था, का देहान्त हो गया। उनकी गोरनियाँ कोठारीजी ने कीं, जिसमे करीब ६००) रुपये लगे।

कोठारीजी के पौत्र का विवाह।

सं० १९८२ मार्गशीर्ष शुक्ला २ को मेरा सबध महता लछमणसिंहजी फ़ौजबख्शी की छोटी कन्या से किया गया और स० १९८४ वैशाख सुदि ११ को विवाह हुआ। विवाह मे खाड सौ मन गाली गई और करीब बीस हज़ार रुपये खर्च हुए। इस मौके पर राज्य से पद्रह सौ रुपये बख्शाऊ मिले और कपडा के भडार से ७०) रुपये सरोपाव के मिले। इस अवसर पर कोठारीजी की तरफ़ से श्रीमान् श्री कुँवरजी बावजी (वर्तमान महाराणा साहब) मे ज्येष्ठ कृष्णा ८ को जगनिवास में गोठ नजर की गई और रग राग हुआ, जिसमें करीब ३००) रुपये खर्च हुए। इस विवाह मे रुपयों की ज़रूरत होने से तेजसिंहजी महता द्वारा अर्जी नजर कराई सो श्री कुवरजी बावजी (वर्तमान महाराणा साहब) ने खावन्दी फ़रमा दस हजार रुपये बिना व्याज कर्ज़ बख्शाये।

कोठारीजी की दौहित्री का विवाह।

स० १९८६ के वैशाख मास मे कोठारीजी ने अपनी छोटी पुत्री यशकुँवरबाई की इकलौती कन्या प्रतापकुँवर, जिसका विवाह गोवर्धन (मथुरा) के सिंगवी सज्जनसिंहजी से किया गया, के विवाह मे माहरा किया और करीब सात हज़ार रुपये का ज़ेवर अपनी दौहित्री प्रतापकुँवरबाई को दिया। किन्तु खेद है कि सज्जनसिंहजी का मध्य आयु ही मे स० १९९३ के जेष्ठ मे देहान्त हो गया। ये बड़े सुशील, सनातनधर्मावलबी और दानी पुरुष थे। गोवर्धन (मथुरा प्रान्त) मे इनकी तथा इनके पिता की दानशीलता की अच्छी प्रसिद्धि है और कई सदाव्रत, औषधालय इनकी ओर से जारी हैं।

स० १९९० मार्गशीर्ष शुक्ला ९ को कोठारीजी के पुत्र गिरधारीसिंहजी के तृतीय पुत्र शिवदानसिंहजी का जन्म हुआ और इसी जापे मे गिरधारीसिंहजी

द्वितीय पुत्र-वधू का देहान्त। की धर्मपत्नी का केवल २८ दिन के बालक को छोड़ पौष शुक्ला ७ को स्वर्गवास हो गया। इनकी क्रिया और पाश्चात्यिक भोज वगैरह में करीब २७००) रुपये खर्च हुए। कपासेन में महता गोविन्दसिंहजी तथा उनकी पत्नी की छत्री के पास ही इनकी भी छत्री बनवाई गई। इसमें करीब १८००) रुपये खर्च हुए। इस अवसर पर राज्य से १५००) रुपये बख्शाऊ मिले।

प्रपौत्र का जन्म और पधरावणी। सं० १९९२ पौष कृष्णा ७ को कोठारीजी के प्रपौत्र मोहनसिंहजी का जन्म हुआ। इस अवसर पर कोठारीजी ने रिश्तेदारों तथा राह व्यवहार में साड़ियाँ पगड़ियाँ तकसीम कीं और फाल्गुन कृष्णा ९ को श्री दरबार की पधरावणी की गई। इसका विस्तृत वर्णन पृथक् किया गया है। इस पधरावणी में करीब ५०००) रुपये खर्च हुए।

इनके अतिरिक्त संवत् १९५१ से लेकर संवत् १९५८ तक श्रीजी हुजूर दामइकबालहू की पधरावणियाँ कोठारीजी के यहाँ होती रहीं व प्रतिवर्ष उनमें निम्न-लिखित रुपये खर्च हुए—

संवत् १९५१	१९५२	१९५३	१९५४	१९५५	१९५६	१९५७	१९५८
११५५)	१३५०)	१२३९)	९९०)	१०४५)	११४०)	११७०)	१११३)

श्रीमती माँजी साहिबा चावड़ीजी (तत्कालीन महाराणी साहिबा) तथा श्रीमती महाराणी साहिबा (तत्कालीन कुँवरानी साहिबा) में निम्न वर्षों में चूड़ा धारण फ़रमाया और कोठारीजी के यहाँ से साजी नज़र कराई गई, जिसमें निम्नलिखित खर्च हुआ—

संवत् १९५५	१९६२	१९६९	१९८२	१९९०
३२०)	४००)	७१५)	५२३)	६४९)

इसके अतिरिक्त शादी, गमी अथवा ऐसे ही कई एक आगरणी, माहेरा, बिनोला इत्यादि छोटे मोटे अवसर उपस्थित होने पर कोठारीजी ने बहुत कुछ खर्च किया, जिसका विस्तृत वर्णन पुस्तक के बढ़ जाने के भय से नहीं किया जा रहा है।

शिल्पकार्य

कोठारीजी को इमारती कार्यों से बहुत रुचि थी और वे स्वयं भी इस सम्बन्ध में बड़े कुशल जानकार थे। हर एक कार्य को बड़े शौक से बनवाया करते। इन्होंने

अपने जीवनकाल में हज़ारो रुपये शिल्प के कार्यों मे व्यय किये। उनका सूक्ष्म विवरण नीचे दिया जाता है—

(१) बख्शी हुई हवेली, जिसमे आजकल हम रहते हैं, उसमे थोडे से कच्चे मकानात और सडक पर जो दरवाजा है, उसके सिवाय कोई इमारत न थी। कच्चे मकानात भी जीर्ण अवस्था में थे। अतएव उन्हें भी गिरवाकर इस पर करीब पन्द्रह हजार रुपये तो कोठारी केशरीसिंहजी ने लगा जरूरी इमारत बनवाई और बाद मे कोठारीजी ने समय समय पर इसमे मकानात बनवाये, जिसमें कुल करीब पचास हजार रुपये के ऊपर इनका व्यय हुआ।

(२) बपोती की हवेली, जिसमें कोठारी केशरीसिंहजी रहते थे, कोठारियो की गली में है। इसमे ज्यादातर इमारत सब कोठारी केशरीसिंहजी ने बनाई और कोठारी बलवन्तसिंहजी के समय जरूरी मरम्मत वगैरह होती रही, जिसमे कोठारीजी के करीब एक हज़ार रुपये व्यय हुए।

(३) कोठारियो की गली मे बपोती की हवेली मे चौक विशेष न होने से उसके पास ही में मिले हुए दो तलिये सं० १९८५ में कोठारीजी ने २१६४) रुपये मे राज्य से खरीदे और इस पर नई हवेली निर्माण कराई, जिसमे करीब १८०००) रुपये व्यय हुए।

(४) बख्शी हुई हवेली के सामने मॉंजी साहिबा की बावडी के ऊपर के बपोती के मकानात पहले के बने हुए और बपोती की हवेली से मिले हुए हैं। इनकी भी समय समय पर मरम्मत होती रही, जिसमे करीब चार पॉंच हज़ार रुपये व्यय हुए।

(५) हवेली के सामने दो दुकानें और ऊपर के मकानात जो अक्सर किराये पर लगे रहते हैं, नये सर खरीद नींव सींव से नये बनाये। उन पर ८७६२) रुपये लगे।

(६) भडभूँजा घाटी पर एक हवेली पहले से ४२५१) रुपये मे गिरवी थी। लेकिन उसमे मकानात वगैरह कुछ भी रहने योग्य न थे, सिर्फ़ दरवाज़े पर एक दरीखाना था। बाद मे बाईस हज़ार रुपये उस पर खर्च कर कोठारीजी ने सुन्दर इमारत बनवाई। किन्तु सं० १९९२ के वर्ष ४८००) रुपये और लेकर मालिक मकान छगनचन्द्रजी चुनीलाल हुमड के वारिस इन्द्रमलजी जीतमल मोहनलाल ने कुल ३१२५१) रुपये मे कोठारीजी को बिकाव कर दी। इस हवेली मे दरवाज़े पर के दरीखाना को कोठारी केशरीसिंहजी की धर्मपत्नी ने बाईस सम्प्रदाय के जैन साधुओं के ठहरने अथवा धर्मध्यान के लिये काम मे आने की इच्छा प्रकट करते हुए एक शिलालेख भी लगवा दिया। बाद में कोठारीजी बलवन्तसिंहजी के समय यह हवेली कभी किराये, कभी मेहमान ठहराने इत्यादि

कार्यों के अतिरिक्त साधु-महात्माओं के उपयोग मे आती रही क्योंकि इस धर्म से विशेष प्रेम होने के कारण वे भी साधु-संतों को समय समय पर यहाँ विराजने के लिए प्रार्थना करते रहते थे।

(७) गोवर्धनविलास में सरकारी महलों के पीछे पायगों के पास कोठारी केशरीसिंहजी को एक हवेली बख्शी। उसमें रहने योग्य इमारत कोठारी केशरीसिंहजी ने बनाई और बाद में समय समय पर मरम्मत इत्यादि में कोठारीजी बलवन्तसिंहजी के करीब ४००) रुपये व्यय हुए।

(८) देहली दरवाज़े के बाहर बख्शी हुई बाड़ी में मकानात वग़ैरह कोठारीजी ने बनवाये, जिसमें उनका बीस हज़ार रुपये के करीब व्यय हुआ और इसके पास ही सं० १९९२ में श्रीजी हुजूर ने नई बाड़ी बख्शी। इसमें मकानात कुआँ कोट पो इत्यादि के निर्माण में करीब ५५००) रुपये ऊपर लगे।

(९) आहाड नामक ग्राम में कोठारणजी की छत्री से मिली हुई ज़मीन में कोठारीजी ने बग़ीचा बावड़ी और मकानात बनवाये। उसमें करीब बारह हज़ार रुपये व्यय हुए। यह ज़मीन कोठारीजी के यहां गिरवी थी। किन्तु सं० १९८७ में राज्य से ५०५) रुपये मे बिकाव कर दी गई।

(१०) सं० १९५६ के दुर्भिक्ष के समय कृषकों के हितार्थ कोठारीजी ने अपने जागीरी के गांव बोराव के मजरे ज़ालमगढ़ के पास एक तालाब निर्माण कराया, जिसमें ५५००) रुपये के करीब लगे और इसी में फिर जरूरत होने से सं० १९५९ में दुरुस्ती करवाई, जिसमें करीब १३००) रुपये व्यय हुए। इस तालाब से कोई माली आमदनी होने की आशा न थी किन्तु केवलमात्र गरीबों के हितार्थ ही इसे निर्माण करवाया गया था। इसके अतिरिक्त समय समय पर बोराव नेतावला में मकान, कुएँ, तालाब, मंदिर इत्यादि का निर्माण हुआ। मरम्मत और अन्य इमारती काम छोटे मोटे तो इनके हाथ से सैकड़ों ही हुए हैं, जिनका विस्तृत वर्णन पृष्ठ बढ़ जाने के भय से नहीं किया जा सकता।

ग्राम शिशारमा में पगल्याजी का स्थान, ग्राम आहाड में गंगोद्भव का जीर्णोद्धार इत्यादि धार्मिक स्थानों के सुन्दर शिल्पचातुर्य के कार्य कोठारीजी की कीर्ति के उज्ज्वल प्रमाण हैं, जिनका वर्णन धार्मिक विभाग मे किया जा चुका है।

यही नहीं बल्कि सरकारी भी कई एक इमारती काम कोठारीजी की देख-रेख और इनके प्रयत्न से बने हैं। इनमें भी विशेषकर एकलिंगेश्वर में सराय, आहाड में

मीरावाई के मदिर तथा वावडी का पुनरुद्धार, इसी प्रकार कैलाशपुरी में गोलेरा का निर्माण इत्यादि परोपकार के कार्यों का प्रयत्न विशेष स्तुत्य है।

आय।

कोठारीजी वलवन्तसिंहजी के समय मुख्य आय इनके दोनो जागीरी के गाँव बोराव और नेतावले की करीव दस हजार रुपये सालाना की थी। इसके अलावा कितनेक गेहनावट के गाँव, घर अथवा गिरवी की दुकानें, जमीनें इत्यादि के सूद की आमदनी से भी अपनी जीविका में सहायता मिलती रही और शादी ग़मी इत्यादि के अवसरों पर समय समय पर राज्य से सहायता वख्शते रहने से इनको प्रत्येक कार्य मे पूरी मदद मिली, जिसका वर्णन पृथक् किया गया है।

विवाह एव सन्तति।

कोठारीजी ने मध्य आयु मे अपनी पत्नी के देवलोकवास हो जाने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया। इनके कई एक सन्तानें हुई। किन्तु वे थोडे-थोडे काल ही जीवित रहीं। कोठारीजी की छोटी कन्या यशकुँवर का देहान्त इनकी मौजूदगी मे ही स० १६७५ मे हो चुका था। इसी प्रकार दोनो पुत्र-वधुओ मे से ज्येष्ठ का स० १६७१ मे और कनिष्ठ का स० १६६० मे स्वर्गवास हो गया था। अत कोठारीजी के अतिम समय तक एक पुत्र गिरधारीसिंहजी और ज्येष्ठ कन्या भोमकुँवरवाई, तीन पौत्र, एक पौत्र-वधू और एक प्रपौत्र इनकी सेवा मे रहे और उपर्युक्त परिवार को छोड कोठारीजी ने परलोक गमन किया।

मित्र, सहायक और स्नेही।

इस ससार मे सुख के साथी मित्र एव वाधव तो अनेक वन जाते हैं किन्तु दु ख के साथी, दु ख के समय काम देने वाले वाधव मिलना एक कठिन समस्या है। कवि सत्य कहता है —

उत्सवे व्यसने चेव, दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च, यस्तिष्ठति स वाधव ॥

भावार्थ—उत्सव, व्यसन, दुर्भिक्ष, राष्ट्रविप्लव, राजद्वार और श्मशान में जो ठहरता है अर्थात् इतने स्थानों पर जो साथ देता है, वही वास्तव में वाधव है।

फिर भी सच्चे मित्र के लक्षण सुनिए—

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यानि गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गत च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिद प्रवदन्ति सन्त ॥

भावार्थ—जो पाप से निवारण कर हित में लगाता है, गोपनीय बातों को छिपा गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति के समय भी छोड़कर अलग नहीं होता है और समय पड़ने पर देता है, तन मन एवं धन से भी जो रक्षा करता है, ऐसे गुणालंकृत एवं लक्षणयुक्त मित्र को ही संत जन श्रेष्ठ मित्र मानते हैं।

कोठारी केशरीसिंहजी प्रधान रियासत मेवाड़ के जीवन-काल में चाहे उनके कितने ही मित्र बने किन्तु उनके दिवंगत हो जाने पर इनके दशवर्षीय पुत्र के साथी स्नेही मित्र अथवा सच्चे बांधव कितने रहे और सच्चा मैत्री भाव दिखाने में कौन समर्थ हुए, यह कहना कठिन है। आपत्ति का साथी ही सच्चा मित्र एवं बांधव है।

अबोध बालक एवं निराधार कोठारीजी के सच्चे माता, पिता, स्वामी और रक्षक केवल मेदपाठेश्वरों के चरणों की शरण ही थी, जिस स्वामी की रक्षा के प्रताप से उन्हीं स्वामी के सच्चे हितैषियों एवं राजभक्त सेवकों में से इने गिने सज्जन कोठारीजी के भी हितेच्छु बने रहे। इनके सच्चे मित्र, सहायक अथवा गुरु जो कुछ भी कहा जाय, कविराजा श्यामलदासजी ही थे। इनका ही नाम मुख्य स्थान पाता है।

प्रारंभिक काल के सहायकों में बेदले राव बख्तसिंह जी, सरदारगढ़ ठाकुर मनोहरसिंहजी और स्नेहियों में पुरोहित श्यामनाथजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार शिवरती के महाराजा दलसिंहजी, गजसिंहजी और करजाली महाराज सूरतसिंहजी एवं इनके घरानों के साथ भी कोठारीजी का अच्छा संबंध रहा है।

कोठारीजी के जीवन-काल में खेमपुर ठाकुर चमनसिंह जी, लाला केसरीलालजी दुर्लभरामजी दशोरा,[1] कादरजी बोहरा,[2] महता उग्रसिंहजी, महता गोविंदसिंहजी, शामजी कृष्ण वर्मा, कुमार हरभामजी, बंबई के सेठ चत्ता भाई मुरारजी, देहली के जौहरी रखामलजी, महता माधवसिंहजी, प्यारचंदजी दलाल, जोधपुर के कविराजा मुरारीदानजी

---

१ दुर्लभरामजी दशोरा जाति के ब्राह्मण थे और वाणीविलास तवारीख के कारखाने में नौकर रहे। यह कविराजाजी के मुख्य एवं विश्वस्त सेवकों में से थे और कोठारी जी के साथ भी इनका विशेष प्रेम रहा। यहा तक कि कोठारीजी के नगरनिर्वासन के समय भी इन्होंने साथ दिया। कोठारीजी का भी इनके साथ घनिष्ठ प्रेम रहा। मिठ्ठालालजी और उदयलालजी इनके दो सुपुत्र हैं।

२ कादरजी बोहरा—ये यहा के प्रसिद्ध व्यापारियो मे से थे और कोठारीजी के साथ इनका विशेष प्रेम एवं संपर्क रहा है। कोठारीजी के नगर-निर्वासन के समय मे भी ये साथ जाने को तैयार हुए। इनके चार पुत्रो मे से इस समय सिर्फ गुलामअलीजी मौजूद हैं।

और परमानन्दजी भटमेवाडा[1] से कोठारीजी का विशेष स्नेह रहा। प्राय इन सज्जनो से कोठारीजी का समागम होता ही रहता था किन्तु कोठारीजी के अन्तिम समय तक इन व्यक्तियो मे से एक भी जीवित न रहा।

पिछले वर्षो मे अर्थात् जब से जैन-समाज से कोठारीजी का विशेष सम्पर्क रहा और पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज एव पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के प्रति भक्ति और श्रद्धा विशेष बढने लगी तब से जैन-समाज के कई एक प्रतिष्ठित व्यक्तियो से कोठारीजी की जान-पहचान और मेल-मिलाप नये सर बढ़ने लगा। उनमें से निम्नलिखित नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

सेठ वर्धभानजी,[2] अमरचदजी पीतल्या रतलाम, जवेरी अमृतलाल[3] भाई रायचन्द्र जी बम्बई, जवेरी दुर्लभजी[4] भाई त्रिभुवनजी जयपुर, सेठ लक्ष्मणदासजी,[5] मुलतानमलजी

---

१ परमानन्दजी भटमेवाडा—ये जाति के भटमेवाडा ब्राह्मण थे और वाणीविलास में नौकर थे। संस्कृत के ये अच्छे विद्वान् और सच्चरित्र पुरुष थे। कोठारीजी इनसे कथा भागवत इत्यादि प्राय सुना करते और धर्मचर्चा किया करते थे।

२ वर्धभानजी—ये रतलाम के निवासी हैं। पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के सम्प्रदाय के मुख्य श्रावकों में इनकी गिनती है। अपने पिता अमरचन्दजी के माफिक महाराज श्री के ये भी अनन्य भक्त हैं। कोठारीजी और इनमे परस्पर बहुत स्नेह रहा। धर्मकार्य मे ये बहुत आगे रहते हैं। उक्त सेठजी सरलस्वभावी, निरभिमानी और धर्मनिष्ठ पुरुष हैं।

३ अमृतलालभाई—ये पालनपुर के निवासी हैं। इस समय इनकी बम्बई में दुकान है। हीरा का इनका मुख्य व्यापार है। पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के ये बड़े भक्त हैं और कोठारीजी के साथ इनका विशेष प्रेम रहा है। स० १९८० में कोठारीजी बम्बई बीमार हो गये, तब इन्होंने तन, मन से कोठारीजी की सेवा-शुश्रूषा की और पूर्ण प्रेम प्रदर्शित किया। इनकी पत्नी का नाम केसरबाई है। ये दोनों पति-पत्नी सरलस्वभावी, धर्मशील एव धार्मिक कार्यों मे पूर्णरूपेण आगे रहने वाले हैं।

४ दुर्लभजीभाई—ये मोरबी के रहने वाले और जवाहरात के व्यापारी थे। इस समय जयपुर इत्यादि स्थानों मे इनकी दुकान है। जैनसमाज में ये एक दानी, धर्मशील एव त्यागी पुरुष थे। कोठारीजी के साथ भी इनका बहुत प्रेम रहा। स्वर्गस्थ पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज का जीवनचरित्र बनवाने मे भी इनका पूरा हाथ रहा था।

५ लक्ष्मणदासजी—ये जलगाव प्रान्तीय खानदेश के रहने वाले हैं। वहीं पर इनकी दुकान है। ये भी पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के सम्प्रदाय के मुख्य श्रावक हैं। उक्त सेठजी स्पष्टवक्ता, धर्म उद्योतक, वयोवृद्ध और दानी पुरुष हैं।

कोठारीजी की अंतिम यात्रा और बीमारी।

सकना। अतएव आपके वाक्य किस मर्म से युक्त एवं सारगर्भित थे, उनका अनुमान मेरे जैसे अल्पज्ञ को होना कठिन ही नहीं, अपितु असंभव था। सं० १९९४ भाद्रपद शुक्ला १० को आपने सहसा मुझसे कहा कि इन दिनों में बीमार रहता हूँ और पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज साहब भी प्रायः बीमार रहा करते हैं। इसलिये मेरी इच्छा है कि एक बार में उनके दर्शन कर आऊँ। उधर जैन तथा वैष्णव तीर्थ भी हैं, उनके भी देव दर्शन कर लूँ। अतः तुम या गिरधारीसिंहजी मेरे साथ चलो। इस पर मैंने पिता श्री गिरधारीसिंह जी को राजनगर पत्र लिखा, जिससे वे उदयपुर आये। उस समय वे राजनगर ज़िला के हाकिम थे। एकदम जामनगर मे, जहां पूज्य श्री का चातुर्मास था, वहां जाने का निश्चय कर श्रीजी हुजूर मे रुखसत की अर्ज़ की। हम सब को, एकदम वहां जाने का और इतनी दूर की यात्रा करने का विचार क्यों हुआ, इस बात पर आश्चर्य हुआ। क्योंकि हम लोग उन महापुरुष के आंतरिक भावों का पता नहीं लगा सके। स्वप्न में भी इस बात का विचार नहीं हुआ कि इन महापुरुष की यह अंतिम यात्रा की तैयारी है। मेरा साथ जाना निश्चित हुआ। गिरधारीसिंहजी की भी साथ जाने की इच्छा थी किन्तु नहीं जा सके क्योंकि कुछ दिनों बाद श्री दरबार का राजनगर पधारना होने वाला था और उनका तबादला हुए अभी थोड़े ही दिन हुए थे। अतः वहां पर रहना आवश्यक था। फिर भी यदि हमे इस बात का ज़रा भी अनुमान होता कि यह उनकी अंतिम सेवा है तो श्रीमान् महाराणा साहब से अर्ज़ कर वे भी साथ जाते। किन्तु साधारण बुद्धि के व्यक्तियों के लिए ऐसे पुण्यात्माओं के भावों का अनुमान करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। ऐसे अनुमान पवित्रात्माओं के लिए ही संभव हैं।

भाद्रपद शुक्ला १४ सं० १९९४ ता० १९ सितंबर १९३७ ईस्वी को अनन्तचतुर्दशी के दिन श्री अनन्त भगवान् का पूजन व्रत कर चार बजे की गाड़ी से रवाना हो गये। साथ में अपनी सुपुत्री भोमकुँवरबाई, मैं, मेरी पत्नी, लघु पौत्र, दुलहसिंहजी, शिवदानसिंह जी, बहिन दौलतकुमारी तथा प्रपौत्र मोहनसिंह भी गये। हमारे कुटुम्ब में से पिताश्री (गिरधारीसिंहजी) के सिवाय सब साथ मे हाजिर थे। गिरधारीसिंहजी फौलाद जंकशन तक साथ आये और वहां से वे वापिस राजनगर को लौट गये। दूसरे दिन ता० २० को सवेरे ९ बजे पालनपुर पहुँचे। यहां के श्रीसंघ ने स्टेशन पर उतरते ही आपका स्वागत किया। पुष्पहार पहनाये। स्टेट गेस्ट हाउस में ठहराया गया। एक दिन यहीं पर विश्राम लिया। कारण कि कोठारीजी रेल में भोजन आदि नहीं लेते थे, इसलिये स्थान स्थान पर भोजन के समय ठहरने का प्रबन्ध करना पड़ता था। यहां पर ता० २० को कोठारीजी को बहुत थकान मालूम हुई तथा दिन भर शरीर अस्वस्थ रहा

किन्तु अम्बर और चाय का सेवन करने से सध्या तक चित्त को शान्ति हो गई। दूसरे दिन ता० २१ को रवाना होकर आसौज कृष्णा ७ को सवेरे ६ बजे जामनगर पहुँचे। जामनगर पहुँचने की इत्तला ६ बजे की गाडी की दी थी, लेकिन वहा श्रीसघ ने ११ बजे की गाडी से आने का मतलब समझा, जिससे श्रीसघ ६ बजे की गाडी के समय स्टेशन पर नहीं आया। उन्होने कोठारीजी के स्वागत के लिये जो तैयारी कर रक्खी थी, वह ज्यो की त्यो रह गई। उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। शिवरती के महाराज शिवदानसिंहजी की बहिन का सबन्ध जामनगर-नरेश के भाई प्रतापसिंहजी से हुआ था। अतएव उनकी तरफ़ से स्टेशन पर स्टेट गेस्ट हाउस के मैनेजर स्वागत के लिये मौजूद थे। उनके आग्रह करने पर कोठारीजी स्टेट गेस्ट हाउस जामनगर में ठहरे और पूज्यश्री के दर्शन को गये। वहा पर श्रीसघ से भी मिलना हुआ और अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। ता० २५ तक वे स्टेट गेस्ट हाउस मे ही ठहरे किन्तु वहा से पूज्यश्री का स्थान दूर होने से ता० २५ को वे वहा से दडिया उत्तमचन्द्रजी के बगले मे आकर ठहरे।

जामनगर के श्रीसघ ने ता० २४ को एक प्रीति-भोज किया। उसमें श्रीसघ तथा अन्य प्रतिष्ठित सज्जन भी निमन्त्रित किये गये थे। साथ मे कोठारीजी सहित हम सब को भी साग्रह निमन्त्रित किया गया था। वहा निमन्त्रित पुरुषो मे जामनगर-नरेश के पिता भी थे। उनका मान वहा के लोग जामनगर-नरेश से भी अधिक करते थे। अत उस प्रीति-भोज मे अन्य निमन्त्रित पुरुषो के लिये गद्दी मोडे लगाये गये। कोठारीजी के लिये मुख्य स्थान पर विशेष ऊँची गद्दी और मोड का आयोजन था। वहीं पर जाम साहब के पिताजी हॉल के बीच में कुरसी पर बैठे थे। कोठारीजी के जाते ही जाम साहब के पिताजी ने खड़े होकर हाथ मिला मुलाकात की किन्तु कोठारीजी हॉल मे पाव रखते ही हिचकिचा गये। हमे कुछ मालूम भी नहीं हुआ, वहा पर पैर देते ही कोठारीजी ने मुझसे कहा कि मैं यहाँ पर नहीं ठहरूँगा और चला जाऊँगा, तुम भी मेरे साथ चले आना। कोठारीजी ने खड़े खड़े जाम साहब के पिताजी से मुलाकात करते ही डेरे का रास्ता पकडा। वहा के श्रीसघ को इस बात का पता भी नहीं चला। अत वे साथ मे दौड पडे। इधर कोठारीजी के छोटे पौत्र शिवदानसिंह को एक दिन पहले से बुखार और उलटी हो रही थी। अत उन्होंने कहा कि शिवदान बीमार है और कारण विशेष से मै यहाँ भोजन नहीं करूँगा और जाऊँगा। सो आप लोग मुझे क्षमा करें। अत हम सब भी उन्हीं के साथ वापस डेरे पर आ गये।

कोठारीजी के लिए सत्य बात को छिपाना भी असभव था। अत वहा के श्रीसघ के अत्यन्त आग्रह करने पर आपने स्पष्ट शब्दों मे कहा कि प्रत्येक देश के रीति-रिवाज

जलगांव, सेठ उमेदमलजी लोढा अजमेर, सेठ मोतीलालजी बालमुकुन्दजी मुथा सतारा, हेमचन्द्र[1] भाई रामजी भावनगर, चुन्नीलाल भाई राजकोट, बुधसिंहजी महता बीकानेर, श्रीचन्दजी अबाणी नया शहर, बहादुरमलजी बांठिया भीनासर—इनमें से भी वर्धभानजी पीतल्या, अमृतलाल भाई, दुर्लभजी भाई, लक्ष्मणदासजी, और हेमचन्द्र भाई के साथ तो कोठारीजी का प्रेम बढ़ते बढ़ते परस्पर बिलकुल घर का सा सम्बन्ध हो गया था।

यहां के सरदार उमरावों में से ठिकाना बेदला, सादड़ी और कानोड़ के उमरावों के साथ और इसी प्रकार ठिकाना ताणा के साथ कोठारीजी का विशेष प्रेम रहा।

प्रारंभ से ही अजमेर के सेठ नीमीचन्दजी टीकमचन्दजी सोनी के साथ कोठारीजी का अच्छा मेल-जोल रहा और सं० १९८७ से बंबई के सेठ लेहरभाई और अंतिम दिनों सर प्रभाशंकर भाई पट्टनी से भी कोठारीजी की नवीन मित्रता हो गई किन्तु इस स्नेह का कराल काल के आगे विशेष समय तक उपभोग न हो सका। सं० १९८७ से बंबई के होमियोपैथिक डाक्टर ए० सी० दास और यहां के डाक्टर छगन्नाथजी से भी कोठारीजी का प्रेम विशेष रहने लगा और समय समय पर उक्त दोनों डाक्टरों ने भी तन, मन से कोठारीजी की चिकित्सा की।

कितनेक निजी सम्बन्धिवर्ग के अतिरिक्त सर सिरेहमलजी बापना, महता जीवनसिंहजी, बाबू प्रभासचन्द्रजी[2], नगरसेठ नन्दलालजी, बारहट रामप्रतापजी, चूनीलालजी रोशनलालजी चतुर और मिरजा बाहिदअली बेगजी के साथ भी कोठारीजी का अच्छा प्रेम रहा।

---

१ हेमचंद्रभाई—ये इस समय भावनगर स्टेट रेलवे के डिप्टी मैनेजर हैं। अजमेर के बृहत् साधु-सम्मेलन के अवसर पर भी प्रेजीडेन्ट की जगह इन्ही का चुनाव हुआ था। इसी अवसर से इनका कोठारीजी के साथ समागम होने से परस्पर प्रीति बढ़ने लगी और सं० १९९४ के वर्ष कोठारीजी के अंतिम यात्रा के समय भावनगर जाने पर तो इनके साथ और भी ज्यादा प्रेम हो गया किन्तु ईश्वर ने इसका विशेष समय तक उपभोग न होने दिया। ये उदार, विद्वान्, साहसी, धर्मशील और जैनसमाज के प्रसिद्ध नेताओ में से एक हैं।

२ बाबू प्रभासचन्द्रजी के निरे बाल्यकाल ही में इनके पिता बाबू पंचानन चटर्जी का देहान्त हो गया था, किन्तु तत्कालीन महाराणा साहब फतहसिंहजी ने पूर्ण कृपा रख इन्हें पढ़ा लिखा होशियार बनाया। प्रभासचन्द्रजी के साथ कोठारीजी का शुरू से ही प्रेम रहा। इनके पिता के देहान्त के बाद जब ये ५-६ वर्ष के हुए तो एक दिन महलो में नजराना करने को आये। जहाँ ये बैठे थे, उस रास्ते होकर श्रीजी हुजूर का पधारना नही हुआ और दूसरे रास्ते से पधारना हो रहा था। ये बालक होने से पहुँच न सके। सो कोठारीजी ने उन्हें गोदी मे ले जा श्रीजी हुजूर

इसी प्रकार उदयपुर के अन्य व्यक्तियों में केसरीचन्दजी चौधरी, मेवराजजी तलेसरा, कपासन के भडारी राजमलजी, मोतीलालजी, रतनलालजी बापना, वैद्य नर्नदाशकरजी, डालचदजी बानेल, गुमानचन्दजी[1] पचोली, मगनलालजी[2] पचोली, डा० रामनारायणजी, मोडीलालजी गलुडिया, भट्ट सपतरामजी, कोचर फूलचदजी, गुसाई महादेवपुरीजी[3], बख्तावरलालजी बानेल और मडी के लक्ष्मीलालजी[4] महता के साथ भी कोठारीजी का प्रेम बराबर बना रहा।

पुण्यवान् आत्माओं मे एक ऐसी ईश्वरीय कृपा एव दैवी शक्ति होती है, जिसका अनुमान सीधे सादे स्वभाव वाला सामान्य व्यक्ति सहसा नहीं कर

ने नजराना कराया। इसके बाद जब ये लिख-पढ होशियार हुए, तो श्रीजी हुजूर ने इन्हें सेवा में रखना शुरू किया और कोठारीजी की देख रेख और निगरानी में इन्हें काम सिखाने का हुक्म बख्शा। कोठारीजी ने बहुत प्रेम से इन्हें काम सिखाया। बाद में श्रीजी हुजूर ने इनसे विविध सेवाएँ लेकर योग्य अनुभवी समझ मत्री के पद पर नियुक्त फरमाया। उक्त बाबूजी ने सदा कोठारीजी के प्रति पूज्य दृष्टि रक्खी और समय समय पर कृतज्ञता के भाव प्रदर्शित करते रहे है।

१ ये रसोडे इत्यादि के दारोगा रहे। कोठारीजी के बाल्यकाल में जब कोठारीजी के प्रति उनकी माता का वैमनस्य उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा था, उस समय भी इन्होंने कोठारीजी के साथ सहानुभूति एव सद्व्यवहार रक्खा और इसी सद्व्यवहार का अत तक पालन किया। इनके पौत्र अमरचन्दजी हैं।

२ ये वर्षों तक देवस्थान में खिगड जात के अफसर रहे। इनके पिता का नाम सुखदेवजी था। कोठारीजी के बाल्यकाल में इन्होंने इनसे विद्याध्ययन भी करवाया और कोठारी केसरीसिंहजी के समय से लेकर अब तक ये इनके घराने के हितैषी रहे है। इनके पुत्र का नाम हीरालालजी है।

३ गुसाई महादेवपुरीजी डुगरपुरीजी इत्यादि कोठारीजी के प्रारम्भिक काल के विश्वस्त सेवकों में से थे। इनमें भी महादेवपुरीजी पर विशेष विश्वास था और इन्होंने कोठारीजी की अच्छी सेवा की है।

४ कोठारीजी जब अपनी बपौती की हवेली में रहते थे तब भैरजी कोठारी की स्त्री भी इनकी हवेली मे रहती थी। फिर जब कोठारीजी ने स० १९४५ में बख्शी हुई हवेली म निवास किया तो इनकी धर्मपत्नी के साथ भैरजी की स्त्री भी आई और आजन्म इनके यहा रहीं। इनकी कन्या का विवाह लक्ष्मीलालजी से किया गया, तभी से इनका कोठारीजी के यहाँ सम्बन्ध हुआ है।

भिन्न-भिन्न होते हैं। हमारे देश में नरेश का पिता हो तो गद्दी पर आने के बाद पिता भी राजा को अपना स्वामी समझता है और अन्य उमरावों—पहले दरजे के सरदारों—के माफिक उनका वर्ताव रहता है। किन्तु आपके यहां का वर्ताव दूसरा है। मैंने देखा कि गद्दी पर चले जाने के बाद भी यहां पर वही वर्ताव रहता है और उसमें फ़रक नहीं पड़ता। मुझे मेवाड़नाथ के सिवाय दूसरों के नीचे बैठने में पशोपेश था। अतः मैं वहाँ न ठहर चला आया। इस पर वहां के लोगों ने खेद प्रकट किया और कहा कि हमें इस बात का पता न था। वर्ना हम आपके लिये दूसरी कुर्सी लगा देते। हमारे लिये तो आप बड़े पूज्य एवं आदरणीय हैं, इत्यादि। यह सुन कोठारीजी ने कहा कि अन्य प्रतिष्ठित पुरुष तथा सेठों के बीच में उन सब के नीचे बैठे हुए मेरा कुर्सी पर बैठना भी अनुचित था। इसलिये मैंने वहां से वापस आना ही उचित समझा। श्रीसंघ को इसका बड़ा पश्चात्ताप रहा किन्तु कोठारीजी ने इस प्रकार समझाया कि उनको तसल्ली हो गई।

इसके बाद वहां के पारसी दीवान मेहरबानजी से और बाद में जामनगर-नरेश के पिताश्री एवं भाई प्रतापसिंहजी से भी मुलाकात की। कोठारीजी के साथ उनका वर्ताव बड़ा ही आदरपूर्ण था और इनके मिलने से दोनों को परस्पर बड़ी प्रसन्नता हुई। यहाँ के दीवान पारसी वृद्ध सज्जन बड़े सादे विचारों के हैं। इनका रहन-सहन और सादा जीवन देखकर सहसा एक साधु पुरुष का ध्यान होता था। जामनगर के लोगों की इन पर बड़ी ही श्रद्धा एवं भक्ति थी। इनकी आयु करीब ८० वर्ष है। कई नरेशों के समय में ये मंत्री रह चुके हैं।

जामनगर में श्री जैन-हितेच्छुश्रावकमंडल रतलाम की बैठक सं० १९९४ के आश्विन में हुई। इसके सभापति कोठारीजी को बनाने लगे, तो इन्होंने अपनी अस्वस्थता के कारण इस पद को स्वीकार करने में असमर्थता प्रकट की। लेकिन श्रीसंघ के बहुत आग्रह करने पर उस पद को स्वीकार करना ही पड़ा और मंडल की कमेटी का कार्य सानन्द समाप्त कर आसौज कृष्णा १४ को सकुटुम्ब द्वारका गये। द्वारका स्टेशन पर वहां के प्रसिद्ध वल्लू सेठ ने कोठारीजी का स्वागत किया। दो रात्रि यहां ठहरे। श्री भगवान् की सेवा पूजा की और दान पुण्य आदि कर यहाँ से बेट द्वारका गये। वहां पर दर्शन आदि कर आसौज सुदि २ को वापस जामनगर आ गये। यहां पर फिर पूज्यश्री के व्याख्यान श्रवण किये एवं दर्शनों का लाभ लिया। यहां के प्रसिद्ध डाक्टर प्राणजीवनदासजी महता से कोठारीजी का परिचय हुआ। डाक्टर साहब बड़े ही सीधे सादे सरल प्रकृति के परोपकारी पुरुष हैं। इन्होंने, सेठ वल्लभभाई तथा श्रीसंघ ने कोठारीजी का पूर्ण आदर सहित आतिथ्य किया। आखिर पूज्य श्री के अंतिम दर्शन कर आसौज सुदि ४ सं० १९९४

को वहा से शाम की गाडी से रवाना हुए। वहा के श्रीसघ ने विदा होने के समय पुष्पमालाओं से कोठारीजी का अपूर्व मान किया। मानो यही अतिम विदाई थी। अत उनके आतिथ्य को साभार मानते हुए धन्यवाद देकर प्रस्थान किया। शाम को ७ वजे राजकोट पहुँचे।

राजकोट के श्रीसघ एव वहा के नगरसेठ तथा चुनीलाल भाई ने कोठारीजी का हार्दिक स्वागत किया और आदरसहित स्टट गेस्ट हाउस में ठहराया। यहाँ पर एक रात्रि ठहरे और पशुशाला तथा कई एक परोपकारी सस्थाओं का निरीक्षण किया। उन सस्थाओं—पशुशाला, अनाथालय और वालाश्रम—का कार्य अत्यन्त प्रशसनीय है। इस प्रकार की सुप्रवन्धित सस्थाएँ शायद भारत मे इनी गिनी ही होगी। जहाँ के धनी पुरुप अपने धन का सदुपयोग करते हुए सस्थाओ को ऐसी सुप्रवधित रख सकते हैं, उनको धन्यवाद है। इन सस्थाओं का निरीक्षण कर कोठारीजी को अत्यन्त हर्ष एव सतोप हुआ और वहाँ के अधिकारियो की भूरि भूरि प्रशसा की। अपनी शक्ति के अनुसार सस्थाओं में सहायतार्थ दान भी दिया। राजकोट से पचमी को रवाना हो आसौज सुदि ६ को जूनागढ आये। यहाँ के श्वेताम्वरीय मूर्त्तिपूजक तथा साधुमार्गी श्रीसघ ने आपका स्वागत किया। आपको स्टेट गेस्ट हाउस मे ठहराया गया। वहाँ गिरनारजी की कठिन यात्रा को आपने अस्वस्थ एव वृद्ध होते हुए भी सानन्द समाप्त किया। डोली मे वैठकर आप सब टोकों पर पधारे और सेवा पूजन दर्शन करते हुए उसी दिन शाम को तलेटी मे वापस आ गये। यहाँ से आसौज सुदि ६ को आपके नवीन परम मित्र हेमचन्द्र भाई के अत्यन्त अनुरोध करने पर आप भावनगर के लिये रवाना हुए। भावनगर से पहले स्टेशन पर हेमचन्द्रजी भाई कोठारीजी का स्वागत करने के लिये आ चुके थ। शाम को ४ वजे के करीव गाडी स्टशन पर पहुँची। वहाँ पर हेमचन्द्रजी भाई न गले मिल पुष्पहार पहनाया और खास स्टेशन भावनगर पहुँचने पर वहाँ के श्रीसघ ने आपका स्वागत किया। कोठारीजी स्टट गेस्ट हाउस मे ठहरे। यहाँ पर हेमचद्र भाई न आपका स्वय आतिथ्य किया। स० १६६० मे जब अजमेर मे वृहत् साधु-सम्मेलन हुआ था, तब यही हेमचन्द्र भाई उस सभा क सभापति थे। कोठारीजी भी अजमेर गये थे, वहाँ पर आपका इनसे मिलाप हुआ। उस प्रथम मिलने से ही दोनों सज्जनों मे परस्पर स्नेह के सूत्र हमेशा के लिये जुट गये और उसका अपूर्व परिचय इस वार भावनगर मे उन्होने कोठारीजी का आदर एव आतिथ्य करते हुए दिया।

आश्विन शुक्ला १२ को आपसे मिलन क लिये वहाँ के वयोवृद्ध दीवान सर प्रभाशकरजी पट्टनी आये। करीब सवा घट इनका वार्तालाप हुआ। फिर कोठारीजी यहा से

पालीताना दर्शनार्थ गये। डोलियों द्वारा दर्शन वन्दन यात्रा कर पुण्य आदि कार्य किये। पुनः भावनगर चले आये। दूसरे दिन यहाँ के श्रीसंघ ने कोठारीजी के स्वागत में पंचायती भवन में फ्रूटपार्टी की। आप उस भवन मे शाम के ५ बजे गये। वहाँ पहुँचते ही कन्याओं ने मीठी गुजराती भाषा में स्वागत गायन गाते हुए माननीय महापुरुष का अभिनन्दन किया। वे पद इस प्रकार हैं—

"मेहमान नागर वेलाओ रो पाव ए राग।"

दीपे आंगणूं मेहमान, मारे आंगणे आओ।
करूँ स्नेह थी सन्मान मारे आंगणे आओ॥ दीपे०॥

उर उमलका आवे के दर्शन करतां भावे।
मारी आँखलडी धराय मारे आंगणे आओ॥ दीपे०॥

अवसर आज अणमोलो के बोल सुहागी बोलो।
उरे भावना भराय मारे आंगणे आओ॥ दीपे०॥

पगला पनोता आजे के पाडो मारे काजे।
आशा उरनी पुराय मारे आंगणे आओ॥ दीपे०॥

स्वर्ग सदन ना जेवुं के मंदिर दीपे केवुं।
मारा दुखड़ा विलाय मारे आंगणे आओ॥ दीपे०॥

कोठारीजी से मिलकर वहां के श्रीसंघ ने अपूर्व हर्ष प्रदर्शित किया और वहां के सेक्रेटरी महोदय ने भाषण दिया। श्रीसंघ का उपकार मानते हुए कोठारीजी की ओर से उत्तर में मैंने भाषण दिया। इस तरह यह प्रेम-सम्मेलन समाप्त हुआ।

आसौज सुदि १३ को भावनगर के दीवान सर पट्टनीजी के बंगले पर मिलने गये। वे कोठारी जी के स्वागतार्थ सीढ़ियों तक आये। करीब घंटा सवा घंटा तक दोनों का वार्तालाप हुआ। कोठारीजी की प्रत्येक बात धार्मिक विषय को लिये हुए होती थी। कोठारीजी ने उनसे अनुरोध किया कि आप इस समय उच्च पद पर हैं, हजारों मनुष्यों का उपकार कर सकते हैं। इस देश का अहोभाग्य है कि आप जैसे सुयोग्य वृद्ध अनुभवी मंत्री विद्यमान हैं। यह सुनकर पट्टनीजी ने अपनी लघुता प्रकट की। किन्तु इनकी महत्ता प्रकट करने के लिये एक नहीं, भावनगर की प्रजा की हजारों ज़बानें साक्षी हैं क्योंकि प्रत्येक भावनगरनिवासी के मुख से सुन पड़ता था कि यह सब सर पट्टनी के कार्यकुशल होने का परिणाम है, जो हमारे यहाँ पर राम-राज्य वर्त रहा है। सर पट्टनीजी कोठारीजी से एक मास छोटे थे। इनकी पोशाक

श्वेत, लवी दाढी, गौर वर्ण, चेहरा शात एव वस्त्र भी बिलकुल सादे थे। आपके प्रभावशाली मुख का दर्शन करने से सहसा आदर के भाव उत्पन्न हो जाना एक स्वाभाविक बात थी। ये भावनगर-राज्य के वडे स्वामिभक्त सेवक थे। दोनों का वार्तालाप समाप्त हुआ, तब सर पट्टनीजी ने कोठारीजी को पुष्पमालाएँ पहना विदा किया। इन दो वयोवृद्ध अनुभवी राज्यभक्त मन्त्रियों का मिलना सदा के लिये स्वप्नसदृश हो गया।

दूसरे दिन आसोज सुदि १४ को भावनगर से प्रस्थान कर ग्यारह बजे की गाडी से रवाना होने को स्टेशन पर पहुँचे। श्रीसघ, हेमचन्द्र भाई और सर पट्टनी विदाई देने आये। वहा फिर सर पट्टनीजी ने कोठारीजी को पुष्पहार पहनाये। उन्होंने भी उनको मालाएँ पहनाई और कोठारीजी से अतिम विदा लेते हुए सर पट्टनीजी ने उनके घुटनो को हाथ लगाया और उनको हाथ का सहारा देते हुए रेल मे चढाया। कोठारीजी ने उनको रोककर कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं। तब उन्होंने प्रेमाकुल होते हुए कहा कि हमारे धन्य भाग्य हैं, जो महाराणा फतहसिंहजी के सुयोग्य आप जैसे वृद्ध मत्री के दर्शन हुए। हमारे भाग्य मे पुण्यभूमि मेवाड-वासियों के दर्शन कहाँ वद हैं, जिस भूमि में प्रणवीर राणा प्रताप, सागा और प्रताप के साक्षात् स्वरूप स्वर्गीय नरेश फतहसिंहजी ने जन्म धारण कर मेवाड को गौरवान्वित किया है। कोठारीजी भी प्रेमाकुल हो गये। इस पर सर पट्टनी ने अपने अनुभव उनसे इस प्रकार प्रकट किये—' मैं कुछ वर्ष पहले उदयपुर गया था। तब वड़े दरबार फतहसिंहजी आरोग्य थे। मुझे वहाँ जाने में बडा पशोपेश हुआ क्योंकि मैं भी स्वाभिमानी और स्वतत्र विचार का मनुष्य हूँ। मैंने विचार किया कि मैं ब्राह्मण हूँ। इससे श्री दरबार को केवलमात्र आशीर्वाद दे दूँगा। भावनगर के स्वामी को छोड मुझे और किसी के सामने झुकने की क्या आवश्यकता है। किन्तु ज्यों ही मैंने राजऋषि स्वर्गीय महाराणा के दर्शन किये, सहसा उन्हें साष्टाग प्रणाम कर दिया। उनके चेहरे का मुझ पर ऐसा जबरदस्त प्रभाव पडा कि मैं अपने आपको सँभाल नहीं सका और ऐसे आदरणीय भावों मे लिप्त हो गया कि अपनी सुध-बुध जाती रही और आशीर्वाद देने की जगह ऐसे राजर्षि वीर राणा का आशीर्वाद लेने की धुन सवार हो गई। महाराणा साहब ने मुझसे कहा—'यह क्या करते हो'। लेकिन मैं उनके दर्शनों से प्रेमाकुल हो गद्गद् हो गया और मैंने उस दिन को अपने लिये धन्य माना। आज वह महान् आत्मा इस ससार में नहीं है किन्तु आज आपके प्रभावशाली चेहरे ने मेरे सामने स्वर्गीय महाराणा का विशाल रूप उपस्थित कर दिया है।"

कोठारीजी बोले—'वयोवृद्ध आदरणीय पूज्य पट्टनी साहब, यह आपका बडप्पन

है। उन स्वर्गीय महाराणा की तो मैं चरणरज हूँ'। इतने में ही रेल ने सीटी लगा दी और दोनों नवीन मित्र मंत्री आपस मे बातचीत न कर सके। उस रेलगाड़ी की तेज़ रफ़्तार ने दोनों मंत्रियों का भावनगर से ही नहीं किन्तु थोड़े ही दिनों के बाद इस संसार से भी वियोग करा दिया।

कोठारीजी के परममित्र हेमचन्द्रजी भाई दो स्टेशन तक साथ आये किन्तु उनको कोठारीजी के समागम का सुअवसर और परस्पर मिलन सदा के लिये स्वप्नवत् हो गया। वहां पर दोनों वृद्ध मंत्रियों के परस्पर मिलने से बड़ी प्रसन्नता हुई। यही एक महान् पश्चात्ताप रह गया कि ७६ वर्ष तक इन महापुरुषों का समागम तथा परिचय परस्पर नही हुआ। यह भी कौन जानता था कि यह स्मृति अब ७६ दिन भी न रह सकेगी। भावनगर से विदाई लेकर शाम को साढ़े आठ बजे अहमदाबाद पहुंचे। वहां मंगल भाई, जयसिंह भाई और श्रीसंघ ने आपका अपूर्व स्वागत किया। हम जयसिंह भाई के यहां दो दिन ठहरे। देवदर्शनादि किये। किन्तु दुष्ट ज्वर ने कार्त्तिक कृष्णा १ से उनके शरीर में अपना घर कर लिया था। अतः आपकी तबीयत कुछ खराब हुई। मामूली ज़ुकाम तथा कुछ ज्वर हुआ। शाम को तबीयत ठीक मालूम होने लगी, तब मैंने अर्ज की कि अभी कुछ समय तक आप यहीं पर विराजें तो ठीक होगा। लेकिन उस महान् आत्मा ने यह बात स्वीकार नहीं की। अतः अत्यन्त परामर्श कर कार्त्तिक वदि २ को अहमदाबाद से रवाना होकर ३ को सवेरे आबू रोड उतरे।

जब आबू रोड उतरे तब आपको एक सौ एक डिगरी के करीब ज्वर था। मैंने अर्ज की कि उदयपुर चलें किन्तु इनकार कर दिया और आबू की यात्रा के लिये आग्रह किया। अतः हम सब आबू रोड पर धर्मशाला में ठहरे। बुखार बढ़ता ही गया। इन्होंने अपनी सुपुत्री, मुझे तथा अन्य सब को आबू में दर्शन करने जाने के लिये बहुत कहा किन्तु हम लोग न गये। श्रीमान् मुनि श्री शान्तिविजयजी के दर्शन भी नहीं हो सके। इसलिये इस पश्चात्ताप की एक चिट्ठी कोठारीजी ने मुझ से मुनिश्री के नाम लिखवाकर डाक में डलवाई और उसी रात को रवाना होकर कार्त्तिक कृष्णा ४ को उदयपुर चले आये। राजनगर से आकर कांकरोली स्टेशन से गिरधारीसिंहजी भी साथ हो गये। उदयपुर स्टेशन पर आपके स्नेही एवं हितचिन्तकों ने आपका स्वागत किया और आपको सरकारी मोटर द्वारा हवेली पधराया। यहाँ डाक्टर छगन्नाथजी का इलाज आरम्भ किया।

उदयपुर पहुँचते ही ज्वर ने निमोनिया का रूप धारण कर लिया। डाक्टर साहब के इलाज से १०-११ दिन में इस बीमारी से शान्ति हो गई। इसके

कोठारीजी की बीमारी और चिकित्सा ।

ठीक होने के साथ ही श्वास की तकलीफ़ शुरू हुई । इससे भी दो तीन दिन मे छुटकारा मिला । ज्यो ही श्वास की तकलीफ मिटी, त्यो ही पेशाब बन्द हो गया । यह वेदना बडी ही असह्य थी । कई दिन-रात बैठ-बैठे बिताये । उक्त डाक्टर साहब ने बहुत परिश्रम किया, जिससे १०-११ दिन में यह बीमारी भी ठीक हो गई । पेशाब भी स्वाभाविक रीति से आने लगा । किन्तु जब इस बीमारी ने बिदा ली तो दस्त बन्द (कब्ज) हो गया । एनिमा तथा अन्य औषधो का सेवन कराने से दो-तीन दिन में इस व्याधि ने पीछा छोडा तो पुन ज्वर आने लगा ।

आपको बीमारी मे कुछ विशेष लाभ नहीं दिखाई दिया और एक के बाद दूसरी बीमारी आने लगी । नित्य ही इनकी इच्छा श्रीजी हुजूर के दर्शनो की बनी रहती और दिन में कई बार कहते कि श्री दरबार के दर्शन किये बहुत दिन हो गये । न जाने, अब दर्शन कब होगे । मुझे तो बहुत महीने हो गये । इस पर हमने अर्ज़ की कि अभी व्याधि तथा अशक्तता के कारण आप महलो मे नहीं पधार सकते । यदि आप फ़रमाये तो श्रीमालिको के पादपद्मों में तकलीफ़ फ़रमाने के लिये अर्ज़ की जाय कि दर्शन बख्शे । इस पर इन्होने कहा कि बिला ज़रूरत श्री मालिको में तकलीफ़ अर्ज करना ठीक नहीं है । कुछ ठीक होऊँ तो शाम के वक्त सैर करने को श्रीजी हुजूर का पधारना होता है तब आनन्दभवन या पारसी की दुकान तथा अन्य जगह जाकर दर्शन कर लूँगा । किन्तु कुछ आराम नहीं हुआ और नई नई बीमारियाँ पैदा होती गई ।

श्री महाराणा साहब का आरामपुरसी के लिये पधारना ।

श्रीजी हुजूर राजनगर से पधारने पर प्राय नित्य डा० छगन्नाथजी से दरियाफ्त फ़रमाया करते कि अब कोठारीजी का स्वास्थ्य कैसा है । छगन्नाथजी ने हमे नहीं कहा किन्तु वहाँ अर्ज करते कि हालत सीरियस (असाध्य) है । पुन हमने कोठारीजी से श्रीमान् महाराणा साहब की सेवा मे दर्शन देने के लिये तकलीफ अर्ज करने को कहा लेकिन कोठारीजी इनकार ही करते रहे । अन्त में जब श्रीजी हुजूर के जयसमुद्र पधारने की सुनी, तो फिर दर्शनो की उत्कट इच्छा हुई । इस पर श्रीजी हुजूर ने खावन्दी फ़रमाकर मार्गशीर्ष वदि ७ स० १९९४ को दर्शन देने के लिये पधारने का हुकुम बख्शा । अत मार्गशीर्ष कृष्णा ७ शनिवार ता० २० नवम्बर सन् १९३७ ईस्वी को श्रीजी हुजूर का कोठारीजी की आरामपुरसी के लिये शाम के ५ बजे मोटर सवार हो हवेली पधारना हुआ । हवेली के बाहर पधारते ही आपकी बीमारी के कारण हवेली बाहर तक आने की कोठारीजी

की शक्ति न होने से गिरधारीसिंहजी ने ५) रुपये से नज़राना किया और मोटर से पागड़ा छाँड तामजाम सवार हो हवेली में पधारना हुआ । दरवाजे से दरीखाने तक लाल टूल के पगमंडे किये और दरीखाने से कुरसी तक मसरू के । वहां पधारने पर कोठारीजी ने मुजरा किया । श्रीजी ने ताजीम वख्शी । कोठारीजी ने एक मोहर और ५) रुपये से नज़र की सो रखाई । १०१) एक सौ एक रुपये न्योछावर किये । इसके वाद कुरसी पर विराजना हुआ । कोठारीजी ने अर्ज की कि—'खावन्दी फरमाई । दर्शन लिख्या हा, सो हे गया' वगैरह श्रीजी के चरणों में धोक दी, जिस पर श्रीजी हुजूर ने फ़रमाया कि—'रावा दो तकलीफ़ मत करो । अव थांके जल्दी आराम हो जावेगा' वगैरह फरमान द्वारा तसल्ली वख्शी और हम सव तथा कितने ही रिश्तेदारों ने नजर की । स्त्रियों के नजराने की तासली नजर की और मैंने कोठारीजी की तरफ़ से उनके हार्दिक भावों को कविता में व्यक्त किया । वह कविता यह थी—

खानाज़ाद की अर्ज—

रज चरणाँ मस्तक धरूँ पल पल वारूँ प्राण।
पलकाँ रा पगल्या करूँ भलाँ दरस हिन्द भाण ॥१॥

इक आयू पुनि माँदगी कठिन दरस को जोग।
नाथ-दरस तैं भागि हैं, सेवक के सव रोग ॥२॥

चित चाकर चरणाँ लग्यो, वहुत दिनन विलखाय।
श्रम लीन्हीं दीन्हो दरस, छमहु दया उर लाय ॥३॥

दीजे हरि हर दोय वर दाता दीनदयाल।
शाम धरम निभवो सदा, भल नित दरस भुपाल ॥४॥

मैंने कोठारीजी के हार्दिक भावों को इस छोटी सी टूटी फूटी कविता मे व्यक्त करने का पूरा यत्न किया और यह भी ध्यान रक्खा कि दूसरे शब्द विशेष रूप से न लिखे जायँ। जिन शब्दों का मैंने कविता मे प्रयोग किया है, वे उनके हार्दिक भावों को प्रकट नहीं कर सकते हैं क्योंकि उनकी भक्ति हद दरजे की बढ़ी चढ़ी थी । उन्हें अपना मस्तक अपने स्वामी की चरणरज से पवित्र करना, शरीर स्वामी पर न्योछावर करना, पलकों पर पगल्या करना ही इच्छित न था बल्कि उनका तो सर्वस्व तन मन धन सब ही स्वामी पर न्योछावर था । उनको अपनी बढ़ी हुई उम्र और वीमारी में मालिकों के दर्शन दुर्लभ थे। किन्तु जैसी कोठारीजी की अभिलाषा थी,

उनके हृदय के भाव व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है, वही हुआ । जिस दिन मालिको के दर्शन हुए, उसी दिन सायकाल से उनकी तवीयत इतनी सुधरती हुई मालूम हुई कि हम सब को ख्याल वध गया कि अब जल्दी ही आराम हो जायगा । किन्तु यह आशा भी निराशा में परिणत हो गई। जिस प्रकार थोडे पानी में मछली तडपती है, वही हालत कोठारीजी की थी। अपने स्वामी के दर्शनों के विना उनका जीव तडप रहा था और जब स्वामी ने श्रम ले दर्शन दिये, तव उनकी कृतज्ञता का कहना ही क्या था। रोग और निर्वलता के कारण वोलने की शक्ति नहीं थी । फिर भी प्रेम से गद्‌गद् हो गये । अत श्री मालिकों मे केवल धन्यवाद के भाव चरणों में धोक (नमस्कार) दते हुए व्यक्त कर दिये । यदि कोठारीजी की अन्तिम समय तक कोई अभिलाषा रह गई थी तो वह यही थी कि श्री मालिको के दर्शन नित्य होते रहें और स्वामिधर्म निभता जाय । जब मैंने कविता अर्ज कर दी, तब कोठारीजी के प्रति पूज्य भाव रखने वाले सच्चे हितैषी खेमपुर ठाकुर दधिवाडिया करनीदानजी ने निम्नलिखित दोहा और सोरठा अर्ज किया—

शभु राण केहर समय, पहली घरे पधार।
कलवृच्छ ज्यूँ पावन कियो, वलवन्त ने इण वार ॥१॥

वलवन्त विभारीह, वूढापो निवल पणो ।
भूपाला भारीह, दया करे दर्शन दिया ॥२॥

इस कविता के वाद कुछ मिनट श्रीजी हुजूर और विराजे और पधारने को फरमाया सो कोठारीजी ने सुनहरी पवित्रा धारण कराया । श्रीजी ने कोठारीजी को वहीं से सीख वख्शी। आज कोठारीजी ने श्री मालिको क अतिम दर्शन कर लिये और हमेशा के लिये इन चरणों से विदा ले ली। इसके वाद श्रीजी हुजूर मोटर मे सवार हो हाथीपोल होते हुए महलो मे पधारे।

इधर एक दो दिन तवीयत ठीक रही फिर निमोनिया का वापस दौरा हो गया। डाक्टर न परिश्रम करने तथा कोठारीजी ने व्याधि के कष्ट को शान्तिपूर्वक सहन करने में कोई कोताही नहीं की। इस निमोनिया क क्रूर दौरे को भी दस ग्यारह दिन मे भगा दिया। इधर ज्यों ही निमोनिया ठीक हुआ, उधर दस्तों की वीमारी फिर शुरू हो गई । यह भी वीच मे कम हो गई, किन्तु फिर इस वीमारी ने अपना ऐसा जवरदस्त घर किया कि इसका छुटकारा पाना कठिन हो गया और प्रकोप इतना वढा कि दिन रात मे सौ डेढ सौ तक दस्त लगने लगे। वीमारी में उनमे मैंने तथा पिताश्री ने कई वार अर्ज की कि आप फ़रमावें, उसका इलाज

कराया जाय। किन्तु उनका एक ही उत्तर रहा कि डाक्टर छगन्नाथजी इलाज कर रहे हैं और जो बीमारियाँ होती गईं, वे मिटती गईं। नई बीमारी हो जावे, उसका वे क्या कर सकते हैं। मुझे उन पर पूरा विश्वास है और वे बड़े परिश्रम और प्रेम से मेरा इलाज कर रहे हैं। अतः जो इलाज हो रहा है, वही चालू रक्खा जाय। इतना कहने पर भी हमसे न रहा गया। डा० रामनारायणजी तथा वैद्य नर्वदा-शंकरजी तो यहां पर हमेशा आते ही थे क्योंकि उनके साथ हमारा घर का सा सम्बन्ध है। इनके अतिरिक्त डाक्टर हेनरी, डा० रविशंकरजी, यति श्री दलीचन्दजी महाराज, डा० मोतीसिंहजी खिमेसरा आदि को बुलाकर बतलाया तो उन लोगों की भी यही सम्मति हुई कि जो इलाज चालू है, वही रक्खा जाय। लेकिन जब दस्तों की बीमारी बढ़ने लगी, शक्ति भी दिन प्रति दिन क्षीण होने लगी, तो हमने तार देकर बम्बई के प्रसिद्ध डाक्टर ए० सी० दास को अमृतलाल भाई की मारफ़त बुलवाया। इन्हीं डाक्टर महोदय ने सं० १९८७ में कोठारीजी का असाध्य बीमारी से छुटकारा कराया था। उक्त डाक्टर साहब पौष शुक्ला १ को यहां पर आ गये और दो दिन तक रात दिन परिश्रम कर अनेक औषधों से उपचार किया। यहां तक कि १५-२० मिनट में दवाई बदलते रहते थे और भी कई प्रयत्न किये लेकिन दस्त होने बन्द न हुए।

कोठारीजी की असाध्य अवस्था

पौष शुक्ला १, २ की रात्रि हम लोगों ने जिस कष्ट के साथ बिताई, वह हम ही जानते हैं। परमात्मा ऐसी मुसीबत दुश्मन को भी न देवे। उक्त डाक्टर साहब ने खाने पीने तथा सोने की परवा न करते हुए रात दिन बड़ी लगन एवं दिलचस्पी से इलाज किया। परन्तु 'टूटी को बूटी कहां' कुछ भी सफलता न हुई। दस्तों की संख्या सौ डेढ़ सौ के करीब हो गई, तो हम से न रहा गया। डाक्टर साहब तीन बजे रात को बागोर की हवेली, जहां उन्हें ठहराया गया था, चले गये थे। ऐसी हालत देख मैं और हरनाथसिंहजी महता मोटर लेकर बागोर की हवेली गये। वहां डाक्टर साहब से बातचीत की।

कई ज्योतिषी वगैरह से पूछा तो उन्होंने कहा कि कोठारीजी का ७८ या ८१ वाँ वर्ष घातक है। लेकिन ७६ वे वर्ष को किसी ने घातक नहीं बतलाया। सारी बीमारी मे अनेकों व्रत, पूजा, पाठ करवाये। परमात्मा से सैकड़ों तरह की प्रार्थनाएँ कीं। मैंने तो अन्तःकरण से अनेकों बार प्रार्थना की—हे प्रभो, कोठारीजी की जगह मुझे मौत दे दे, परन्तु मुझे ऐसा दुःखद दृश्य न बता किन्तु मेरे पापोदय से कोई भी प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई और अन्त में रोमाञ्चकारी और दुःखद दृश्य मेरे इन्हीं

पापी नेत्रों को देखने पड़े। सारी बीमारी में मुझे तो पूरी हिम्मत रही कि यह दुष्ट कराल काल मेरे घर के रत्न को इसी वर्ष न छीन लेगा। किन्तु तृतीया के भोर में उक्त डाक्टर दास ने ज्यो ही हरनाथसिंहजी से कहा कि कोठारीजी की हालत अच्छी नहीं है। केस होपलेस (Hopeless) हो रहा है और मेरे कण्ट्रोल (वश) से बाहर है। अब मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूँ। इन वाक्यों को सुनते ही मेरा तो रहा सहा धैर्य भी जाता रहा और वहा से रोते हुए अपने घर की राह ली। क्योंकि 'छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति'—दु ख मे दु ख तथा अन्य कई असुविधाएँ उत्पन्न होती हैं। जल में डूबते हुए को तिनके का सहारा भी ग्राह्य होता है। इसी के अनुसार हमने वापस डा० छगन्नाथजी का आश्रय लेना उचित समझा। बागोर की हवेली से लौटते समय मैं और हरनाथसिंहजी डा० सुन्दरलालजी को लेने उनके घर गये। परन्तु वे चन्द्रसिंहजी के बालक की तबियत खराब होने से वहाँ गये हुए थ। अत नहीं मिले। लाचार हम घर आये। पिताश्री को हरनाथसिंहजी ने सारा हाल कहा। वे शफ़ाखाने गये और छगन्नाथजी को एकदम बुला लाये। वापस उनका इलाज शुरू किया। उनके इलाज से उसी दिन कुछ समय के लिये शान्ति मालूम हुई। तब आपने मुझे तथा गिरधारीसिंह जी को दिन के एक बजे फ़रमाया कि तुम दोनो महलों में जाकर श्रीजी हुजूर के दर्शन कर आओ क्योंकि उसी दिन जयसमुद्र पधारना हो रहा था। लेकिन हम नहीं गये। शाम को ५ बजे आकर डाक्टर साहब ने हालत देखी और उन्होंने भी एकदम असमर्थता प्रकट की। यह सुन हमारा सारा घर शोक-सागर मे डूब गया और मरी दशा को या तो परमात्मा जानना था, या मैं ही जानता था। हाय वे घडियाँ मुझ पर कैसी बीती थीं।

इस समय मुझे हस्तरेखा शास्त्र के ज्ञाता हमीरलालजी मुरडया LL B की भविष्यवाणी याद आ गई। उन्होंने मेरे जन्मदिन पौष कृष्णा १० को कहा था कि इस जनवरी के पहले हफ़्ते मे तुम्हे एक बडा भारी (Shock) सदमा गुजरेगा। उनकी भविष्यवाणी अक्षरश सत्य निकली। अत उसका स्मरण आते ही मेरे होश उड गये। मेरे जीवन मे पितामह के स्वर्गवास से बढकर विशेष प्रहार विधाता मुझ पर क्या करेगा, यह सोचते ही मैं अपने को न सभाल सका।

कोठारीजी का देहावसान।

इस दु खद स्थिति में जब हम सब हताश हो गये, हमारी आशाएँ निराशा में परिणत हो गई, बडे बड़े डाक्टर वैद्य हार गये, तब सब को प्रतीत होने लगा कि काल अजेय है। इस दुष्ट पर किसी का वश नहीं है। हमारे लिये उस निकृष्ट दिन का उदय हो चुका है। हमारे घर का सूर्य अस्त होने वाला है। तब पिताश्री ने दो हजार रुपये की थैली

निकाल उनके सामने रख उनका हाथ लगवाकर अर्ज की कि आप फ़रमावें तो इस रकम के व्याज से कोई पुण्य कार्य किया जाय या फ़रमावें तो अभी पुण्य कर दी जाय। पितामह तो शान्त चित्त से सचेत अवस्था में लेटे हुए थे। अतः उन्होंने फ़रमाया कि जो चाहो सो करो। पूज्य पितामह की टकटकी तो सामने रखे श्री परमेश्वरों तथा मेवाड़नाथ के चित्र की ओर लग रही थी। कोई संसारी झंझट उनके सम्मुख नहीं था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे श्री परमेश्वरों के चरणों मे मन को एकाग्र तथा शान्त किये हुए उनमे ही अपनी आत्मा की ज्योति मिला रहे हों। कोठारीजी के पास में हम घर वालों के अतिरिक्त वैद्य नर्वदाशंकरजी, डा० रामनारायणजी, दधिवाडिया करनीदानजी और रतनलालजी वापना आदि सज्जन तो हमेशा ही उपस्थित रहते थे। नर्वदाशंकरजी समय समय पर गंगाजल अरोगाते (पिलाते) रहे। धर्म पुण्यादि किया जाता रहा। रामकुँवरजी गीता का पाठ और रतनलालजी नमोकार मंत्र, ईश्वरीय भजन आदि सुनाते रहे। मेरे जैसा दुष्ट तथा क्षुद्रात्मा अपने आपको भूल गया। इस अन्तिम समय, जिस समय की सेवा फिर स्वप्न मे भी प्राप्त होने वाली नहीं थी, अपनी सुधबुध को भुला सारी रात रोने-पीटने मे ही व्यतीत की। अमीन भूपालसिंहजी मेरे पास बैठे रहे। भाई हरनाथसिंहजी तथा सवाईसिंहजीने भी सारी रात हमारे साथ संकट में ही काटी। दरीखाने में करीब १००-१५० सगे सम्बन्धी अहलकार आदि प्रेमी सज्जनवृन्द उपस्थित थे। मुझे कुछ भी चेत न था, किन्तु परमपिता परमात्मा के अनुग्रह से या पूर्वजों के पुण्य से उस समय करीब ११ बजे मुझे होश आया और पितामह के दर्शन कर हाथ मे जल लेकर चरणों को स्पर्श कर चरणामृत पान किया। वे अमृत की दो बूँदे मेरे लिये हमेशा को थीं। अब आज वे चरणामृत की बूँदें पान करने को स्वप्न मे भी कहां मिल सकती हैं। सवा बजे तक इस संकट में हम सबने रात्रि विताई कि सहसा लोगों के चलने की आवाज़ सुनाई पड़ी। मै ड्योढ़ी के मकान से बाहर निकलकर क्या देखता हूँ कि नर्वदा-शंकरजी इत्यादि अश्रुपूर्ण नेत्रों से खड़े हैं। बस, सब कुछ हो चुका। मेरा आलंबन, राज्य का सच्चा सेवक, स्वामिभक्त, कुटुम्बियों का आधार, हमारे घर का उजियाला सदा के लिये लोप हो गया। हाय! वज्रपात हो गया। विधाता ने अपनी करनी में कुछ भी बाकी न रक्खी। संसार का एक चित्रपट समाप्त हुआ और पितामह इस प्रकार रात्रि के सवा बजे हम सब को रुग्णावस्था में छोड़ स्वर्गवास हो गये।

कोठारीजी की इस बीमारी मे बाईस संप्रदाय की जैन साध्वीजी श्री वल्लभ-कुँवरजी, जो कोठारियों की गली मे कोठारीजी की नई हवेली में रहती थीं और जो बड़ी शान्त सुशीला सती साध्वी आर्या थी, कोठारीजी के प्रति बड़ा आदर रखतीं थीं और

बीमारी में नित्य दर्शन देकर धर्मोपदेश दिया करती। इन्होंने एक दिन २०० बकरों को अभयदान देने के लिये कोठारीजी से कहा। उन्होंने तुरन्त स्वीकार कर लिया और रतनलालजी बापना को कहकर २०० बकरे अमरिया कराये। कुछ बकरे अमरिया करना बाकी रह गये थे तो पौष शुक्ला १ को कोठारी जी ने रतनलालजी को कहा कि बाकी बकरे अमरिया कर दो। दो दिन का झगडा फिर है। वे इस मतलब को समझ गये और उनकी आज्ञा का पालन किया। मैं इस मतलब को नहीं समझा। मुझ जैसे पामर प्राणी को उन महापुरुषों के वाक्यों का मर्म कैसे ज्ञात हो सकता था।

कोठारीजी की बढी हुई असाध्य बीमारी, वृद्धावस्था और इतनी निर्बलता होने पर भी वे अन्तिम समय तक पूरे सचेत रहे और धर्मप्रेम व भगवद्भक्ति को विशेष रूप से बढाते ही रहे। बीमारी में भी प्रतिदिन कई घंटे 'कल्याण' मासिक पत्र को सुनते और शाम को नित्य नन्ददासजी वैरागी से हरि-कीर्तन करवाते। उसे वे बड़े ध्यान से श्रवण करते। 'वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीर पराई जाने रे' यह भजन तो नित्य का पाठ था। हमेशा अन्य भजन और हरि-कीर्तन के प्रारंभ में नन्ददास से यही भजन बडे प्रेम से सुना करते थे, जो नीचे उद्धृत किया जाता है—

वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीर पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तो ये मन अभिमान न आणे रे॥

सकल लोक मा सहुने वन्दे निन्दा न करे केनी रे।
वाच काछ मन निश्चल राखे धन धन जननी तेनी रे॥

समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी पर स्त्री जेनी मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले पर धन नवझाले हाथ रे॥

मोह माया व्यापे नहिं जेने दृढ़ वैराग्य जेना मन मा रे।
राम नामशू ताली लागी सकल तीरथ तेना तन मा रे॥

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज का चातुर्मास यहां पर था। वे दर्शन देने को हवेली पधारा करते। तब शक्ति न होने पर भी पलंग से नीचे उतर आदरसहित उनके दर्शन वन्दन करते थे। ये सब लोग बीमारी बढी बढी कहते थे। परन्तु उनको सावधान और सचेत देखते हुए मुझे उनके आराम हो जाने की पूर्ण आशा थी। मेरी ऐसी आशा निरी मूर्खता पूर्ण सिद्ध हुई। कोठारीजी के मुख-दर्शन से अन्तिम समय तक यह मालूम नहीं हुआ कि ये स्वर्ग की तैयारी कर रहे हैं।

स्वामी की असीम कृपा और सेवक की आदर्श भक्ति का नमूना देखना हो तो कोठारीजी की जीवनी से बढ़कर अन्य कहीं दिखना असंभव है। मनुष्य साधारणतया कई तरह से स्वामि-भक्ति जता सकता है लेकिन जिस अवस्था में मनुष्य अशक्त, तथा असाध्य बीमारी से घिरा हुआ हो, उस अवस्था में आंतरिक भक्ति और ईश्वरदत्त सद्‌बुद्धि के बिना सच्ची स्वामिभक्ति का कायम रहना केवलमात्र सच्चे सेवक की एकनिष्ठ स्वामिभक्ति का ही फल हो सकता है। आपकी बीमारी में गिरधारीसिंहजी का और आपका संघर्ष एक विस्मयोत्पादक समस्या थी। श्री दरबार का विराजना राजनगर था और वे राजनगर के हाकिम थे। अपने पिताश्री की बीमारी से व्याकुल थे। वे उदयपुर रहना चाहते थे। श्री दरबार खावन्दी फ़रमा अनेक बार कोठारीजी की बीमारी में इनके पास रहने के लिये उन्हें भेजते। लेकिन यहां आने पर कोठारीजी हठकर गिरधारीसिंहजी को वापस राजनगर भेजते कि जाओ, श्री मालिकों की सेवा में हाज़िर रहो। यहां जरुरत होगी तो बुला लूंगा। तेजसिंह यहां है ही। गिरधारीसिंहजी ने कई बार इनसे अर्ज की कि श्रीजी हुजूर नाराज़गी फ़रमावेंगे। कई बार हुकुम बख्शा, जब आया हूँ। मुझे यहां रहने दिया जाय। लेकिन कोठारीजी उनको श्रीमालिकों की सेवा में भेज देते। आखिर गिरधारीसिंहजी को पिताश्री की आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ती। बार बार राजनगर श्री मालिकों की सेवा में जाना पड़ता। जब तक श्री दरबार उदयपुर नहीं पधारे, तब तक गिरधारीसिंहजी का स्थायी रूप से उदयपुर में ठहरना न हो सका। उधर गिरधारीसिंहजी राजनगर गये नहीं कि वापस उदयपुर आने की आज्ञा मिलती। कोठारीजी की सेवा में रहने की गिरधारीसिंहजी की हार्दिक इच्छा होते हुए भी कोठारीजी में स्वामि-भक्ति की मात्रा इतनी बढ़ी हुई थी कि वे बराबर उनको वापस राजनगर भेजने के लिये बाध्य कर देते। अंत में श्रीजी हुजूर के बहुत फ़रमाने पर कुछ दिनों बाद वहां का प्रबन्ध गंभीरसिंहजी चौहान के सुपुर्द कर उदयपुर चले आये। गंभीरसिंहजी ने उनके वहां न होते हुए भी सरबराह वग़ैरह का सब इन्तज़ाम सुचारु रूप से कर दिया।

शायद ही कोई दिन बीता हो, जिस दिन श्री दरबार ने कोठारीजी की बीमारी के दिनों में दो चार बार दिन में दरियाफ़त न फ़रमाया हो और गिरधारीसिंहजी से, मुझ से तथा डाक्टर छगन्नाथजी से तो प्रायः आध आध घंटे तक रोज़ाना विस्तार-पूर्वक सारे दिन की हालत दरियाफ़त फ़रमा लेते और साबूदाने के पापड़, अंगूर, संतरे, नारंगी आदि फल कई बार भिजवा कोठारीजी की सार संभाल करवाते रहते। ऐसे दीनदयालु, सहृदय और आदर्श मालिक का मिलना कोठारीजी के पुण्य का ही फल था, अस्तु।

रात्रि के सवा बजे हमारे सिर पर वज्र प्रहार हुआ, जिससे हमारा हृदय चकनाचूर हो गया। रात्रि के पाच घंटे बडी मुश्किल से कटे।

अंतिम दाह-संस्कार।

जहा प्रात काल मे हमेशा चौक में कबूतर चुगते हुए, घोडे हिनहिनाते हुए, गाये दुही जाती हुई दिखलाई देतीं तथा दरवाजे बाहर बग्घी खडी रहती, कोठारीजी कपडे पहन मालिकों क दर्शनों को खुरे से उतरते हुए दिखलाई देत थ, वहा आज सूर्योदय के होने पर न कबूतर चुग रहे हैं, न घोडे हिनहिना रहे हैं, और न गाये दुहती हुई नजर आती हैं, न दरवाजे बाहर बग्घी ही खडी है, न वे वीर सामन्त बग्घी के बिठैया ही हैं। आज इन सब क स्थान पर घर के भीतर स्त्रियो के रोने का करुणानाद, बाहर प्रेमी जनो का समूह और बाजार मे लोगों की भीड दिखाई देने लगी। जहा दरवाजे क बाहर बग्घी खडी रहती थी, वहा मनुष्यो का झुंड और उनके चारो ओर श्वपच (महतर) समूह दृष्टिगोचर होने लगे। साथ ही 'ससरतीति ससार' यह और एक कवि के निम्न श्लोक का चतुर्थ चरण आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूप से आ गया—

वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गा सद्बान्धवा प्रणयनम्रगिरश्च भृत्या।
चेतोहरा युवतय स्वजनानुकूला सम्मीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति॥

एक सम्राट् अपने वैभव पर विचार कर रहा है कि—अहो ! मेरे यहाँ कितने हाथियो का समुदाय घूम रहा है, घोडे कैसे चपल हैं, कैसे उत्तम बन्धुगण हैं, और कैसे नम्र और आज्ञापालक सेवक हैं, चित्त को प्रसन्न करने वाली तथा मन को हरने वाली सुन्दर युवतियाँ हैं और अपने सज्जनो का कैसा अनुकूल समुदाय है। तीन चरणो में ससार के वैभव का दृश्य खिंचा जा चुका किन्तु एक विद्वान् ने चतुर्थ चरण मे यह कहते हुए कि नेत्र मुँद जाने पर कुछ भी नहीं अर्थात् मृत्यु हो जाने पर अपने लिये सब मृत हैं, तीनों चरणों की नश्वरता का उत्तम चित्र खींच दिया है।

ससार की अनित्यता का प्रत्यक्ष रूप सम्मुख आने लगा। हा ! समय एक ही मिला। जिस समय नित्य पितामह मेवाडनाथ क दर्शनो को जाने की तैयारी करते, आज भी उसी समय स्वामी की सेवा मे जाने क बजाय शान्त होकर लेटे हुए हैं। उनकी आत्मा श्री कैलाशवासी भगवान् शङ्कर की सेवा मे पहुँच चुकी है। केवल शरीरमात्र यहाँ रह गया है, सो भी ध्यानस्थ हो, ऐसा मालूम हो रहा है। उसे भी भस्मीभूत करने क लिये हम उद्यत हो रहे हैं। यही शेष रह गया था। आखिर मनुष्यसमुदाय क बीच में होते हुए गिरधारीसिंहजी करुण क्रन्दन करते हुए जहाँ पुण्यशील महापुरुष का शव रक्खा हुआ था, वहाँ पहुँचे। मैं बाहर ड्योढी पर बैठा हुआ रो रहा था। अन्य

सम्बन्धियों के साथ रतनलालजी बापना मुझे भी भीतर ले गये और मेरे इन पापी नेत्रों को पूज्य पितामह के शव के दर्शन करवाये। ज्यों ही उक्त रतनलालजी ने पोशाक पहने हुए कोठारीजी के मूलभूत शरीर को अन्तिम दर्शनों के लिये बिठाया तो मुसकराते हुए भव्य चेहरे से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे कुछ बोलना ही चाहते हों। लेकिन अब वह बोल कहाँ था। मैं दुष्ट जीवित रहा किन्तु मेरा आधार छिन गया। हाय! इस संसार से मेरा पालक सदा के लिये उठ गया। मुझे ये दिन देखने बदे थे। अतः यह सब होकर ही रहा। अब मैं अपने हृदयस्थ भावों को प्रकट करने में असमर्थ हूँ। लेखनी आगे बढ़ने से रुकती है। सारा दुःखद दृश्य मुझे अधीर करता है। पाठक क्षमा करें। आखिर ७ बजते-बजते गंगोद्भव आहाड़ नामक श्मशान को यहाँ से रवाना हुए। वहाँ आपका दाह-संस्कार किया गया। गिरधारीसिंहजी ने उत्तरक्रिया की। हम रोते पीटते खाली हाथ मलते दिन के डेढ़ बजे वापस घर पर आये और उस महापुरुषरहित शून्य हवेली तथा दरीखाने मे आकर बैठ गये। जिस दरीखाने मे हम दौड़ते हुए जाते थे, आज वहाँ रोंगटे खड़े होते हैं। मेवाड़नाथ की अतुल दया से आज भी सब सुख प्राप्त हैं, पितामह की क्षति और स्मृति भुलाने के लिये थोड़े ही काल में श्रीमानों ने अनेक कृपाएँ की हैं। लेकिन वे सुख के दिन मेरी स्मृति से बाहर होने असंभव हैं। अब मैं अपने भावों को कैसे प्रकट करूँ। मैं स्वयं असमर्थ हूँ। उस पुण्यात्मा, पूज्य, पवित्र पितामह की अनुपस्थिति के दुःखद समय में 'फारवस' के सोरठे लिखकर ही इस विषय को समाप्त करता हूँ। पाठक मेरे दुखी हृदय के भावों को इन्हीं से समझ सकेंगे।

लाख लडाया लाड, सुख तेतो सुपने गया।
जाझा दुख रा झाड, फलचा लाग्या फारवस ॥१॥

नैणां बरसे नीर, ज्याँरे सनेही साँभरे।
धरिये क्योंकर धीर, फिरूँ उदासी फारवस ॥२॥

तिहारा बोल तणाह, झणकारा आवे म्हनें।
उपजे घाट घणाह, फेर न देखूँ फारवस ॥३॥

परमात्मा उस स्वर्गस्थ आत्मा को सद्गति एवं चिरशान्ति प्रदान करे, यही मेरे हृदय की प्रार्थना है।

कोठारीजी के पाश्चात्यिक क्रिया कर्म — कोठारीजी के स्वर्गवास होने पर दाह-संस्कारादि पाश्चात्यिक क्रिया सनातन रीत्यनुसार गिरधारीसिंहजी ने की।

श्रीमान् श्रीजी हुजूर का विराजना उस समय जयसमुद्र था। यहाँ पधारने पर माघ शुक्ला १५ संवत् १९९४ को महलों में याद फ़रमाया, सो बुलाने के लिये धर्मसभा से करमान्त्री आया। अत गिरधारीसिंहजी, कोठारी मोतीसिंहजी, दलपतसिंहजी और हम सब महलो मे गये। वहा श्रीमान् महाराणा साहब के दर्शन कर चरणो मे धोक दी। फिर गिरधारीसिंहजी तथा कोठारी मोतीसिंहजी को बीडा बख्श रुख़सत बख्शी। यहा से श्री जनानी ड्योढी मुजरा मालूम करा वापस हवेली आये।

इसके बाद कोठारीजी का क्रियावर नुक्ता (जातिभोज) वैशाख शुक्ला १३ को पचायती नोहरे मे किया गया और इसके दूसरे दिन वैशाख शुक्ला १४ को अन्य जाति तथा व्यवहार वालो को भोज दिया। इन दोनो दिनो मे करीब सवा सौ मन खाड खर्च हुई, जिसमे साढे बारह हजार के करीब रुपये लगे। इस अवसर पर राज्य से २०००) दो हजार रुपये बख्शाऊ और दस हजार रुपये बिना ब्याज बख्शे गये। क्रियावर के दिन सवेरे गिरधारीसिंहजी को पगडी बँधाई का दस्तूर हुआ। उस समय राज्य की ओर से करीब ४५) रुपये का सफ़ेद सरोपाव बख्शा गया। यही नहीं बल्कि जीमन के अवसर पर डेरे, छायावान, बिजली की रोशनी, जल, पेहरा, सवारी के लिये मोटरें, बग्घी, लारिया वग़ैरह की बहुत मदद बख्शी और कोठारीजी की स्वामि-भक्ति पर कृपा फ़रमाते हुए गिरधारीसिंहजी की प्रार्थना स्वीकार फरमा रणवास की बाइयो को भी वैशाख शुक्ला १४ के दिन जीमन के लिये पचायती नोहरे मे भेजा गया।

प्राय राज्य में यह नियम है कि किसी के यहा ऐसे अवसर पर यदि राज से बाइयों को भिजवाया जाय, तो भी वे वहा जीमती नहीं और परोसे को लेकर चली आती हैं। किन्तु गिरधारीसिंहजी की इच्छा थी कि इनको पचायती नोहरे मे जीमने की इजाजत बख्शी जाय और यही अर्ज करवाई तो श्रीजी हुजूर ने ख़ावन्दी फ़रमा स्वीकृति बख्शी। अत राज्य की सब बाइयाँ पचायती नोहरे मे ही जीमीं।

क्रियावर का जीमन गर्मी की मौसम में हुआ था। उन दिनो गर्मी भी विशेष पड रही थी। अतएव कई लोगो ने इस जीमन मे भी बाधा डालने की कोशिश की। किन्तु मेवाडनाथ की कृपा और कोठारीजी के स्नेही एव जातिभाइयो की सहानुभूति से यह सब कार्य शान्तिपूर्वक समाप्त हो गया। इस विशाल प्रबन्ध मे कोई विघ्न खडा नहीं हुआ। ऐसी उग्र गर्मी होने पर भी बीमारी होना तो दूर रहा, किसी का सिर तक नहीं दुखा। कोठारीजी जैसे पुण्यात्मा महापुरुष जिस क्रियावर के भोजन

के आजीवन समर्थक रहे, वह भोज-कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया, यह सव श्री मेदपाटेश्वरों की कृपा का फल था। श्रीमानों ने प्रत्येक कार्य में मदद वख्शाई एवं नंदलालजी ढींकडिया दारोगा फ़राशखाना को छायावान इत्यादि के प्रवन्ध के लिये और हीरालालजी मुरडिया—जो कोठारीजी के आजीवन प्रेमी रहे—के पुत्र सुन्दरलालजी को भी दुरुस्ती इत्यादि प्रवन्ध के लिये हुक्म वख्शाया, सो इन्होंने भी पूरी मदद दी। वाइयों को जीमाने के प्रवन्ध मे गंभीरसिंहजी चोहान, अर्जुनलालजी ढींकडिया असिस्टेन्ट अश्वशाला ने सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए इन्तज़ाम करवाया और इसी प्रकार रोशनलालजी चतुर, रामसिंहजी महता, भूरीलालजी महता आदि अनेक सज्जनों ने भी, जिनके नाम स्थानाभाव से उल्लेख नहीं किये जा सकते—जीमन इत्यादि कार्यों में पूरा परिश्रम किया। इस प्रकार पुण्यशील स्वर्गस्थ आत्मा के इस अंतिम कार्य एवं पाश्चात्यिक भोज कर्म का भी चित्रपट समाप्त हुआ। कोठारीजी की पुण्य स्मृति मे स्मारकरूप गंगोद्भव में इनकी धर्मपत्नी के स्मारक के दाहिनी ओर आठ खंभों की सुन्दर छतरी भी गिरधारीसिंहजी ने वनवाई है।

शोकप्रदर्शक समाचार

पत्र एवं तार

ऊपर कहा जा चुका है कि कोठारीजी की स्वामि-भक्ति, सज्जनता, लोक-प्रियता और धार्मिक प्रेम के कारण मेवाड़ में ही नहीं, किन्तु देश-विदेश मे उनका यश तथा आदर था। आपके स्वर्गवास का समाचार सुनते ही आपके मित्र, कुटुम्वी एवं स्नेही सज्जनों को वड़ा दुःख हुआ। अतः सव की ओर से समवेदना-प्रदर्शक एवं शोक-सूचक पत्र एवं तार आये। उन सव को यहां पर उद्धृत करना अनावश्यक है। इसके सिवाय मुख्यतः इन पिछले वर्षों मे आप जैनसमाज के कार्यों मे विशेष रूप से योग देते रहे हैं। इसलिये कई समाचार पत्रों मे भी आपका संक्षिप्त जीवनचरित्र मय चित्र प्रकाशित हुआ है। उन सव को यहां पर लिखकर पिष्टपेषण करना उचित नहीं। अतः पत्र तथा समाचार पत्रों एवं तारों के कुछ अंश ही यहां पर दिये जाते हैं।

श्री वीराय नमः

शोकसभा

ता० ६. १. ३८ को सायंकाल साढ़े छः वजे नगरसेठ नंदलालजी के सभापतित्व में शोकसभा हुई, जिसमे निम्न प्रस्ताव पास हुआ:—

"स्थानकवासी समाज के स्तंभ श्रीमान् कोठारीजी साहब बलवन्तसिंहजी के स्वर्गवास होने पर उदयपुर श्रीसंघ हार्दिक शोक प्रगट करता है। आपकी समाज के प्रति विविध एवं अनुपम सेवाएँ रही हैं, जिसके लिये यह श्रीसंघ आपका सदा चिर ऋणी रहेगा। परम प्रभु परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति और परिवार को धैर्य प्रदान करें।"

(द०) सेठ नंदलाल
सभापति

श्री श्वे० स्था० जैनशिक्षण-संस्था उदयपुर मेवाड़ के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की सभा हुई, उसमें निम्न प्रस्ताव पास किया गया—

"श्रीमान् कोठारीजी साहब बलवन्तसिंहजी इस संस्था के सभापति एवं अद्वितीय सहायक थे, जिनकी सुकृपा से यह संस्था फल फूल रही है। आपने अनेक कष्टों का सामना करके इस संस्था का संचालन बड़ी योग्यता से किया, जिसकी यह संस्था ऋणी है। आपका स्वर्गवास होने पर हम लोग हार्दिक शोक प्रगट करते हैं और परम प्रभु अर्हन्त देव से प्रार्थना करते हैं कि स्वर्गस्थ आत्मा को सद्गति तथा शान्ति एवं उनके परिवार को धैर्य प्रदान करें।" पांच मिनट तक णमोकार मंत्र का ध्यान करके सभा विसर्जित की गई।

आपके शोक में इस संस्था का कार्य दो दिन तक बंद रक्खा गया।

इसी संस्था की प्रबन्धकारिणी की बैठक ७, ८ मार्च १९३८ को हुई। उसमें शोक का प्रस्ताव हुआ।

शोक प्रस्ताव, पत्र आदि।

"श्री जैन शिक्षण-संस्था के सभापति श्रीमान् कोठारीजी साहब बलवन्तसिंहजी के देहावसान पर यह समिति हार्दिक शोक प्रकट करती है। आपकी इस संस्था के प्रति अपूर्व सेवाएँ रही हैं, जिसके लिये यह संस्था सदैव आपकी आभारी रहेगी। आप इस संस्था के प्राण थे। अतः आपका आभार वर्णनातीत है। आपके सुयोग्य सुपुत्र गिरधारीसिंहजी साहब कोठारी आदि सब ही कुटुम्ब के साथ यह कमेटी समवेदना प्रकट करती हुई आपके वराज श्रीमान् का अनुकरण करते हुए अपना कर्त्तव्य पालन करने की तरफ पूरा लक्ष्य रक्खेंगे, ऐसी पूर्ण आशा है।"

पन्नालाल बाकड़िया,
आ० मंत्री,
श्री जैनशिक्षण संस्था।

रतलाम संघ की ओर से जो पत्र आया, उसकी नकल दी जाती है —

श्रीमान् राजश्री कोठारीजी साहव गिरधारीसिंहजी साहव कुँवरजी श्री तेजसिंहजी साहव, मुकाम उदयपुर।

जय जिनेन्द्र,

हमारी साधुमार्गी समाज के स्तंभ, मेवाड़राज्य के कुशल संचालक, पीढ़ियों से स्वामिभक्त, राज्य और प्रजा के सम्मानित राज्ये श्री कोठारीजी श्री वलवन्तसिंहजी साहव के स्वर्गवास के दुःखद समाचार श्रीमान् सेठ वर्द्धभानजी साहव के तार द्वारा पाकर रतलाम श्रीसंघ को अत्यन्त खेद हुआ। मरहूम जैन साधुमार्गी समाज की वहुत ही सेवा करते थे। इतना ही नहीं, समय-समय पर मार्ग-दर्शक भी वनते थे। आप वयोवृद्ध थे। वैसे ही आपके विचार भी गंभीर एवं अनुभवपूर्ण थे। ऐसे सुयोग्य नेता का हमारी स्थूल दृष्टि से लुप्त हो जाना समाज के लिये वहुत वड़ी, जो निकट भविष्य मे न पुराये, ऐसी खामी पड़ी है। परन्तु काल कराल का अविच्छिन्न नियम है कि वह किसी देहधारी को नहीं छोड़ता है। अतः उनके उत्तराधिकारी आप सव साहवान से समवेदना प्रकट करता हुआ यह संघ परमात्मा से प्रार्थना करता है कि मरहूम के स्थान की पूर्ति आपके द्वारा शीघ्र हो।

(७ जनवरी सन् १९३८ ईस्वी)

समरथमल मालवी
नाथूलाल सेठिया,
सेक्रेटरी श्रीसंघ, रतलाम।

पूज्य श्री हुक्मीचन्द्रजी महाराज के हितेच्छु श्रावकमंडल रतलाम की वैठक आश्विन सं० १९९५ में मोरवी काठियावाड़ में हुई। इस अवसर पर गिरधारीसिंहजी भी मोरवी पूज्य श्री के दर्शनों को गये और मंडल के सदस्यों ने इनको ही कमेटी का प्रेज़िडेन्ट वनाना चाहा, किन्तु स्वर्गवासी कोठारीजी के शोक-प्रदर्शन प्रस्ताव इसी वैठक मे पास होने वाला था, अतः गिरधारीसिंहजी ने कहा कि ऐसे शोक-समाचार को मैं पढ़ने में असमर्थ हूँ और दूसरे किसी सज्जन को सभापति वनाने के लिये आग्रह किया। अतः सेठ वहादुरमलजी वांठिया भीनासर वालों को प्रेज़िडेन्ट वनाया गया और निम्न प्रस्ताव पास हुआ—

'इस संस्था के प्राणस्वरूप एव गत कई अधिवेशनो के सभापति उदयपुर-निवासी श्रीमान् राज्ये श्रीकोठारीजी श्रीवलवन्तसिंहजी साहब के देहावसान पर यह मडल अपना हार्दिक शोक प्रगट करता है और श्रीमान् के कुटुम्बियो के प्रति अपनी समवेदना प्रकट करता है।

श्रीमान् कोठारीजी साहब की सामाजिक सेवाएँ अत्यधिक प्रशसनीय थीं। वृद्धावस्था एव राज्य कारोवार का बोझा अत्यधिक होते हुए भी आप मडल एव समाज के कार्य मे पूर्णरूपेण भाग लेते थ। आपकी क्षति की निकट भविष्य मे पूर्ति होना कठिन है किन्तु आपके उत्तराधिकारी श्रीमान्-कोठारीजी गिरधारीसिहजी साहब भी सुयोग्य तथा धर्म एव समाज क प्रति प्रीति-भाव धराने वाले हैं। ये मरहूम के रिक्त स्थान की सब प्रकार पूर्ति करें, ऐसी यह मडल कामना करता है।'

वीकानेर के सुप्रसिद्ध एव दानवीर सेठिया अगरचदजी भेरुदानजी अपने पत्र मे लिखते हैं कि "वयोवृद्ध श्रीमान् कोठारीजी साहब क स्वर्गवास से समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जो अभाव प्रतीत हो रहा है, उसकी पूर्ति क्या कभी सभव है। ऐसी दारुण घटना से हम सब लोग अभिभूत हैं। आप लोगो को जो अपार शोक होगा, उसकी कल्पना नहीं हो सकती, इत्यादि।

स्थानीय श्रीसघ मे श्रीमान् कोठारीजी साहिब का निधन समाचार अत्यन्त शोक एव दुख के साथ सुना गया।"

श्री राजकोट स्थानकवासी जैन मोटा सघ लिखता है कि "आपना पिता श्रीमान् कोठारीजी बलवन्तसिंहजी साहेबना अवसान निमित्ते आप तथा आपना कुटम्बी जनो ऊपर जो महान आफत आवी पडी छे तेमा सहानुभूति दरसाववा माटे आईना सघनी सम्मिति तरफ थी नीचे मुजब ठहराव सर्वानुमते करवामा आव्यो।

दीवान साहेब बलवन्तसिंहजी कोठारी साहेब जेमणे उदयपुर मेवाड जेवा राज्यना चार राजाओ नी सेवा पोते आधुनिक उच्च केलवणी वलीघा छता पोतानी वाहोसी सत्यप्रियता अने राज्य प्रजा ने सतत सुख कर थाये। तवी रीत बनावी तेमज अनेक साधुमुनि महाराजाओ ना सतत परिचय मा रही पूर्ण सेवा बनावी पोत एवा मोटा दर्जा पर छता धर्म करणी मा एटला दानशीयल तप अने भावना बीजाओने दर्शात रूप थाय। एवी रीते आचरणता रही पोतानी अने चतुर्विध सघ नी जे सेवा बजावी छे तेनो स्मरण करता श्रीसघ ने तेवा पुरुष नी न पुराय तवी खोट पडी छे। तेथी सघ नी आ समिति अतिशय दिलगीरी दर्शावे छे अने तनो आत्माने परमात्मा

शान्ति मले तेवुं इच्छतां तेना कुटुम्बिओना तेमनो वियोग सहन करवानू वल आवे। एम श्री प्रत्ये प्रार्थना करीए छीए" । सं० १६६४ ना पोस वद ५ ता० २०. १. ३८

राजकोट रावसाहव मणिलाल वनमाली शाह
आनरेरी सेक्रेटरी, स्थानकवासी जैनमोटा संघ, राजकोट

घाटकोपर सार्वजनिक जीवदया खाते से जगजीवनदयालजी शाह जोयन्ट सेक्रेटरी लिखते हैं—

श्रीमान् कोठारीजी साहेव गिरधारीसिंहजी उदयपुर ।

अमो ने जाणता घणीज दिलगीरी उत्पन्न थई छे के श्रीमान जीवदयाप्रेमी दानवीर सेठ वलवन्तसिंहजी साहव नो अवसान थी आ संस्था ने मोटी खोट पड़ी छे । मरहूम श्री आ संस्था ना आद्य प्रमुख तथा संस्था ना शरुआत करवामां अग्रगन्य हता तेवो श्रीये आ संस्था नी सेवा तन मन धन थी करी छे जेनी आ संस्था नी कार्यवाहक मंडलनी सभा माहन सर नोद ले छे तथा तेओ श्री नी अवसान माटे आ सभा अत्यन्त दिलगीरी प्रदर्शित करी छे सद्‌गत् का अमर आत्मा ने अनन्त शान्ति मले तेवी प्रार्थना करे छे। लिखी सेवको जगजीवनदयाल शाह जोयन्ट सेक्रेटरी ।

पालनपुर श्रीसंघ लिखता है कि—

पालनपुर, गुजरात
ता० २०, १, ३८

श्रीमान् कोठारीजी गिरधारीसिंहजी साहव

मुकाम उदयपुर योग्य

श्री पालनपुर से लिखी महता लालभाई पीताम्बर भाई कोठारी चिम्मनलाल भाई मगनभाई आदि श्री जैनसंघ का जय जिनेन्द्र । आप श्री के परम पूज्य प्रातःस्मरणीय वयोवृद्ध पिता श्री कोठारीजी श्री वलवन्तसिंहजी साहव का स्वर्गवास ता० ५ जनवरी सन् १६३८ के रोज हो जाने का जैनसमाचार में पढ़कर हमको वहुत दिलगीरी पैदा हुई है। श्री कोठारीजी साहव के स्वर्गवास से आपको तो वयोवृद्ध पिता श्री की पूरी खोट हुई है । मगर सारे जैनसमाज में सच्चा सलाहकार, शान्तिस्थापक, दयालु और निरभिमानी पवित्र पुरुष की पूरी खोट पड़ने से दिलगीरी पैदा हुई है। हमारे पुण्योदय से मरहूम कोठारीजी साहव ने स्वर्गगमन के चार माह पूर्व

हमारे नगर को फक्त २४ घंटे के लिये पावन करके हमको आपकी सेवा करने का शुभ समय प्रदान किया, यह हमारे असीम पुण्य की बात है। परम कृपालु जगत् संचालक देव मरहूम कोठारीजी साहब की सद्‌गत आत्मा को शान्ति बख्शे, यह हमारी अंतिम प्रार्थना है। आप श्री ने और अन्य परिवार ने मरहूम कोठारीजी साहब की सम्पूर्ण सेवा लम्बे अर्से तक करते २ उनके सब सद्‌गुण आप श्री को बख्शीश देकर स्वर्गवास पधारे, ऐसा सद्‌गुण की वृद्धि हो ऐसी हमारी जगत् नियन्ता से प्रार्थना है।

लिखी सेवको लाल भाई पीताम्बर भाई मगन भाई।

मदरास से ताराचंदजी गेलडा आनरेरी सेक्रेटरी श्री स्थानकवासी जैन बोर्डिंग लिखते हैं कि—

१६ व्यंकटाचल मडलीस्ट
मद्रास
ता० २० १ १६३८

"श्रीमान् माननीय गिरधारीसिंहजी साहब की पवित्र सेवा में योग्य लिखी मद्रास से ताराचंद गेलडा का जय जिनेन्द्र विदित हो। श्रीमान् माननीय ओसवाल वंश उजागर धर्मप्रेमी स्वर्गीय कोठारीजी साहब श्रीबलवन्तसिंहजी साहब के स्वर्गवास का समाचार सुनते ही अत्यन्त दुःख हुआ। समाचार मिलते ही शोक सभा की गई तथा निम्न प्रस्ताव पास हुआ—

ओसवाल वंश उजागर श्रीमान् स्वर्गीय कोठारीजी साहब की मृत्यु पर यह सभा अत्यन्त खेद प्रगट करती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि स्वर्ग में मृत आत्मा को शान्ति प्राप्त हो तथा आपके विरह से दुःखी आपके परिवार के प्रति गहरी समवेदना प्रगट करती है। कोठारीजी साहब की मृत्यु के कारण आप ही को दुःख नहीं किन्तु सारी समाज को महान् दुःख है। कारण मात्र यही है कि अब इस स्थान की पूर्ति होना महा असंभव है। अन्त में आप से यही नम्र निवेदन है कि धैर्य धारण कर शोक का परित्याग करें। योग्य सेवा।"

भवदीय
ताराचन्द्र गेलडा

कोठारीजी के स्वर्गवास होने पर समाज की ओर से जो तार आये, उनमें से रतलाम हितेच्छु जैन श्रावक मंडल प्रेसिडेन्ट हेमचंद्रजी भाई भावनगर तथा नवीन मित्र श्री सर पट्टनीजी के तारों की नकल दी जाती है—

(1)

RUTLAM,
Dated 6 - 1 - 1938.

To

Kothariji Girdhari Singhji Sahib,
Udaipur.

Extremely pained knowing Kothari Sahib demise. Our community lost a precious jewel. Pray God for his soul's shanti and fulfilment of his place by your honour.

President Hitechhu Mandal

(2)

Bhavnagar Para.
6 - 1 - 1938.

Girdhari Singhji Kothari,
Udaipur.

Extremely grieved. Jains have lost one great man in Balwant Singhji Sahib. Our sympathy is with family in very sad bereavement.

Hemchand,
PRESIDENT.

(3)

BHAVNAGAR,
Dated 6 - 1 - 1938.

Kothari Girdhari Singhji,
Udaipur

Am extremely grieved to know death of your dear father. Please accept my heartfelt condolences and sympathies in your sad bereavement.

Pattani

समाचार-पत्र

कई हिन्दी तथा अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध पत्रों में कोठारीजी के स्वर्गवास पर शोकसूचक समाचार एवं उनकी संक्षिप्त जीवनी चित्रसहित प्रकाशित हुई है। उनमें से जिन समाचारपत्रों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, वे ये हैं—बम्बई समाचार, जैन प्रकाश, ओसवाल सुधारक, घाटकोपर जीवदया खाते का मुखपत्र, हितेच्छु श्रावक मंडल का निवेदनपत्र, टाइम्स ऑफ इन्डिया, सेन्टरल इन्डिया रॉयल टाइम्स।

जो लेख समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए, उन्हें पूर्णरूप से न देते हुए कलेवर बढ़ जाने के भय से केवल उनका कुछ अंश उद्धृत किया जाता है।

(१) बम्बई समाचार ता० २१ जनवरी १९३८ ईस्वी के अंक में लिखा है कि "उदयपुर स्टेटना भूतपूर्व दीवान जैन समाजनी एक महान् विभूति श्रीमान् बलवन्तसिंहजी साहब कोठारी नु ७६ वर्षनु लम्बा अने यशस्वी जीवन काल पछी ता० ५-१-३८ ना रोज अवसान थयो छे। एम ना अवसान थी स्थानकवासी समाज नेंज नहीं पण आखा मेवाड ने पोताना एक स्नेही जन नी खोट गई छे। एनी भव्य आकृति शाही दमाम उच्च व्यक्तित्व अने आदर्श व्यवहार थी एओ मध्यकालीन क्षात्रतेजनी मूर्ति समा हता एवो श्री बहादुर निष्कपटी मायालु ने धर्मचरित्र हता।

एमनी शमशान यात्रा नो एक अद्वितीय देखाव हतो। एओने सर्व चाहता हता। प्रजा तेमज राजा वचेनी ए ओ श्री एक कडी हता एमनी शमशान यात्रा मा अमीरो अधिकारियों ने जनसमुदाय हजारोनी संख्या मा एम ने अन्तिम मान आपवा भेगा थया हता हिज हाईनेस महाराजा साहेब बहादुर माँदगी मा समाचार पूछवा माटे कोठारीजी नी हवेली पधारिया हता। अने शान्त्वना आपी हती कोठारीजी एमनी पाछल एक पुत्र एक पुत्री पोत्रो अने दोहित्रोनू एक मोटो कुटुम्ब मुकी गया छे।"

(२) जैनप्रकाश ता० १३ जनवरी सन् १९३८ के अंक में कोठारीजी का संक्षिप्त जीवनचरित्र मय चित्र के देते हुए संपादक महोदय लिखते हैं कि "आपके निधन से स्थानीय समाज को ही नहीं, सारे मेवाड को एक अद्वितीय पुरुष की मृत्यु सी चोट लगी है।

जन्म से आप ओसवाल जैन थे मगर आपकी भव्य आकृति, शाही दमाम, उच्च व्यक्तित्व और आदर्श व्यवहार से आप मध्यकालीन क्षात्र तेज की प्रतिमूर्ति थे। आप बहादुर, निष्कपट, और सच्चरित्र थे। आपने प्राचीन कुरूढ़ियों को मन, वचन और कर्म से तिलाञ्जलि दी थी। इस युग में आप कर्मवीरता की आदर्श

मूर्ति थे ………। आपका सारा जीवन आदर्शता से परिपूर्ण था। आप स्थानकवासी समाज ओसवाल समाज ही नहीं, सारे मेवाड़ के सिनारे थे।"

(३) घाटकोपर जीवदया खाता के मासिक पत्र में कोठारीजी का चित्र देते हुए लिखते हैं कि "दानवीर कोठारीजी साहब श्री बलवन्तसिंहजी साहब ऐ० ओ० श्री० ए० आ संस्था मे तन, मन, धन थी मदद करी छे।"

(४) ओसवाल सुधारक ता० २० जनवरी सन् १६३८ ईस्वी के पत्र में कोठारीजी का संक्षिप्त जीवनचरित्र देते हुए लिखते हैं कि ओसवाल समाज के गौरव एवं वयोवृद्ध ताजीमी जागीरदार श्रीयुत कोठारीजी बलवन्तसिंहजी के स्वर्गवास से समाज और जाति ही का नहीं किन्तु मेवाड़राज का एक देदीप्यमान नक्षत्र सदा के लिये अस्त हो गया। जिस किसी ने भी आपकी आन और शान को देखा है, वह आपके निधन पर दुखी हुए विना नहीं रह सकता। आपकी गणना उन प्रतिभाशालियों में थी जिनका प्रभाव अपने परिजनों, देश एवं जाति तक ही सीमित नहीं था किन्तु वह सभी वर्ग एवं श्रेणी के लोगों पर दूर दूर तक फैला हुआ था। आप उन विशेष भाग्यशालियों मे थे, जिनको सांसारिक सब ही भौतिक सुख और ऊँचे से ऊँचा सम्मान प्राप्त था। आप हिन्दुवा सूर्य महाराणा के ताजीमी सरदार थे। आप अपने परिवार मे पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और इसी प्रकार अपनी पुत्री के परिवार मे चार पीढ़ी के सुख को देख रहे थे। आपके परिवार के सब ही व्यक्ति राजसम्मानित हो ऊँचे ऊँचे पदों को सुशोभित कर रहे हैं। आप स्वयं वर्षों तक मेवाड़ राज्य के दीवान रहे और अन्त समय तक हाई कोर्ट के जज थे। आपके जीवन काल में मेवाड़ राज्यसिंहासन पर चार महाराणा विराजे। सब महाराणा आपकी हवेली पर पधारे और समय समय पर आपके सम्मान की वृद्धि करते रहे। वर्तमान महाराणा साहब ने आपको ताजीम और बीड़े का सम्मान दिया और आपकी बीमारी के समय हवेली पर पधार कर आरामपुर्सी की। यह ऐसा सम्मान था, जो विरलों को प्राप्त होता है। देशी राज्यों में जो ऊँचे से ऊँचे सम्मान मिल सकते हैं, वे सब ही आपको प्राप्त थे किन्तु सब से बढ़कर आपका व्यक्तित्व था जो अपनी आन और शान में अनुपम था। जो कोई भी आपके संसर्ग में आता, उस पर आपका प्रभाव पड़े विना नहीं रहता। आपका जीवन बड़ा ही नियमित था और उसमें क्षात्र तेज सी आभा थी। आपको अपने पूर्वजों की मान-मर्यादा और गौरव का बड़ा ध्यान था। आपके विचार स्पष्ट और निर्भीक होते थे। आप अपनी बात के धनी और अपने विश्वास के दृढ़ थे। आपकी जो कुछ भी मान्यता थी, उसमें पूरी सचाई थी और उसको प्रगट करने में आप तनिक भी संकोच नहीं करते थे। विचारों की सचाई एक ऐसा गुण है, जो मनुष्य को ऊंचा उठाता है और अपने प्रतिपक्षी को

भी अपनी ओर आकृष्ट करता है। जो लोग आपके विचारों से सहमत नहीं होते थे, वे भी आपकी सचाई और स्पष्टवादिता के कायल थे और आपके इस गुण की प्रशंसा किये बिना नहीं रहते थे। आप अपने सिद्धान्त के पक्के थे।

आपकी आकृति भव्य और रहन-सहन प्राचीन ढंग का था। आपको देखकर सहसा मध्य युग के सामन्त का स्मरण हो आता था। आपको विद्वानों से बड़ा प्रेम था और उनका बड़ा आदर किया करते थे। राज्य-दरबार में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और सब ही दरबारी आपका आदर करते थे। आप पूर्ण राजभक्त थे। आपकी राजनीति आपके पिता के समान स्पष्ट, निर्भीक और राज्य-भक्ति-पूर्ण थी। यही कारण था कि प्रत्येक महाराणा की आप पर पूर्ण कृपा रही। वर्तमान महाराणा साहब ने आपको पूर्ण सम्मान के पद पर पहुँचाकर आपकी सेवा को अपनाया।

आपका शरीर सुडौल, दृढ़ और स्वस्थ था। मृत्यु के समय आपकी आयु करीब ८० वर्ष की थी। किन्तु आँख, कान, दाँत आदि अंगों पर वृद्धावस्था के कोई चिह्न नहीं थे। यही दशा आपके मस्तिष्क और स्मरण-शक्ति की रही। अन्त समय तक आप सामाजिक, धार्मिक एवं राजकीय कार्य सुचारु रूप से करते रहे हैं।

बीमारी की उग्र दशा में भी आपने अपने मुँह से उफ़ तक नहीं किया। बल्कि अन्त समय तक नित्य और नैमित्तिक सब ही कर्म करते रहे। यह आपके नियमित और संयमी जीवन का प्रभाव था। आपका यह जीवन आज कल के मनुष्यों के लिये आदर्श और अनुकरणीय था। मृत्युशय्या पर भी आपके चेहरे की कान्ति भव्य थी और शरीर सिंह के समान देदीप्यमान था।

आपका धार्मिक विश्वास और प्राचीन संस्कार आपकी अनुभूति पर आधारित थे। आप जैनमतावलम्बी होते हुए अन्य धर्मों के सिद्धान्तों को समझते थे और उनका आदर करते थे। किन्तु आप साधु-संस्थाओं के अन्धविश्वासी नहीं थे। आप प्रत्यक्ष चारित्र को ही मान देते थे और उसे ही अपना लक्ष्य मानते। चारित्रवान् साधुओं के आप बड़े भक्त थे। आपका व्यक्तित्व समाज का गौरव था। आपकी रथी का दृश्य बड़ा ही करुणाजनक था। किसी के मुँह से 'ओसवाल जाति का गौरव', किसी के मुँह से 'समाज की ढाल' तो किसी के मुख से 'शान का बाँका' आदि शब्द निकल रहे थे।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध एवं विश्वविख्यात पत्र 'टाईम्स आफ इन्डिया' ता० १८ जनवरी सन् १९३८ के पत्र में और इसी प्रकार सेन्ट्रल इन्डिया रॉयल टाईम्स लिखते हैं कि—

Times of India—

FORMER DEWAN OF UDAIPUR DEAD.

Mr. K. Balwant Singhji

(From a correspondent)

The death occured here yesterday of Mr. Kothari Balwant Singhji formerly Dewan of Udaipur. He was born in 1863 and belonged to a distinguished family of administrators. He served under four Maharanas of Udaipur from whom he received the highest honours. He served the late His Highness Maharana Fatehsinghji as dewan for eleven years and again later for five years. He also enjoyed the confidence of the present ruler.

C. I. R. Times—

LATE KOTHARI BALWANT SINGHJI

Mewar loses tried Minister

(From our correspondent)

Kothari Balwantsinghji Ex-Minister of Udaipur, Mewar has passed away full of years and honours at the age of 76.

He was a Tajimi Jagirdar belonging to a family which held ministership for generations. He had served four rulers of the state with such loyalty and devotion that each of them bestowed upon him complete confidence and fresh honours.

His keen natural intelligence and great memory belied the fact that he had very little academic education. He joined state service at an early age. Having been at the head of several deptts, he served the late H. H. Maharana Sir Fatehsinghji Sahib Bahadur for 16 years as Minister. He was in harness till the last days being the judge of the State High Court.

He was Oswal jain by birth But his stalwart figure and Majestic appearance conspired with his supreme dignity and charm of manner to give the impression of a medieval noble Nor were the high qualities of those historic personages wanting in him

He was courageous and sincere, generous and devout In this age of heterodox beliefs, he upheld the orthodox Hindu principles in thought word and action and could assign good reasons for doing so

His funeral procession was a memorable sight He was universally loved and respected Nobles Officers and the public thronged to the procession to pay him their last respects

His Highness the Maharana Sahib Bahadur honoured him up to the end by paying him a visit during the last illness

Kotharıjı leaves behind him one son, one daughter and a number of grand children Many of them occupy responsible positions in the state administration

कोठारीजी का व्यक्तित्व ।

कोठारीजी धर्मनिष्ठ, भगवद्भक्त, बुद्धिमान, प्रबधकुशल, नीतिज्ञ, सावधान, दूरदर्शी, शुद्धहृदय, स्पष्टवक्ता, कुलाभिमानी, गुणग्राहक, मेधावी, विचारशील, सतोषी, परिश्रमी एव स्वामिभक्त थे । जन्म से ही इन्हें सब प्रकार के दु खद समयो का सामना करना पडा था । अत अधिक समय तक इनका विद्याध्ययन सुचारु रूप से नहीं चल सका । किन्तु इन्होने थोडे ही समय मे हिन्दी, उर्दू और फ़ारसी की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली । फारसी मे तो पृष्ठ के पृष्ठ लिख डालना इनके लिये सामान्य सी बात थी । हिन्दी के मसविदे इनके ऐसे उत्तम होते कि कई युरोपियन अफ़सर, रेज़ीडेन्ट मिस्टर ट्रेन्च और कई एक देशी विदशी अफ़सरो तक ने इन्हें साक्षीभूत माना है। अगरेजी की शिक्षा इन्हें बिलकुल ही नहीं मिली थी किन्तु अपने मत्रित्व मे अगरेज़ी की बहुत सी चिट्ठिया तथा तार पढने के महावरे से होते होते तार लिखना, पढ़ना, समझना

यह तो वहुत ही आसानी से कर लेते और अंग्रेज़ी की चिट्ठी भी अच्छी तरह पढ़ उसका मतलव निकाल लेते थे। अंग्रेज़ी का कुछ अभ्यास इन्हें रायवहादुर पंडित गौरीशंकरजी ने भी कराया था। तहरीर तकरीर में एक एक अक्षर ऐसा सोच-विचार कर लिखते कि किसी को उसे हिलाना या छिद्र निकालना कठिन हो जाता। हिन्दी, संस्कृत और फ़ारसी की कविता से इन्हें वड़ा प्रेम था और जव कभी अवसर मिलता, ये कविताएँ वड़े प्रेम से सुना करते थे। हरि-कीर्तन, जैनस्तवन और गीता के श्लोक श्रवण करना तो पिछले जीवन में इनका एक नित्य कर्म सा हो गया था। ग्रहणशक्ति इनकी वड़ी प्रवल थी। किसी भी गूढार्थ को समझना और किसी विषय के वास्तविक आशय को ताड़ जाना इनके लिये क्षणों का काम था। आप अपने मुरव्वी और मित्रों को भी सत्य वात कहने मे कभी हिचकिचाहट नहीं करते, न उनको रोचक या अरोचक होने का विचार करते थे। सच्चे मित्र का कर्तव्य भी यही है कि वह हाँ में हाँ नहीं मिलावे किन्तु अपने मित्र को सत्य मार्ग का दिग्दर्शन करावे। समय समय पर अपने स्वामी को सत्य वात अर्ज करने मे ये कभी संकोच नहीं करते और प्रत्येक विषय की वास्तविकता से सविनय स्वामी को परिचय करा देते।

कोठारीजी के शत्रु अनेक, सच्चे मित्र एकमात्र कविराजाजी एवं हितचिन्तक इने गिने थे। शत्रुओं के रंगमंच पर आपको कई वार चढ़ना पड़ा किन्तु अपने स्वामी की असीम कृपा और इनकी आदर्श सेवा के कारण नित्य इनकी विजय होती रही। हाँ, अलवत्ता अरिमंडल से अनेक यातनाएँ समय समय पर सहनी पड़ीं किन्तु परिणाम में सफलता और विजयश्री नित्य इनकी अनुगामिनी ही वनी रही। महाराणाजी श्री शंभुसिंहजी से लेकर वर्तमान महाराणा साहव तक चार नरेशों की एकनिष्ठ स्वामिभक्ति से ६१ वर्ष के लंवे समय तक सेवाएँ कीं, और ७५ वर्ष ६ माह ११ दिन की आयु प्राप्त कर आपने इस संसार से विदा ली। चारों ही नरेश आपसे सदा प्रसन्न रहे और हमेशा अपना पूर्ण विश्वासपात्र स्वामिभक्त सेवक समझते हुए एक से वढ़कर एक ने समय समय पर आप पर कृपाभाव प्रदर्शित किये।

महाराणाजी श्री शंभुसिंह जी ने आपके वाल्यकाल मे उगते हुए पौधे को कृपा रूपी अमृत से सिंचन कर जीवनदान दिया एवं शीत, घाम, वर्षा रूपी शत्रुओं की यातनाओं से आपकी पूर्ण रक्षा करते हुए आपको सुनहरी मांझा, जीकारा, वलाणा, नाव की वैठक इत्यादि कई एक छोटे मोटे सम्मान देते हुए होनहार वालक वनाया।

महाराणाजी श्री सज्जनसिंहजी ने महाराणाजी श्री शम्भुसिंहजी द्वारा सिंचित पौधे पर पूरी पूरी नज़र रखते हुए उसको त्रिताप से बचाया और अपने कृपारूपी नाना प्रकार के पौष्टिक पदार्थों का सेवन करा ऐसी दयारूपी अमृतधारा की वर्षा की कि कोठारीजी रूपी वृक्ष हरा भरा दिखाई देने लगा और विविध सेवाएँ ले मान बढाते हुए लोगो को यह बतला दिया कि अब इस वृक्ष पर फल फूल लगने वाले हैं। यही वृक्ष मेवाडनाथ की अतुलित कृपा से एव पोषण से इस जाति में सद्य समीर फैलाने वाला हो गया। किन्तु सज्जन के स्वर्गारोहण ने वसत के प्रारम्भ में ही दाह डाल दिया, जिससे वृक्ष सूखने के लक्षण दिखाई देने लगे। इतने में ही उस दाह को शान्त करते हुए स्वर्गवासी मेवाडनाथ महाराणा साहब श्री फतहसिंहजी ने उस वृक्ष की सार सभाल कर ली और पतझड होते होते या जलते हुए वृक्ष मे पुन स्नेह एव कृपामय अमृत का ऐसा स्रोत बहा दिया, जिससे सज्जनसिंहजी द्वारा बनाये एव सिंचित किये हुए वृक्ष मे फल फूल लग थोडे ही काल मे यह वृक्ष लहलहाने लगा। स्वर्ण का मान बख्शा, महद्राजसभा का सदस्य बनाया और मुख्य मत्री के पद पर नियुक्त कर दिया। कहाँ उदयपुर से निर्वासन और कहाँ यह ऊँचा अमात्य का पद। कहाँ दुर्जनो की काली करतूतें और कहाँ महाराणा साहब की सुकृपा। कहाँ कोठारीजी को अपने पतन की शकाएँ और कहाँ इस उत्थान की अन्तिम सीढी। यह केवलमात्र इनके स्वामी की अपूर्व कृपा का फल था। तीनों मेवाडनाथों के असीम अनुग्रह से यह वृक्ष खूब फला और खूब फूला तथा सासारिक सुखो का पूर्णरूपेण उपभोग भी किया। अनेको पत्र पुष्प इस वृक्ष में शोभा को प्राप्त हुए परन्तु वृक्ष के वृद्धत्व में फलरूपी मेघ के अदृश्य हो जाने से वृद्ध वृक्ष के पोषण मे फिर शकाएँ होने लगीं किन्तु भूपालक भूपाल ने वृद्ध, अनुभवी एव स्वामिभक्त वृक्ष की ही नहीं बल्कि इस वृक्ष की छोटी-मोटी शाखाओं तक का इस प्रकार पालन-पोषण कर सम्मानित किया, जिसके लिये जितना भी धन्यवाद दिया जाय, थोडा है।

श्रीमानो ने कोठारीजी की बडी ही इज्जत रखी। यहा तक कि सवत् १९९३ के वर्ष मे आपको ताज़ीम का अपूर्व सम्मान एव दरीखान का बीडा बख्श सम्मानित किया। आपकी अतिम बीमारी मे आरामपुरसी क लिये हवेली पधार अपने स्वामिभक्त सेवक की सभाल की। ऐसे स्वामी की कृपा का ऋण चुकाने में यह वृक्ष तथा इसकी शाखाए पत्र, पुष्प, फल तो क्या, अपना सर्वस्व भी दयालु स्वामी क लिये न्योछावर करें तो भी आपक ऋण से मुक्त होना कठिन ही नहीं बल्कि असभव है।

कोठारीजी बड़े ही परिश्रमी थे। व दिन के १५-१५, १६-१६ घट तक नित्य

कार्य किया करते और प्रत्येक काग़ज़ को स्वयं देखकर निकालते। ये अपने अधीन अहलकार एवं कार्यकर्ताओं के कार्यों पर भी पूरी नजर रखते और स्वयं सोच-समझकर कार्य करते। कभी अहलकारों के हाथ के खिलौने नहीं बने। कोठारीजी के परिश्रम को देखकर लोग चकित एवं विस्मित हो जाते थे। वे अक्षरशः स्वामी की आज्ञा का पालन करते, कभी उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करते। न कभी मालिक को उल्टी-सीधी समझा किसी का काम निकलवाने की कोशिश करते।

श्री बड़े हुजूर ने राज्यासीन होने के कुछ ही वर्षों बाद से कर्मचारियों पर विश्वास करना बहुत कम कर दिया परन्तु कोठारीजी पर उनका अत्यन्त दृढ़ विश्वास था। एक दिन की बात है कि श्रीजी हुजूर जनाने में पधार रहे थे, तो उस समय अपने दस्तख़तों की मुहर (आज्ञा की मुहर, जो महाराणा साहब के दस्तख़तों के इवज़ लगाई जाती है) कोठारीजी को देकर पधारने लगे और फ़रमाया कि 'काग़ज़ों पर मुहर लगा देना'। इस आज्ञा को बहुत अर्ज कर कोठारीजी ने स्वीकार नहीं किया और मुहर कलमदान में ही रखवाने की प्रार्थना की। फिर वापस पधारने पर श्रीजी हुजूर के सामने मुहर लगाई गई। कोठारीजी को मेवाड़नाथ किस सीमा तक अपना विश्वासपात्र समझते थे, यह बात पाठकगण ऊपर के उदाहरण से भली भाँति समझ सकते हैं।

कोठारीजी का प्रभाव राज्य, समाज, देश 'मेवाड़' एवं जाति में ऐसा महान् था कि किसी को बिना सोचे समझे इनके सामने कुछ कहने का साहस नहीं होता था। राज्य के सरदार, उमराव, कर्मचारी एवं प्रजाजन भी आपका पूरा आदर करते और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। इनकी गंभीर मुखश्री का इतना अधिक प्रभाव पड़ता था कि अपरिचित मनुष्य भी एक बार तो आपके भव्य चेहरे को देखकर आपकी मधुर सुन्दर आकृति पर मुग्ध हो जाता था। आपको देखने से ही सहसा एक पुराने रंग-ढंग, आचार-विचार एवं रहन-सहन का गंभीर चित्र सामने खिंच जाता था। भावनगर के वयोवृद्ध एवं साधु-स्वभावी मंत्री सर प्रभाशंकर पट्टनी तक आपकी चाल-ढाल, रहन-सहन एवं भव्य आकृति को देखकर आप पर आदरणीय भावों से मुग्ध हो गये थे।

इन्होंने अपने आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज हमेशा प्राचीन ढंग के रक्खे। ये प्राचीन सभ्यता एवं जातीय संस्कारों के कट्टर पक्षपाती थे। इन्होंने मद्यपान, तमाखू आदि नशीली वस्तुओं का कभी सेवन नहीं किया था।

कोठारीजी अपने यम-नियमों के पक्के पालक थे। ये नित्य ब्राह्म मुहूर्त मे बहुत तड़के तीन बजे उठते। एक घंटे के अन्दर स्नान आदि नित्य कर्म कर ईश्वर भजन करते। इससे निवृत्त होने पर कार्य में जुट जाते। महाराणा साहब फ़तहसिंहजी के राज्यकाल

मे कई वर्षों तक इनके सुपुर्द अनेक महक्मे रहने से इन्हे बहुत परिश्रम करना पडा। फिर भी ये अपने स्वामी की सेवा मे लगे रहे और अपने स्वास्थ्य की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। इनके परिश्रम को देखते इतना स्वस्थ रहना, यह भी परम पिता परमात्मा की परम कृपा का प्रताप था। पिछले वर्षों मे जब आप पर राजकीय कार्यों का विशेष भार न रहा, तब भी आप बराबर प्रात काल मे उसी ब्राह्म मुहूर्त मे नित्यकर्म से निवृत्त हो अपने स्वामी के दर्शनार्थ महलों मे जाते। स० १६८७ से जब आपको हरनिया की तकलीफ रहने लगी, तब से वर्तमान महाराणा साहब ने नित्य आपके लिये एक बग्घी मुकर्रर कर दी। उसमें बैठ महलो मे जाते, वहाँ से लौटकर साधु-सतो की सेवा, व्याख्यान आदि धार्मिक एव हिन्दी की सरल पुस्तकों का अध्ययन व मनन करते तथा धर्मकर्म मे लग जाते। फिर दिन क वक्त तीसरे पहर मे राजश्री महद्राजसभा के इजलास मे जाया करते। इन्हीं उत्तम यम-नियमो का कारण था कि अन्त तक इनकी शारीरिक एव मानसिक शक्ति ज्यो की त्यो बनी रही। आपकी प्रत्येक बात धार्मिक विषय को लिये हुए होती थी। शिवधर्म क तो ये पक्के उपासक थ। यही इनका इष्ट था। प्रात काल में श्री परमेश्वर के दर्शन भजन करते और वर्ष मे कई बार दर्शनार्थ कैलाशपुरी आया करत थे। पिछले वर्षों में जैनधर्म एव जैनसाधुओ का विशेष रूप से समागम होने से इस सत्सग का भी ये लाभ उठाया करत थ। शिव एव जैनधर्म मे विशेष लगन होत हुए भी इन्हे किसी धर्म से द्वेष एव ईर्षा न थी। हाँ, अलबत्ता ये वेश को ही मानने वाले न थे किन्तु गुणियो एव गुणो के उपासक थे। इनमें यह धर्मभावना अतिम समय तक सर्वतोभावेन बनी रही।

नई शिक्षा-पद्धति के आप बिलकुल समर्थक न थे और अपन विचारो को स्पष्ट रूप से प्रकट भी कर दिया करत थे। चरित्र अथवा अग्रेज़ी मे जिसे character कहा जाता है, इनमे कूट-कूटकर भरा हुआ था।

कोठारीजी इकरगे मनुष्य थ। समय के पूजक और चढत चेहरे को ये नमने वाले न थे किन्तु एकनिष्ठ प्रेम क निभाने वाले और समान भाव रखने वाले पुरुष थ। उन्हे अपनी स्थिति पर बहुत सतोष था। ससार की तृष्णाएँ एव लालसाएँ इनमे न थीं। इन्हे जो कुछ प्राप्त था, उसे ही बहुत मानत थे और निम्न श्लोक के भाव को खूब समझे हुए थ—

सन्तोषामृततृप्ताना यत् सुख शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद् धनलुब्धानाम् इतश्चेतश्च धावताम्॥

इन्होंने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये विना कारण कभी अपने स्वामी को तकलीफ़ नहीं दी। यहाँ तक कि लाखों रुपये तनख्वाह के प्राप्त करने के लिये भी कभी मन नहीं ललचाया। इससे बढ़कर संतोष और स्वार्थत्याग का क्या उदाहरण हो सकता है।

इनमें कुटुंबप्रेम की मात्रा भी पूरी थी। अपने सुखों का परित्याग करते हुए भी इन्होंने अपनी पत्नी का स्वर्गवास होने पर दूसरा विवाह नहीं किया।

आप कभी फ़जूल खर्च में अपना पैसा खर्च नहीं करते थे किन्तु शादी, ग़मी, इमारती कार्य एवं धार्मिक कार्यों मे जी खोलकर व्यय करते थे और ऐसे अवसरों पर खर्च करना अपना कर्तव्य समझते थे।

चरित्रवान् पुरुषों के चरित्र में वह शक्ति होती है कि विरोधी पक्ष अथवा ऐसा जनसमुदाय, जिनके कि विचार एवं सिद्धांत उनके विचारों से प्रतिकूल थे, वे भी उनके चरित्रबल की प्रशंसा किये विना नहीं रह सके। कोठारीजी के चरित्रगठन का ही प्रभाव था कि उनके प्रति स्वामी का प्रेम, समाज में आदर, जनता मे श्रद्धा, कुटुम्ब-स्नेह एवं धर्मसमाज में सम्मान चिरस्थायी हो सका। कोठारीजी एक कवि के निम्न पद्य के मर्म को भली भांति समझते थे कि—

यदि नित्यमनित्येन, निर्मलं मलवाहिना।
यशःकायेन लभ्येत, तन्न लब्धं भवेन्नु किम्॥

अतः उन्होंने इस अनित्य शरीर से स्वामिभक्त, धर्म में दृढ़ एवं धर्मपरायण रहते हुए नित्य यश रूपी शरीर को उपार्जन करने में समय का बहुत कुछ सदुपयोग किया।

कोठारीजी का रंग गेंहुआ, कद लंबा, शरीर मध्यम स्थिति का, सुडौल, सुदृढ़ और गठीला, आँखें दीर्घ, ललाट तेज, मस्तक उन्नत, एवं चेहरा प्रभावशाली था। बहुत वर्षों तक लगातार व्यायाम करने के कारण इनके बदन का ढाँचा बहुत सुन्दर बन गया था। पिछले वर्षों मे वृद्धावस्था के कारण निर्बलता दृष्टिगोचर होती थी किन्तु आयु के साथ ही साथ आपका तेज एवं प्रभाव बढ़ता जाता था।

भव्य आकृति, आदर्श स्वामिभक्ति, धर्मदृढ़ता, धैर्य एवं चरित्रबल का ही प्रभाव था कि वे नाना प्रकार के कष्ट सहन करते हुए गरीब से अमीर बने और अनेकों शत्रुओं के होते हुए भी उच्च पद प्राप्त कर उस कार्य को इस सफलतापूर्वक संचालित किया कि स्वामी की कृपा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।

कोठारीजी के व्यक्तित्व के विषय में अब विशेष न लिख केवलमात्र रायबहादुर महामहोपाध्याय गौरीशङ्करजी हीराचन्द्रजी ओझा के थोड़े शब्द नीचे लिख देना ही पर्याप्त होगा। वे उनके स्वर्गवास पर लिखते हैं कि "स्वर्गीय कोठारी साहब मेवाड़ राज्य के बड़े हितचिन्तक और स्वामिभक्त थे। उनके स्वर्गवास से मेवाड़ राज्य का एक स्तम्भ टूट गया है। उन्होंने अपने जीवन में परोपकार की मात्राएँ रख कुलधर्म का पालन किया, यह महत्ता की बात है। त्याग की भावनाएँ भी उनके जीवन में विशेष थीं। स्वर्गवासी महाराणाजी श्री फतहसिंहजी ने जब उन्हें अपना प्रधान बनाया, तब वेतन देना चाहा किन्तु उन्होंने १५ वर्ष तक अपने दायित्व को पूर्ण रूप से पालन करते हुए वेतन नहीं लिया। मेवाड़ राज्य के पिछले युग के मन्त्रियों में सदैव श्री कोठारीजी साहब का नाम उच्च रहेगा। उनके स्वर्गवास से मेवाड़ राज्य की पूर्ण क्षति हुई है और वस्तुतः एक सच्चा राजभक्त संसार से उठ गया है।"

केशरीसिंहजी और बलवतसिंहजी में समानता और विषमता।

कोठारी केशरीसिंहजी एवं बलवतसिंहजी में प्रायः गुणों की एवं कार्यों की समानता पाई जाती है। अवसर विशेष भी एक से उपस्थित होते रहे हैं। थोड़े ही विषय ऐसे रह जाते हैं, जिनमें इन दोनों के जीवन की मुख्य २ घटनाओं में विषमता प्राप्त हुई हो। दोनों ही कोठारीजी की आकृति विशाल, चेहरा भव्य एवं प्रभाव महान् था, जिसका वर्णन दोनों के व्यक्तित्व में पूर्णतया किया जा चुका है। दोनों ही शिवधर्म के पक्के उपासक, स्वामी के सच्चे भक्त, प्राचीन रीति एवं सभ्यता के निभैया, जातिव्यवस्था और वर्णाश्रम धर्म के समर्थक थे। दोनों को लगभग प्रारंभिक २० वर्ष कष्ट में ही बिताने पड़े। ये दोनों महापुरुष जन्म से ही गरीब पिता के पुत्र थे। हाँ, अलबत्ता इतना जरूर हो गया था कि केशरीसिंहजी २० वर्ष की उम्र तक गरीब पिता के ही पुत्र रहे और कोठारीजी बलवतसिंहजी १० वर्ष की उम्र बाद अमीर पिता के पुत्र बन चुके थे। किन्तु फलस्वरूप २० वर्ष की आयु तक इन्हें भी गरीब पिता के पुत्र तुल्य ही अपने दिन बिताने पड़े। दोनों ही कोठारीजी मेदपाटेश्वरों के प्रतिनिधि—प्रधान—बने। केशरीसिंहजी ने दो मेदपाटेश्वरों के राजत्व में प्रधान पद प्राप्त किया और दो बार प्रधान पद पर नियुक्त हुए। बलवतसिंहजी ने स्वर्गीय महाराणा साहब फतहसिंहजी के राज्यकाल में ही दो बार प्रधान की सेवा की, यद्यपि वर्तमान महाराणा साहब, जिन दिनों में कुँवर पदे में थे, की सेवा का लाभ भी साथ साथ मिलता रहा। इस सूरत में दो मालिकों की सेवा में प्रधान के पद की सेवा करना इनके लिये भी कहा जाय तो अनुचित न होगा और द्वितीय बार के प्रधान के समय में महद्रमा-खास के कितने ही कागज श्री कुँवरजी बापजी राज, वर्तमान महाराणा साहब,

की सेवा में पेश होने भी शुरू हो चुके थे । इसे भी छोड़ दीजिये तो वर्तमान मेदपाटेश्वर के विवाह इत्यादि कई अवसरों पर कोठारीजी से सेवाएँ ली गई हैं, जिसका वर्णन समय समय पर किया जा चुका है ।

दोनों ही कोठारीजी को शत्रुदल का सामना भी खुले दिलों करना पड़ा और अपने अपने स्वामी की कृपा मे कोई कमी न होते हुए भी इनको नगरनिर्वासन के दुःखद समय देखने पड़े । किन्तु दोनों ही कोठारीजी इस परीक्षा-काल में गुणों को ही वटोरते रहे । किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

> जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैव ,
> येषां प्रसादात् सुविचक्षणोऽहम् ।
> ये ये यथा मां प्रतिवाधयन्ति ,
> ते ते तथा मां प्रतिवोधयन्ति ॥

दोनों ही कोठारीजी ने दुःखद समय में इष्टदेव भगवान् श्री एकलिङ्गेश्वर के द्वार की ही शरण ली । केशरीसिंहजी के नगरनिर्वासन के समय मे तो समय समय पर तत्कालीन महाराणा साहव का पधारना कैलाशपुरी होता रहता, वहाँ सार सम्भाल की जाती रही और वलवंतसिंहजी के नगरनिर्वासन के समय में इनके गाँव वोराव उदयलालजी विठलोत को भिजवा संभाल कराई ।

अपने अपने समय के एक नहीं वरन कुल ही याने केशरीसिंहजी पर तत्कालीन महाराणा साहव स्वरूपसिंहजी और शंभुसिंहजी और इसी प्रकार वलवंतसिंहजी पर चारों महाराणा साहव शंभुसिंहजी, सज्जनसिंहजी, स्वर्गीय महाराणा साहव फ़तहसिंहजी और वर्तमान मेदपाटेश्वर दया के सागर श्रीमान् महाराणा साहव श्री भूपालसिंहजी साहव की पूर्णरूपेण प्रतिपालना एवं असीम कृपा रही, और समय समय पर जो कष्टों के झोंके दोनों कोठारीजी को अरिमंडल दिलाता रहा, उनसे थाम थामकर इनके स्वामी रक्षा करते रहे । दोनों ही कोठारीजी ने अन्तिम समय तक अदम्य उत्साह, एकनिष्ठ स्वामिभक्ति एवं स्वार्थत्याग से अपने स्वामी की सेवा वजाई । उसके फलस्वरूप केशरीसिंहजी की अंतिम वीमारी में तत्कालीन महाराणा शंभुसिंहजी और वलवन्तसिंहजी की अंतिम वीमारी में वर्तमान महाराणा साहव भूपालसिंहजी का आरामपुरसी के लिये कोठारीजी की हवेली पधारना हुआ और अपूर्व गुणग्राहकता का परिचय देते हुए इनकी सेवाओं की कदर फ़रमाई । दोनों ही कोठारीजी को राज्य के उच्च सम्मान प्रत्येक महाराणा साहव ने अता फ़रमाये और दोनों ही की प्रतिष्ठा वढ़ा मानवृद्धि करते रहे । प्रत्येक ही नरेश ने इनको अपना

पूर्णराज्य का विश्वस्त ही नहीं बल्कि अपना निजी विश्वस्त सेवक भी समझा । दोनों ही कोठारीजी के मित्र, हितचिन्तक एव स्नेही जन प्राय ऐसे रहे जो मेवाडराज्य के भक्त एव स्वामी के हितैषी थे। केशरीसिंहजी के लिये वीर-विनोद मे लिखा है कि "केशरीसिंह मालिक का मालिक बनकर नहीं, बलिक नौकर बनकर रहता था ।" इसी सिद्धान्त का बलवन्तसिंहजी ने भी अक्षरश पालन किया और अपने स्वामी की इच्छानुसार नित्य उनकी आज्ञा शिरोधार्य करते हुए सेवा की। उन्होने अपने आपको मेवाडनाथ का दीवान समझते हुए ही उनकी सेवा नहीं की बल्कि अपने आपको उनका छोटे से छोटा चाकर मानते हुए उनकी सेवा की।

केशरीसिंहजी को अजमेर एव आगरे जल्से मे जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और अपूर्व सम्मान मिला । उसी प्रकार बलवन्तसिंहजी दोनों बार दिल्ली दरबार मे भिजवाये गये और उन्हे अपूर्व सम्मान मिला। दोनो ही कोठारीजी ने अपने स्वामी की आदर्श कृपा, अपना बाहुबल व अपने इने-गिने थोडे से हितेच्छुओं की सहायता से सफलीभूत होते हुए यह ससार-यात्रा समाप्त की।

दोनो ही कोठारीजी अपने उद्देश्य, नियम, चरित्रगठन एव आचार-विचार पर दृढ रहे और चढते चेले के कभी पुजारी नहीं बने। किन्तु प्रेम, गुण एवं कर्त्तव्यो के और स्थिर उद्देश्यो के ही पूजक बने रहे। केशरीसिंहजी वास्तव मे केशरीसिंह थे। वे ससार रूपी विशाल वन मे उतरे और उन्होने नाना प्रकार के वृक्षवात रूपी कष्टो के झकोरे और वेग सहन किये। अनेक गजयूथ रूपी अरिमटल से मुठभेडे हुई एव विविध वायु के झकोरे सहे। उन सब को पार करते हुए इस ससाररूपी वनक्षेत्र मे एक हिस्से मे उन्होने मेवाडनाथ के कृपारूपी अस्त्र एव शस्त्रों से सुसज्जित स्थान को अपना निवास-स्थान स्थापित किया और उसमे उत्तरोत्तर वृद्धि पहुँचाई। जब केशरीसिंहजी ने इस विशाल प्रफुल्लित वन को छोडना चाहा तो बलवान् सिंह की आवश्यकता उत्पन्न हुई। तब बलवन्तसिंहजी जैसे बलवान् सिंह रूपी पुरुष को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर केशरीसिंह ने प्रस्थान किया। ऐसे प्रफुल्लित वन को सुरक्षित रखने मे बलवन्तसिंहजी जैसे बलिष्ठ सिंह को अनेक यातनाएँ सहनी पडीं। किन्तु जिस साम्राज्य को सुनहरी सिंह बलवान् सिंह के भरोसे छोड गया था, भला बलवान् सिंह उसके आधिपत्य मे कैसे न्यूनता आने देता। बलवन्तसिंह उस सुनहरे वीर केशरीसिंह के साम्राज्य मे उत्तरोत्तर वृद्धि ही करता गया और इस प्रकार केशरीसिंहजी के उत्तराधिकारी होते हुए बलवन्तसिंहजी ने अक्षरश नामानुसार ही गुणो का परिचय दिया।

दोनों ही कोठारीजी को अन्तिम समय मे ज्वर एव दस्तो की बीमारी हुई और इसी से उनका स्वर्गवास हुआ। करीब करीब पौने तीन महीने दोनो ही बीमार

रहे। दोनों को असह्य वेदना हुई किन्तु इन्होंने शान्तिपूर्वक सहन की। इनकी सुध-बुध में अंतिम समय तक कोई फ़र्क न आ सका।

केशरीसिंहजी एवं वलवंतसिंहजी के जीवन की बहुत कुछ घटनाएँ एक सी मिलती हैं लेकिन कुछ कुछ विषमता भी पाई जाती है। जैसा सांसारिक या यों कहिये कौटुम्बिक सुख केशरीसिंहजी और वलवंतसिंहजी को प्राप्त हुआ, उसमें अन्तर था। वलवंतसिंहजी को चार पीढ़ी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो विरलों को ही प्राप्त हो सकता है किन्तु केशरीसिंहजी के एक पुत्र भी जीवित न रहा और अंत में गोद लेना पड़ा। अलबत्ता, दो दो कन्याएँ दोनों के हुईं। केशरीसिंहजी को माता का सुख दीर्घ काल तक पूर्णरूपेण बना रहा किन्तु वलवंतसिंहजी को मातृसुख किस वस्तु का नाम है, उसका स्वप्न में भी अनुभव नहीं हुआ। इसी प्रकार स्त्रीसुख केशरीसिंहजी को आजन्म रहा किन्तु वलवंतसिंहजी का यह सुख मध्य आयु मे ही खंडित हो गया। केशरीसिंहजी का केवल ४८ वर्ष की आयु में ही स्वर्गवास हो गया और वलवंतसिंहजी ने दीर्घ आयु प्राप्त कर ७६ वर्ष चतुर्थाश्रमावस्था में इस संसार से पयान किया। अतः कुछ भी कहा जाय, यदि वलवंतसिंहजी को केशरीसिंहजी की प्रतिमूर्ति माना जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

श्री स्वर्गस्थ पूज्य पितामह की पुण्य स्मृति मे

श्रद्धाञ्जलिस्वरूप पद्यात्मक कविता

दोहा

सवत् सिधि शशि निधि शशी, सोम असित मधु मास।
यश चित्रा एकादशी, बलवत जन्म विकास ॥१॥

भावार्थ—सवत् १९१८ की चैत्र कृष्णा ११ सोमवार को यशराजजी और चतरकुँवरबाई से बलवन्तसिहजी का जन्म हुआ ॥१॥

वय जब ढाई वर्ष की, मातु वास परलोक।
मातुल तब पोषण कियो, स्मर्णन भगिनी शोक ॥२॥

भावार्थ—जब इनकी उम्र ढाई वर्ष की हुई, माता का स्वर्गवास हो गया और इनके मामा ने, जो अपनी बहिन के शोक से ग्रस्त थे, आपका पालन-पोषण किया।

कोठारी लखि केहरी, शुभ नक्षत्र निधान।
दत्तक लिय दस वर्ष को, बालक पुत्र सुजान ॥३॥

भावार्थ—कोठारी केशरीसिंहजी ने परीक्षा कर एव शुभ ग्रह-गोचर देख बलवन्तसिंहजी जैसे सुशील बालक को दस वर्ष की उम्र में गोद लिया।

कीन गमन दिव केहरी, बलवत थे तब बाल।
विध विध सो रक्षा करी, स्वामी शम्भु कृपाल ॥४॥

भावार्थ—बलवन्तसिंहजी के बाल्यकाल में केशरीसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। तब महाराणा शम्भुसिंहजी जैसे दयालु स्वामी ने बलवन्तसिंहजी की अनेक प्रकार से रक्षा की एव पालन-पोषण किया।

दै मॉझो जीकार दिय, किय सनमान कितेक।
शभूरान प्रसन्न ह्वै, लखि निज सेवक नेक ॥५॥

भावार्थ—महाराणा साहब शभुसिंहजी ने कोठारीजी पर प्रसन्न हो उनको अपना निज एव श्रेष्ठ सेवक मान मॉझा, जीकारा व इसी प्रकार के कितनेक सम्मान अता फ़रमाये।

वालकाल वलवन्त के, शंभु भये मिहमान।
नित्य शीतला अष्टमी, किय पधार सनमान ॥६॥

भावार्थ—वलवन्तसिंहजी की वाल्यावस्था में ही प्रत्येक शीतला अष्टमी को, जव तक महाराणा साहव शंभुसिंहजी आरोग्य रहे, इनकी हवेली मेहमान हुए और इस प्रकार सम्मान फरमाते रहे।

शंभु रान कैलाश गे, सज्जन वैठे पाट।
उनसे वढती इन कृपा, थापे वही जु थाट ॥७॥

भावार्थ—महाराणा शंभुसिंहजी का स्वर्गवास हो गया और महाराणा साहिव सज्जनसिंहजी गद्दी पर विराजे। शंभुसिंहजी से भी वढ़कर वलवन्तसिंहजी पर महाराणा सज्जनसिहजी ने कृपा रक्खी और आनन्द-मंगल किया।

वढ्यो क्लेश विय मात को, रही न शिक्षा आस।
किय रक्षक कविराज को, सज्जन दृढ़ विश्वास ॥८॥

भावार्थ—विमाता का क्लेश वढ़ गया। शिक्षा की आशा न रही। ऐसी स्थिति में महाराणा साहव सज्जनसिंहजी ने अपने पूर्ण विश्वासपात्र कविराजाजी को कोठारीजी का संरक्षक नियत किया।

पालन ज्यों निज पुत्र किय, वलवत को कविराज।
पद देवें मंत्री प्रथम, स्वर्ग गये महाराज ॥९॥

भावार्थ—उक्त कविराजा श्यामलदासजी ने वलवन्तसिंहजी का पुत्र समान पालन किया। महाराणा साहव सज्जनसिंहजी की इच्छा कोठारीजी को प्रधान वनाने की थी किन्तु उसी अरसे में महाराणा साहव का स्वर्गवास हो गया।

मातृक्लेश भरपूर भो, शत्रु वढ्यो षडयंत्र।
और गयो सव ही अरथ, चले अरीगन तंत्र ॥१०॥

भावार्थ—मातृक्लेश चरम सीमा को पहुँच चुका। शत्रुओं के षड्यंत्र भी वहुत वढ़ गये। आर्थिक स्थिति मिट्टी में मिल गई और शत्रु-समुदाय की कामनाएँ सिद्ध हुई।

सज्जनेन्द्र पहुँचे स्वरग, राज्यासन फतमाल।
अव जाने दुर्दिन अपन, वलवत भे वेहाल ॥११॥

भावार्थ—महाराणा साहव सज्जनसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। महाराणा साहव फ़तहसिंहजी गद्दी पर विराजे। अव वलवन्तसिंहजी ने समझ लिया कि अपने वुरे दिन आ गये हैं और (आठ दिन तक) वड़े चिन्तित हुए।

कीन्ही दर्शित जब कृपा बलवत भो विश्वास।
बहुत तबै आशा बँधी नष्ट होय नीरास ॥१२॥

भावार्थ—(नवें दिन) जब महाराणा साहब फतहसिंहजी ने कृपाभाव प्रदर्शित फरमाया, बलवन्तसिंहजी की निराशाएँ आशा में परिणत हो गईं और स्वामी की कृपा का पक्का विश्वास बध गया।

बहुत तबै मालिक बढ़ी बलवत कृपा विशेष।
शत्रुन रचि षडयत्र तब किय नित प्रति अति क्लेश ॥१३॥

भावार्थ—इधर महाराणा साहब की कृपा कोठारीजी पर दिनो दिन बढती गई तो शत्रुओं ने षड्यन्त्र रच नये क्लेश खड़े करना प्रारभ किये।

बलवत निर्वासित कियो, नगर उदय प्रस्थान।
रह्यो जबै जागीर पे, निकले दुर्दिन जान ॥१४॥

भावार्थ—बलवतसिंहजी का उदयपुर से निर्वासन हुआ। ये अपने जागार के गाव (घेराप जिल जहाजपुर) जा रहे और ये दुर्दिन भी शीघ्र ही समाप्त हो गये।

उलटी खाई मुख अरिन, पति दिय हाटक पग्ग।
न्याय सभा नियमन कियो, मत्री के पुनि मग्ग ॥१५॥

भावार्थ—शत्रुओं को उलटे मुह खाना पड़ी। महाराणा साहब ने बलवन्तसिंहजी को सुवर्ण (सोने क लगर) बदश सम्मानित किया। राज्य श्री महद्राजसभा का सदस्य बनाया और थोड़े ही समय बाद प्रधान बनाया।

उगनीसे इकावनें, दीन्हो पद दीवान।
बिन वेतन बलवत ने, सेवा भक्ति समान ॥१६॥

भावार्थ—स० १९५१ में महाराणा साहब ने कृपा कर इन्हे दीवान बना दिया। इन्होंने सेवाधर्म को मानते हुए विना वेतन सेवा की।

स्वास्थ्य रह्यो नहिं सयमित, तज्यो सु मत्री स्थान।
पुनि पुनि सेवा विविध ली, फतहसिंह महारान ॥१७॥

भावार्थ—बलवन्तसिंहजी का स्वास्थ्य ठीक न रहने से मन्त्रिपद की सेवा इन्होने छोड़ दी। तब फिर भी स्वास्थ्य महाराणा साहब फतहसिंहजी ने इनसे अनेकानेक सेवाएँ लीं।

संवत रस रस अंक मही पुनि प्रधान पद पाय।
वर्ष पाँच लोकिय वही, सेवाधर्म वजाय ॥१८॥

भावार्थ—सं० १९६६ विक्रम मे फिर प्रधान पद प्राप्त हुआ। यह सेवा उन्होंने फिर पांच वर्ष पर्यन्त की।

राजकुमार कुमारिका, विध विध व्याह प्रसंग।
सब में वलवत ही लियो, सेवा लाभ उमंग ॥१९॥

भावार्थ—जब महाराज कुमार व बाईजी राज के विवाहोत्सव हुए, तब इन शुभ अवसरों पर भी (विवाह-प्रबन्ध) सेवा का लाभ वलवंतसिंहजी को ही मिला (अर्थात् इनसे सेवा ली गई)।

भूप भुपाला किय वहुल, वलवतसिंह सनमान।
वीड़ो ताजिम वख्शतां, मंत्रि वृद्ध महारान ॥२०॥

भावार्थ—महाराणा साहव भूपालसिंहजी ने वलवंतसिंहजी का वहुत सम्मान किया और अपने वृद्ध मंत्री को ताजीम व वीड़े का महत् मान भी अता फरमाया।

कुल अभिमानी नित रहे, रहे सदा धर्मिष्ठ।
स्वामी केवल सेविया, एकलिंग रखि इष्ट ॥२१॥

भावार्थ—ये नित्य कुलाभिमानी और धर्मदृढ़ रहे। केवलमात्र एकलिंगेश्वर की भक्ति और स्वामी की शुद्ध सेवा ही में इन्होने सब कुछ समझा।

परम भक्त गौरीपती, धर्‌यो जैन प्रिय धर्म।
कार्य धर्म करते रहे, जान्यो जीवन मर्म ॥२२॥

भावार्थ—ये परम शिवभक्त थे। जैनधर्म से भी इन्हें प्रेम था। धर्मकार्यो मे ये सदा आगे रहते, और मनुष्यजीवन के मर्म को समझते थे।

कीन्ही यात्रा धर्म कज, लाहो जीवन लीन्ह।
जग में काया झूठ है, चतुर धर्म मग चीन्ह ॥२३॥

भावार्थ—अनेकों धर्मकार्य एवं तीर्थयात्राएँ की और इस प्रकार मनुष्यजीवन का लाभ लिया। शरीरमात्र से इस जगत् में रहते भी इसे मिथ्या मानते हुए बुद्धिमान् कोठारीजी ने धर्ममार्ग पहिचाना अर्थात् धर्ममार्ग में आत्मा की प्रवृत्ति रक्खी।

अनुकंपा है आपकी, ईश पूर मम आस।
लहे मोक्ष बलवंत नित, यहे तेज अभिलास ॥२९॥

भावार्थ—हे परमात्मा! आपकी कृपा हो और मेरी अभिलाषा पूर्ण हो। बलवंतसिंहजी को नित्य अमरत्व मोक्ष प्रदान करे, यही क्षुद्र तेजसिंह की अभिलाषा है।

स्वामी चिर जीवे सदा, भगवतसिंह भुपाल।
मातेश्वरि दुँहुँ सुख लहे, वर दो शंभु कृपाल ॥३०॥

भावार्थ—आशुतोष भगवान् शंकर वरदान प्रदान करें कि श्रीमान् महाराणा साहब भूपालसिंहजी और महाराजकुमार साहब भगवतसिंहजी चिरकालपर्यन्त दीर्घायु हों और इस सुख को प्राप्ति श्रीमती मातेश्वरियों (दोनों महाराणी साहिबाओं) को चिरस्थायी हो।

दाता शिव वर दीजिए, स्वामी धर्म निबाह।
पूर्वज पथने अनुसरां, चरणां मालिक चाह ॥३१॥

भावार्थ—अब तृतीय एवं अन्तिम वरदान में भगवान् श्री शंकर से प्रार्थना है कि वे नित्य स्वामिधर्म को निभाते रहें और पूर्वजों की धर्मदृढता एवं स्वामिभक्ति के पथ का अनुसरण कराते हुए श्री मालिकों के चरणों में भक्ति इस कोठारी वंश में चिरस्थायी करें।

सौ सुकृत इक पालड़े, एको श्याम धरम्म ।

पूज्य पितामह मोतपद, जीवनधन्य चरित्र ।
सह आदर अरपित करूँ, पुष्पाञ्जली पवित्र ॥

कोठारीजी श्रीगिरधारीसिंहजी

(मेम्बर राज श्रीमहद्राजसभा और हाकिम जिला गिरवा)

चौथा परिच्छेद
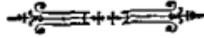
परम पिता परमात्मा की अनुकम्पा से पूज्य पितामह के जीवनचरित्र के तीन भाग ज्यों-त्यो समाप्त हुए। अब चतुर्थ के प्रारंभ मे लेखनी रुकती है। समझ मे नहीं आता कि किस प्रकार से प्रारम्भ किया जाय। चित्त अधीर होता है। पूज्य पिता श्री के नाम के पहले जो सुन्दर विशेषण *कुँवर* का लगता था, और *कुँवर गिरधारीसिंहजी* के नाम से ४८ वर्ष के दीर्घ काल तक व्यक्ति इन्हें सम्बोधित करते थे, वह सुन्दर विशेषण लुप्त हो गया। दुष्ट कराल काल ने ऐसी स्थिति उपस्थित कर ही दी और पौष शुक्ला ४ स० १९९४ विक्रमी के दिन से सहसा कुँवर के स्थान पर कोठारी गोत्र विशेषण ने स्थान ग्रहण कर लिया अर्थात् कोठारीजी के नाम से सबोधित होने लगे। क्या ही अच्छा होता, यदि मुझे आलस्य न घेरता, कर्त्तव्य-शिथिलता मेरे मन-मदिर मे स्थान ग्रहण न करती और यह जीवनचरित्र पूज्य पितामह की विद्यमानता में लिखा जाता तो पूज्य पिता श्री के नाम के प्रथम वही सुन्दर विशेषण लगा रहता और पूज्य पितामह का विशेषण यहाँ स्थान ग्रहण न करता। किन्तु दैव इच्छा प्रबल है। जब जिस कार्य के बनने का योग होता है, तब ही वह बन पडता है। अत मे चित्त को शान्त करना पडता है। अधीरता का परित्याग करने पर ही कुछ सेवा करने का साहस हो सकता है। नहीं तो आगे का काम बनना ही असभव हो जाता है। परमात्मा प्राणिमात्र का किसी न किसी रूप मे सहायक होता ही रहता है और नूतन पथ-प्रदर्शक बन जाता है। आखिर, मेरी इसी लेखनी को पिता श्री के नाम के आगे कोठारी विशेषण लगाना बदा था, सो होकर ही रहा। प्रसगवश पिता श्री की जीवनी का भी बहुत ही सक्षिप्त वर्णन कर देना अत्यावश्यक है।

जन्म।

पूज्य पिता श्री गिरधारीसिंहजी का जन्म स० १९४६ विक्रमी वैशाख कृष्णा १० सोमवार को धनिष्ठा नक्षत्र मे हुआ। यों तो पूज्य पितामह कोठारीजी श्री बलवतसिंहजी के कई एक सताने हुई किन्तु वे सब जीवित न रहीं। उस समय केवलमात्र एक कन्या भोमकुँवरबाई ही विद्यमान थी।

गिरधारीसिंहजी इकलौते पुत्र थे। अतः इनका लालन-पालन भी विशेष प्रेम से हुआ। समय पर विद्याध्ययन भी प्रारंभ करवाया और शिक्षक भी नियत किये किन्तु प्रारंभ में इनका स्वास्थ्य विशेष संयमित न रहने और पूज्य पितामह के प्राचीन संस्कृति, प्राचीन पद्धति एवं प्राचीन विचारों के प्रेमी होने के कारण आधुनिक शिक्षा-पद्धति पर इनका संतोषजनक अध्ययन न हो सका। आप बाल्यकाल ही से तत्कालीन महाराणा साहब फ़तहसिंहजी और महाराज कुमार साहब (वर्तमान महाराणा साहब) भूपालसिंहजी की सेवा मे रहने लगे। दोनों की आप पर पूर्ण कृपा रही और मुख्यतः वर्तमान महाराणा साहब के बाल्यकाल से ही निरन्तर सेवा में रहने के फलस्वरूप इनकी कृपा में दिनों दिन अभिवृद्धि होती ही गई।

प्रारंभिक काल।

भारतवर्ष की शीघ्र विवाह की प्रथानुसार आपका विवाह भी सं० १९६२ में १६ वर्ष की अवस्था में ही जयपुर के सेठ धनरूपमलजी गोलेछा की ज्येष्ठ कन्या सरदारकुँवरबाई से नराणा ग्राम मे हुआ और राज्य से लवाजमा इत्यादि बख्शाया, जिसका वर्णन तृतीय परिच्छेद में किया जा चुका है।

विवाह।

इसके कुछ समय बाद ही तत्कालीन महाराणा साहब ने आपको हाकिम के पद पर नियुक्त करना चाहा किन्तु आपके पिता श्री उस समय इनकी अवस्था कम होने से बाहर जिले में भेजना नहीं चाहते थे अतः उस समय इनकी नियुक्ति हाकिम के पद पर न हो सकी और यहीं पर कोठारीजी बलवंतसिंहजी के अधीन जो सेवाएँ थीं उनमें आपसे भी कार्य लिया जाता रहा। महक्मामाल का कार्य तो विशेष कर आप ही पर छोड़ा गया और इसके अतिरिक्त श्री महाराणा साहब की पेशी, सरकारी दुकान, महक्माखास का मामूली काम, हद्‌बस्त और आबपाशी का भी कितना एक कार्य इनसे लिया जाता रहा। यों तो जब स्वर्गस्थ कोठारीजी के अधीन द्वितीय बार प्रधान पद की सेवा संवत् १९६६ से १९७१ तक रही, उस अरसे में एक बार कोठारीजी को जयपुर जाना पड़ा तो उनके लौटने तक एक सप्ताह के लिए महक्माख़ास का कार्य भी यही करते रहे।

राज्यसेवा का प्रारंभ

इनकी प्रथम धर्मपत्नी (मेरी मातेश्वरी) सेठिया बदनमलजी के पुत्र के विवाह में मंदसोर गई और वहीं पर उनके द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ। वह

प्रथम धर्मपत्नी का स्वर्गवास एव द्वितीय विवाह।

बालक जन्म होते ही शान्त हो गया। तब ही से वे बीमार रहने लगीं। स० १९७१ में तो व्याधि ने विशेष भयकर रूप धारण कर लिया और अनेक औषधोपचार इत्यादि करने पर भी कोई स्थायी लाभ न हुआ। अत में इसी वर्ष स० १९७१ विक्रम की ज्येष्ठ कृष्णा ११ को उनका असमय में ही स्वर्गवास हो गया। यहा की प्रथानुसार पिता श्री के द्वितीय विवाह की चर्चाएँ जोरो से शुरू हुईं किन्तु इन्होने लाभालाभ पर विचार करत हुए विवाह करना स्वीकार नहीं किया। अन्त मे जब पूज्य पितामह ने विशेष अनुरोध किया तो आपने जयपुर के सेठ धनरूपमलजी की कनिष्ठा कन्या (मेरी प्रथम मातेश्वरी की छोटी बहिन उदयकुँवरबाई) से विवाह करना स्वीकार किया और स० १९७२ के वर्ष चित्तौड मे यह द्वितीय विवाह हुआ।

सहाडा हाकिम के पद पर नियुक्ति।

वर्तमान महाराणा साहब ने राज्य के कितनेक अधिकार युवराजपन में अपने अधीन होने पर इनकी स० १९७८ भाद्रपद शुक्ला ८ को सहाडा हाकिम के पद पर नियुक्ति की। इस जिले के हाकिम ये करीब सवा वर्ष रहे।

नादरो का तालाब।

सहाडा जिले मे नानमा नामी ग्राम का तालाब फूट गया और उसे ठीक न कराने पर राज्य की करीब तीन हजार रुपये वार्षिक आय की भी हानि होने की सभावना थी। वहा के जमींदार, काश्तकार इत्यादि लोगों ने उसे पुन बनवाने की प्रार्थना की। उसका तखमीना ५५०००) पचपन हजार रुपयो का था किन्तु इन्होने अपनी देख-रेख से उसे ५५००) साढे पाच हजार रुपये मे सुन्दर और सुदृढ तालाब बनवा दिया।

भीलवाडा हकूमत पर तबादला।

स० १९७९ पौष कृष्णा ४ को इनकी सहाडा से हकूमत भीलवाडा पर तब्दीली हुई। यहा ये १। वर्ष तक हाकिम रहे। भीलवाडा में रामसनेही मुनि लज्जारामजी का झगडा इन्हीं के समय में हुआ, जिसका वर्णन तृतीय परिच्छेद मे आ चुका है।

काजी का शिकायत करना एव कमीशन की नियुक्ति।

इसके अतिरिक्त वहीं पे एक मुसलमान काजी ने एक गाय मार डाली। उसे इन्होंने कैद की सजा दी, जिससे वह इनके खिलाफ हो गया और इनकी चद शिकायतें श्री दरबार व महाराज कुमार साहब मे पेश कीं। गिरधारीसिंहजी से दरयाफ्त फरमाया तो इन्होंने अर्ज की कि शिकायतें झूठी हैं, जाच फरमा ली जावे। किन्तु ऐसी शिकायतें करने वाले से वह सिद्ध न हो सके तो दडनीय मुचलका भी होना

का हटवाड़ा हुआ करता है। उनका मुख्य उद्देश्य यह था कि अच्छे अच्छे पशु बिकने को आवें, जिनसे नसल सुधरे कृषि-वाणिज्य की उन्नति हो किन्तु एक माह के स्थान पर यह मेला पांच पांच, छः छः महीने तक जमने लगा और फल यह हुआ कि बहुत से विदेशी आदमी वालदिये कसाई इत्यादि ब्राह्मणों के नकली वेश में यज्ञोपवीत इत्यादि डाल आकर मवेशी खरीदने लगे और वे मवेशी कटने लगे। ऐसी शिकायतें पेश आने पर श्री बड़े दरबार व वर्तमान महाराणा साहब ने समय समय पर आज्ञाएँ जारी फ़रमाई कि वालदिये कसाई इत्यादि अज्ञात पुरुषों के पास मवेशी नहीं बेचें किन्तु वे लालच में आकर इस आज्ञा का पालन भी पूर्णतया न करने लगे और बेचारी ग़रीब गौएँ, बैल इत्यादि कई एक प्राणी कसाइयों के हाथ चढ़ने लगे। यह हाल श्रीमान् महाराणा साहब में अर्ज करने पर साफ़ हुकुम जारी हो गया कि एक महीने से अधिक यह हटवाड़ा जारी न रक्खा जाय और इस एक महीने मे भी चुंगी (महक्मे सायर) के गिरदावर और जिला गिरवा के गिरदावर व नायब हाकिम को मौके पर रहकर निगरानी रखने का हुकुम हुआ ताकि बेचारे मूक प्राणी कसाइयों के हाथों से बचें और कृषि-वाणिज्य इत्यादि की भी अवनति न हो। स्वर्गस्थ कोठारीजी ने इस हटवाड़े की जो जो हानियाँ और मवेशियों की कमी से किस प्रकार देश की करुणाजनक दशा हो जाती है, इस विषय पर तत्कालीन रेवेन्यु कमिश्नर मिस्टर ट्रेंच को समझाया और उन्होंने भी कोठारीजी के कथन का पूर्ण समर्थन किया। श्रीमानों के धर्मशील और गोरक्षक नरेश होने का ही फल है कि इस प्रकार पशुओं की रक्षा होती है।

जीवरक्षा।

सं० १९८४-८५ के वर्ष यहाँ पर अनाज की कुछ कमी होने से प्रजा में असन्तोष बढ़ने लगा। इस पर महता जीवनसिंहजी हाकिम मगरा कस्टम कमिश्नर पंडित रतिलालजी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस लाला अमृतलालजी और गिरधारीसिंहजी हाकिम गिरवा का एक कमीशन मुकर्रर हुआ। विशेष कर अनाज गिरवा जिले से मँगाने का प्रवन्ध किया गया और शीघ्र ही लोगों को अनाज अधिकता से मिलने लग गया।

अनाज का प्रबंध।

सं० १९८६ के ज्येष्ठ में महाराणा साहब फ़तहसिंहजी का वैकुण्ठवास हुआ और सं० १९८७ के भाद्रपद महीने मे इनका हकूमत गिरवा से महक्मा देवस्थान पर वेतन वृद्धि होकर तबादला हुआ। देवस्थान के ये करीब २॥ वर्ष तक हाकिम रहे। श्री कैलाशपुरी मे नये गोलेरे

देवस्थान पर तबादला।

का निर्माण, आहाड में मीराबाई का मंदिर और बावडी का जीर्णोद्धार तथा बावडी के पास पानी पीने की प्याऊ का निर्माण इन्हीं के समय में हुआ।

कपासन हाकिम के पद पर नियुक्ति।

आपके पूज्य पिताश्री की वृद्धावस्था थी और इनकी हार्दिक इच्छा अपने स्वामी एवं पिताश्री की सेवा से दूर रहने की न थी किन्तु "सब दिन होत न एक समान" के अनुसार आपको दोनों सेवाओं से कुछ दूर रहना बदा था। तदनुसार देवस्थान से सं० १९८९ के ज्येष्ठ में इनका तबादला कपासन हकूमत पर हो गया।

पुत्रजन्म और पत्नीवियोग।

सं० १९९० में इनके तृतीय पुत्र शिवदानसिंहजी का जन्म कपासन ही में हुआ और इसी में प्रसूतिरोग से आपकी धर्मपत्नी (मेरी द्वितीय मातेश्वरी उदयकुँवरबाई) का कपासन में पौष शुक्ला ७ सं० १९९० विक्रमी को स्वर्गवास हो गया। इनकी बीमारी में अनेक औषधोपचार किये गये किन्तु सफलता न हुई और इनका स्त्रीसुख भी परमात्मा ने मध्य आयु में ही खंडित कर दिया। मातेश्वरी का करियावर इत्यादि कपासन में ही किया और महता गोविन्दसिंहजी और उनकी धर्मपत्नी की छतरी के पास इनकी भी चार खभों की छतरी (स्मारक) बनवाई।

पूज्यश्री का चातुर्मास।

सं० १९९१ में पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज का इन्होंने विशेष प्रयत्न कर कपासन में चातुर्मास करवाया। इसमें कपासन के लोगों ने भी पूज्यश्री की बहुत सेवा की और उदारता दिखाई। इस चातुर्मास में स्वर्गस्थ पूज्य पितामह एवं पिताश्री को पूज्यश्री की सेवा का विशेष लाभ मिला।

भूपाल सराय।

कपासन में इन्होंने स्टेशन पर एक उत्तम सराय बनाने के लिये प्रेरणा की और श्रीमान् महाराणा साहब से प्रार्थना की स्वीकृति मिलने पर इन्होंने बहुत कुछ परिश्रम के साथ दुमंजिला सराय बनवाई, जिसमें करीब १९ हजार रुपये लगे। इस सराय का नाम भूपाल सराय रक्खा गया है। इस सराय के बन जाने से गंगापुर, राशमी, सहाडा इत्यादि स्थानों में आने जाने वाले अनेक मनुष्यों को बडा विश्राम मिलता है।

करेडे तालाब में प्राणियों की रक्षा।

पहली बार, जब कोठारीजी गिरवा जिले के हाकिम थे, स्वर्गस्थ महाराणा साहब का राशमी जिले में शेर की शिकार के लिये पधारना हुआ। राशमी से गिरवे जिले में पधारते समय करेडे भी विराजे। यहां एक उत्तम एवं बृहत् तालाब का निर्माण उन्हीं दिनों हो रहा था। इन्होंने महाराणा साहब से अर्ज की कि इस तालाब पर मछली इत्यादि

की शिकार के लिये पहले से ही रोक हो जाय तो अच्छा है क्योंकि तालाब बन जाने पर फिर कई लोग शिकार खेलेंगे। इस पर कपासन हाकिम को इसकी रोक की कार्रवाई करने बाबत लिख देने की पेशकार भवानीशंकरजी जोशी को आज्ञा की और उनके लिखने पर कपासन हाकिम ने महकमाखास में रिपोर्ट पेश की। उस पर यह आज्ञा हुई कि तालाब बन जाने पर इसके लिये रिपोर्ट पेश करें। तत्पश्चात् करीब १०-११ वर्ष बाद जब यह तालाब सम्पूर्ण होने को था, गिरधारीसिंहजी ही उक्त कपासन जिले के हाकिम थे। अतः उनके ही समय में पिछली रिपोर्ट पेश हुई और श्रीमान् मेदपाटेश्वरों की आज्ञानुसार हिंसानिषेध के साईन बोर्ड (आज्ञापत्र) स्थान स्थान पर करेडे तालाब की पाल इत्यादि पर लगवा दिये गये हैं।

राजनगर तबदीली।

सं० १९९४ भाद्रपद कृष्णा २ को इनका कपासन से राजनगर हकूमत पर तबादला हो गया। यहां ये करीब छः महीने तक हाकिम रहे। सं० १९९४ के कार्त्तिक मास में श्रीमान् महाराणा साहब का श्री चारभुजा दर्शनार्थ पधारना हुआ और थोड़े दिन राजनगर विराजे। स्वर्गस्थ कोठारीजी की असाध्य एवं अंतिम बीमारी में भी इनको पितामह श्री के अत्यन्त अनुरोध करने पर प्रायः राजनगर ही रहना पड़ा और श्री मालिकों की सेवा की, जिसका वर्णन पूज्य पितामह के जीवन के अंतिम चित्रपट मे किया गया है।

चारभुजा की सड़क।

राजनगर से श्री चारभुजा जाने के लिये कुछ समय पूर्व एक सड़क तैयार हुई थी किन्तु वह रास्ता बहुत दूर पड़ता था और भूमि भी समान न थी। अतः इस बार महाराणा साहब के राजनगर से चारभुजा पधारने के समय इन्होंने नई सड़क बनवाई, जिसमें करीब ६ माईल का चक्कर कम होकर मार्ग भी निकट एवं सुगम हो गया।

दुखद चित्रपट एवं गिरवे पर तबादला।

पौष शुक्ला ३ सं० १९९४ की रात्रि में पूज्य पितामह का स्वर्गवास हो गया और हमारे घर के ऊपर विपत्ति के बादल मँडराने का समय आ उपस्थित हुआ। महाराणा साहब के उन दिनों जयसमुद्र विराजने के कारण भूपालनगर राव मनोहरसिंहजी और बाबू रामगोपालजी प्राइवेट सेक्रेटरी उदयपुर कोठारीजी के यहां बैठने के लिये आये। तब गिरधारीसिंहजी ने अपनी दुःखगाथा जताते हुए श्रीमानों मे अर्ज कर इन्हें श्रीमानों के चरणों में ही रखने की प्रार्थना करने को कहा। तदनुसार इन दोनों ने श्रीमानों मे अर्ज की और उदयपुर पधारने पर कोठारीजी के शोकसंतप्त परिवार

ने माघ शुक्ला १५ के दिन श्री मेदपाठेश्वरो के चरण वदन किये। श्रीमानों ने पूर्ण आश्वासन और सहानुभूति के भाव प्रदर्शित फरमाये और फाल्गुन कृष्णा २ स० १९९४ को गिरधारीसिंहजी का तबादला कृपा कर राजनगर से हकूमत गिरवा पर फरमा दिया।

स्वामिकृपा के कुछ उदाहरण।

कोठारीजी के यहाँ ठठ से एक चाँदी का छडी घोटा रहता था। कोठारीजी श्रीबलवन्तसिंहजी के स्वर्गवास हुए को १५ ही दिन हुए थे कि उसे वापस राज्य में जमा करा देने की ताकीद होने लगी। इससे शोक-सन्तप्त परिवार को स्वर्गस्थ कोठारीजी का अभाव अत्यधिक दु खदायी अनुभव होने लगा। सुख दु ख को भुलाता है और दु ख दु ख को बढाता है। श्रीमान् महाराणा साहब ने पूर्ण कृपा कर इस चाँदी के छडी घोट को नित्य के लिये कोठारीजी के यहाँ ही रहने दिये जाने की आज्ञा बख्शी और अगर राज्य में कहीं कोठारीजी के जिम्मे ये अमानत में बाकी निकलते हो तो अतो मडवाने का भी हुकुम फ़रमाया। इस एक छोटी-सी बात से ही शोकसतप्त परिवार के सम्मुख स्वामिकृपा का ज्वलत उदाहरण स्थापित हो गया। यही नहीं, बल्कि स्वर्गीय कोठारीजी के समय के अनुसार बलेणा घोडा तेल गुलाल का नेग पानगा लागत सब उसी प्रकार साबित कर बख्शने के लिये कोठारीजी ने तेजसिंहजी महता की मारफत श्रीमानों मे अर्ज़ी नजर कराई। उस पर साबित कर बख्शे। स्वर्गीय कोठारीजी के करियावर के भोजन के अवसर पर १००००) रुपये बिना ब्याज कर्ज और २०००) रुपये बख्शाऊ बख्शाये।

रग सिरोपाव।

स० १९९४ आषाढ शुक्ला ७ को स्वर्गीय कोठारीजी के शोकनिवारण के अवसर पर श्रीमानों ने कोठारीजी के रग का सिरोपाव गुलाबी कीमती ५१) रुपया और कोठारी मोतीसिंहजी के रग का सिरोपाव कीमती ३२) रुपया कपासी रग का बख्शाया। इसी प्रकार मुझे व भाई दुलेहसिंहजी को आली अदरग रग की पागें भी कपडा के भडार से बख्शाई और इसके दो एक दिन बाद एक भूपालशाही छपमा मेल का पाग दुपट्टा भी कीमती करीब १२५) रुपये का बख्शाया। इसी प्रकार श्रीमती बडी महाराणी साहिबा ने इस अवसर पर कोठारीजी के व हम सब के पाग दुपट्टे और औरतों में साडियाँ भी बख्शीं।

साजी।

स० १९९४ आषाढ शुक्ला ६ को श्रीमती छोटी महाराणी साहिबा ने चूडा धारण किया। सो नित्य के अनुसार कोठारीजी के यहा से भी आषाढ शुक्ला १५ को साजी महलों नज़र कराई गई।

राज श्री महद्राज-सभा और राज श्री वाल्टरकृत राजपुत्र हितकारिणीसभा के सदस्य बनाये जाना।

सं० १९९४ ज्येष्ठ कृष्णा १२ को स्वर्गीय कोठारीजी के स्थान पर राज श्री महद्राजसभा और सं० १९९४ आश्विन शुक्ला ७ को राज श्री वाल्टरकृत राजपुत्रहितकारिणी सभा में कोठारीजी को सदस्य नियत फ़रमाया।

स्वामिकृपा।

श्रीमानों की कोठारीजी पर बाल्यकाल से ही पूर्ण कृपा रही है और कोठारीजी के जीवन में अनेकानेक कृपाएँ प्रदर्शित फ़रमाते हुए जिस प्रकार श्रीमानों ने उदारहृदयता और स्वामिवत्सलता का परिचय दिया है, उसका वर्णन किया जाय तो एक स्वतंत्र परिच्छेद की आवश्यकता है। पहले भी गिरधारीसिंहजी के हिसाबी काम की उत्तमता व प्रत्येक ही जिले के आँकड़े (वार्षिक हिसाब) जल्दी और सब से पहले पेश होने के उपहार में इनके कार्य को पसन्द फ़रमा कारकर्दगी का नोट फरमाया और गिर्वा जैसे बड़े जिले का आँकड़ा सं० १९९४ के वर्ष का भी सब से पहले पेश करने पर इस अवसर पर इनके वेतन मे भी वृद्धि फ़रमाई। सं० १९८७ के वर्ष कोठारीजी के पैर मे चोट आ गई और इन्हें श्रीमानों के दर्शन किये को बहुत समय निकल गया। इन्होंने दर्शनों की अभिलाषा प्रकट की तो सायंकाल के समय सैर मे वापस महलों मे पधारते समय कोठारीजी की हवेली के सामने से होकर पधारना हुआ। चार पांच मिनट हवेली बाहर मोटर खड़ी रख दर्शन दिये। स्वर्गीय कोठारीजी ने और वर्तमान कोठारीजी ने नज़र न्योछावर की, फिर महलों मे पधारना हुआ।

कोठारीजी का सम्मान।

कोठारीजी को प्रधानपुत्र होने से बैठक तो पहले ही से थी किन्तु नाव की सवारी में दाहिने खाते की बैठक, सुनहरी पवित्रा, अनन्त इत्यादि सम्मान स्वर्गीय महाराणा साहब ने अता फ़रमाये। और वर्तमान महाराणा साहब ने सं० १९८७ के वर्ष नाव की सवारी मे बायें खाते की बैठक, सं० १९८८ फाल्गुन कृष्णा ११ को श्रीमानों के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य मे पैरों में पहनने के सोने के लंगर, सं० १९९३ आश्विन शुक्ला १० को सुनहरी मांझा, सं० १९९४ फाल्गुन कृष्णा ११ को जीकारा, सं० १९९५ फाल्गुन कृष्णा ६ को महाराजकुमार साहब की गोदनशीनी के दिन पैरों में पहनने के सोने के दोहरा लंगर का सम्मान और सं० १९९५ फाल्गुन कृष्णा ११ को मोतियों की जड़ाऊ फूलमाला बांधने की आज्ञा प्रदान फ़रमा सम्मानित फ़रमाया। इसके अतिरिक्त संवत् १९९६ श्रावण शुक्ला ३ गुरुवार ता० १७ अगस्त के

महाराज कुमार साहब श्रीभगवतसिंहजी

न्नि श्रीमानों ने कोठारीजी पर महती कृपा के भाव प्रदर्शित फरमाते हुए इन्हें ताजीम का सम्मान प्रदान फरमाया। यह श्रीमानों की असीम उदारता एवं आदर्श कृपालु होने का प्रमाण है। इस उच्च सम्मान के लिये कोठारीजी ने श्रीमानों के चरण वन्दन कर नजर न्योछावर की और इस अवसर पर नेमपुर ठाकुर दधिवाडिया करणीदानजी ने निम्नलिखित कविता श्रीमानों से अर्ज की—

सवैया

रावरे पूर्वज गॅन स्वरूप त, आज लौं एक सा भक्ति निहारी।
केहरि औ बलवन्त के वंश की, मर्ज्या पालन कीन्ह सम्हारी॥
धन्य उदार पनो प्रभु आपको, सर्व प्रकार दी इज्जत सारी।
रान भुपाल कियो सुकृतारथ, दै ताजीम अबै गिरिधारी॥

दोहा

स्वामि धर्म धारत सदा, कठिन कोठारी वस।
प्रभु तेगे मालिक पनो, धन्य वस अवतस॥

इसी प्रकार इसी वर्ष दीपावली को इन्हें दरीखाने के बीडे का सम्मान भी बख्शा है।

देशाटन।

सन् १९०३ और सन् १९१० के देहली दरबार के समय ये भी श्री बडे महाराणा साहब के साथ देहली गये और सन् १९१० के देहली दरबार में तो ये भी दरबार के अन्दर गये। इसी प्रकार जब सं० १९५९ विक्रमी में मेयो कालेज अजमेर में रईसों की कमेटी हुई और महाराणा साहब का पधारना हुआ, तब भी ये साथ गये। वर्तमान महाराणा साहब के प्रथम एवं तृतीय विवाहोत्सव में भी ये साथ गये थे। द्वितीय विवाहोत्सव के समय कोठारी मोतीसिंहजी के विशेष बीमार हो जाने से ये साथ न जा सके। सं० १९८१ के वर्ष अजमेर के सेठ हीराचन्दजी सचेती के ज्येष्ठ पुत्र रतनचदजी का विवाह सम्पन्न हुआ। ये उसमें भी गये और उसी अवसर पर रामेश्वर की यात्रा भी की। इसी प्रकार सं० १९६७ मे स्वर्गीय कोठारीजी ने मेवाड का माली, ज्युडीशल इत्यादि कार्यों का निरीक्षण करने के लिये जनरल दौरा किया। तब ये भी साथ रहे। इसके अतिरिक्त बम्बई, ओंकारनाथ, गया, काशी, प्रयाग, मथुरा, गोवर्धन इत्यादि कई एक स्थानों में जाने के अवसर इन्हें प्राप्त होते रहे हैं।

सम्वत् १९६५ फाल्गुन कृष्णा ६ के दिन श्रीमान महाराणा साहब ने शिवरती महाराज शिवदानसिंहजी के छोटे भाई प्रतापसिंहजी के ज्येष्ठ कुँवर

महाराज कुमार साहब का गोद लिया जाना।

भगवतसिंहजी को गोद लिया। प्रातःकाल ही मे गोद का दस्तूर हुआ। नज़र, न्योछावर इत्यादि हुई और सायंकाल में दरबार हुआ। इसमें श्रीमान् कुँवरजी बापजी (महाराज कुमार साहब) भी पधारे। सरदार, और उमराओं ने महाराज कुमार साहब के नज़र, न्योछावर इत्यादि किया। फिर दरीखाना (दरबार) बरख़ास्त हुआ।

कोठारीजी की सन्तति

ज्येष्ठ पुत्र।

सर्वप्रथम पिता श्री गिरधारीसिंहजी और माता श्री सरदारकुँवरबाई से सं० १९६६ विक्रमी पौष कृष्णा १० गुरुवार के दिन विशाखा नक्षत्र में मेरा जन्म जयपुर मेरे ननिहाल मे हुआ। यों तो मुझ पर ठेठ से ही पूज्य पितामह का विशेष प्रेम होने से मैं दो तीन वर्ष की उम्र से ही उनके पास रहने लगा और जब मेरी केवलमात्र पाँच वर्ष की आयु में माता ने मुझे परित्याग कर इस संसार से पयान कर दिया फिर तो मेरे एकमात्र सहारे और प्राणरक्षक पूज्य पितामह ही बन गये और उन्हीं के पवित्र चरणों की शरण मुझे मिली। मेरा स्वास्थ्य बाल्यकाल से ही बहुत खराब रहने लगा और मै प्रायः रोग-ग्रस्त रहा करता था। अतः पूज्य पितामह के लिये मैं केवल कष्टदायक ही सिद्ध हुआ। मुझे चेचक, मोतीजरा इत्यादि अनेक व्याधियाँ बड़ी उग्रता से हुई। वे घड़ियाँ अब तक मेरी स्मृति के आँगन मे नृत्य करती रहती हैं। उन विकट व्याधियों एवं विषम घड़ियों मे नाना प्रकार के परिश्रम स्वयं झेलकर भी पितामह ने मेरे लिये कई एक दुःख की रात्रियाँ व्यतीत कीं। मेरी परम अभिलाषा है कि उन कठिन घड़ियों का वर्णन कर किसी प्रकार पूज्य पितामह को पुष्पाञ्जलि अर्पण करूँ किन्तु मेरे जैसे अल्पज्ञ की अभिलाषा क पूर्ण होना केवल परमात्मा की कृपा पर निर्भर है। जब कभी ऐसा सुयोग एवं सुअवसर प्राप्त होगा, मैं अपने को धन्य समझूँगा। अस्तु, क्या आवश्यकता थी कि मुझ जैसे क्षुद्रात्मा के लिये उस महान् आत्मा ने इतना कष्ट झेलकर भी मेरे लिए अनेकानेक यत्न किये किन्तु यह केवलमात्र उनकी महत्ता और मुझ पर प्रबल प्रेम का कारण था। महान् पुरुष क्षुद्र प्राणियों के आश्वासन के लिये ही शरीर धारण करते हैं। मेरे रोम-रोम मे पूज्य पितामह का उपकार भरा है और उनके ऋण से जन्म-जन्मान्तर मे भी मुक्त होना असंभव है।

बाल्यकाल से ही मुझे आधुनिक शिक्षा-पद्धति पर विद्याभ्यास कराने का लक्ष्य न रहा और प्रारम्भ मे प्रायः देव-सेवा के ही खेलकूद इत्यादि मे विशेष समय व्यतीत हुआ। कोठारिये के धाय भाई सुखदेवजी मेरे निरीक्षक नियुक्त किये गये, जो बड़े सदाचारी

तेजसिंह कोठारी

पुरुष हैं। इन्होंने हिन्दी, संस्कृत का अध्ययन भी कुछ-कुछ प्रारम्भ कराया। बाद में भटमेवाडा रेवानाथजी से हिन्दी, संस्कृत और भटमेवाडा चन्द्रलालजी से अंग्रेजी का अभ्यास शुरू कराया गया। मैट्रिक में प्रिंसिपल सतीशचन्द्रजी वोस एम० एस० सी० अध्यापक नियुक्त किये। इन्होंने नियत समय से भी अत्यधिक परिश्रम से मुझे शिक्षा दी, जो धन्यवाद के पात्र हैं। इन्टरमीडियेट मे वैजनाथजी हरि जोशी एम० ए० से भी अध्ययन किया। फिर बी० ए० के अध्ययन के लिये मैं इन्दौर गया और होल्कर कालेज इन्दौर से बी० ए० पास किया। इसके बाद एल० एल० बी० का अध्ययन भी प्रारम्भ किया, परन्तु मुझे असह्य कर्णरोग हो जाने से डाक्टरो के कथनानुसार विद्याध्ययन छोडना पडा और मैं उदयपुर चला आया।

विद्याभ्यास छोडने पर स० १९८९ भाद्रपद शुक्ला १३ को श्रीमानो ने मेरे सुपुर्द सरकारी दुकान (स्टेट बैंक) की सेवा फरमाई। इसी वर्ष फाल्गुन मास में पिताश्री देवस्थान के हाकिम थे। तब देवस्थान के काम मे भी सहायता देने का हुक्म हुआ। सो करीब ३ महीने वहाँ भी काम किया। स० १९९१ से स० १९९४ फाल्गुन कृष्णा ७ तक सरकारी दुकान के साथ साथ एडीशनल मुन्सिफ व जज मतालबा खफीफा के पद पर भी नियुक्ति फरमाई और वेतन सरकारी दुकान से मिलता था। अत इस काम का बाद में स० १९९४ से अलग अलाउन्स भी नियत करके बख्शा। स० १९९४ फाल्गुन कृष्णा ७ एडिशनल मुन्सिफ मे सीटी मजिस्ट्रेट व रेलवे मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्ति हुई। स० १९९० के वैशाख, स० १९९२ के भाद्रपद और स० १९९५ के भाद्रपद मे वतन मे भी अभिवृद्धि फरमा कृपाभाव प्रदर्शित फ़रमाये। स० १९९४ के वर्ष दो वार गिरवा हाकिम के पद की सेवा भी थोडे-थोडे दिनो इञ्चार्ज तरीके पर लेवाई।

स० १९८२ मार्गशीर्ष शुक्ला ७ को महता लक्ष्मणसिंहजी फौजबख्शी की छोटी कन्या रतनकुमारी से मेरा सम्बन्ध होना निश्चित हुआ और स० १९८४ वैशाख शुक्ला ११ को विवाह हुआ। इसमे नित्य के अनुसार राज्य से बनोली निकलाई और अन्य लवाजमा भी बख्शा।

नित्य पूज्य पितामह की सेवा मे रहने से मुझे बहुत कुछ देशाटन एव यात्राएँ करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। स० १९८१ के वर्ष पूज्य पिताश्री के साथ रामेश्वर और स० १९९४ के वर्ष स्वर्गीय पूज्य पितामह के साथ द्वारका एव जैन तीर्थों की यात्रा का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। स० १९९७ के वर्ष श्रीमान महाराणा साहब के तृतीय विवाहोत्सव में खोडाणे भी बरात मे मुझे साथ ले पधारे।

स्वर्गीय महाराणा साहव और वर्तमान महाराणा साहव की मुझ पर भी पूर्ण कृपा रही और मेरे किसी योग्य न होते हुए भी पूज्य पितामह व पिताश्री की सेवाओं की कदर फ़रमा और अपना विरद विचार समय समय पर लालन पालन सहित पूर्ण कृपा के भाव प्रदर्शित फ़रमाते रहे। वर्तमान महाराणा साहव ने गद्दी विराजने पर सं० १९८६ के ज्येष्ठ में वैठक, सं० १९८७ के भाद्रपद में सुनहरी अनन्त और पवित्रा, सं० १९८७ के चैत्र में नाव की सवारी में दाहिने खाते की वैठक, सं० १९९२ के फाल्गुन कृष्णा ६ को पैरों में पहनने के सोने के लंगर, सं० १९९३ के होली के दिन सुनहरी मांझा,[1] सं० १९९५ विक्रमी फाल्गुन कृष्णा ६ को महाराजकुमार साहव की गोदनशीनी के दिन पैरों में पहनने के सोने के तोड़े का सम्मान और सं० १९९५ चैत्र शुक्ला ४ को फूलमाला वांधने की इज्जत वख़्श सम्मानित फ़रमाया है। श्रीमानों की एक नहीं किन्तु अनेकानेक कृपाओं का ऋण चुकाने में मैं तो क्या किन्तु मेरे वंश की समुचित शक्ति भी लगाई जाय तव भी असंभव है।

द्वितीय पुत्र।

कोठारीजी के द्वितीय धर्मपत्नी (माता श्री उदयकुँवरवाई) से सं० १९८० विक्रमी की माघ शुक्ला १४ भौमवार को आश्लेषा नक्षत्र मे पुत्र दुलहसिंहजी का जन्म जयपुर इनके ननिहाल मे हुआ। ये इस समय मिडल मे विद्याध्ययन कर रहे है। श्रीमान् महाराणा साहव ने सं० १९९२ की आश्विन शुक्ला १० को दशहरे के दिन इन्हे वैठक, सं० १९९५ के भाद्रपद कृष्णा १४ को सुनहरी पवित्रा और सं० १९९५ के वैशाख कृष्णा ३ को धींगा गनगोर के दिन नाव में दाहिने खाते की वैठक वख़्श सम्मानित फ़रमाया। इनका संवंध महता उदयलालजी हाकिम जहाजपुर की छोटी कन्या गिरिराजकुमारी से निश्चित हुआ है।

तृतीय पुत्र।

कोठारीजी के तृतीय पुत्र शिवदानसिंहजी का जन्म सं० १९९० वि० मार्गशीर्ष शुक्ला ६ शनिवार को कपासन मे हुआ और इसी में माता का स्वर्गवास हो गया। वड़ी कठिनता से इनका पालन-पोषण हुआ। सं० १९९३ के चैत्र मे इन्हें गर्दनतोड़ ज्वर (Meningitis) ने आ घेरा। रायवहादुर डाक्टर छगनाथजी ने अत्यधिक परिश्रम से इनकी चिकित्सा

---

१ इस अवसर पर निम्नलिखित सोरठा दधिवाड़िया करनीदानजी ने श्रीमान् महाराणा साहव मे अर्ज किया—

मांझो पाघ मझार, वगस्यो तेजल ने वलै।
हाथा पर वलिहार, राण सदा चिंरजी रहो ॥१॥

की। फलत जीवन रह गया किन्तु श्रवणशक्ति और कथनशक्ति बिलकुल शिथिल हो गई। पैरो मे भी निर्बलता आ गई। स्वर्गीय कोठारीजी ने अनेक औषधोपचार कराये। काठियावाड की अंतिम यात्रा के समय भी कई एक बडे बडे सर्जनो, डाक्टरो इत्यादि से परामर्श किया किन्तु कोई आशाजनक उत्तर नहीं मिला। परमात्मा कृपा कर बालक की स्थिति सुधारे तो जीवन सार्थक हो। महाराणा साहब ने स० १९९५ भाद्रपद कृष्णा १४ को इन्हें सुनहरी पवित्रा बख्श सम्मानित फरमाया है। और सवन् १९९६ श्रावण कृष्णा अमावस्या को बैठक का सम्मान भी बख्शा है।

पुत्री दौलत-कुमारी।

कोठारीजी की कन्या दौलतकुमारी का जन्म स० १९८४ की शरद् पूर्णिमा को उदयपुर ही मे हुआ। ये इस समय हिन्दी एव कुछ अंग्रेजी का अध्ययन कर रही हैं। इनका सम्बन्ध इन्दौर राज्य के सुप्रसिद्ध दीवान वजीरद्दौला रायबहादुर सर सिरहमलजी बापना के० टी० सी० आई० ई० के पौत्र (ज्येष्ठपुत्र कल्याणमलजी के ज्येष्ठपुत्र) यशवतसिंहजी से होना निश्चित हुआ है।

पौत्र

पौत्र मोहनसिंहजी का जन्म स० १९९२ विक्रमी पौष कृष्णा ७ भौमवार को पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र मे उदयपुर मे ही महता लक्ष्मणसिंहजी फौजबख्शी के यहाँ हुआ। जन्मोत्सव के उपलक्ष्य मे श्रीमान् महाराणा साहब की हवेली पधरावणी स० १९९२ फाल्गुन कृष्णा ६ को हुई। श्रीमानो ने स० १९९५ भाद्रपद कृष्णा १४ को इन्हें भी सुनहरी पवित्रे का सम्मान अता फरमाया है और सवन १९९६ श्रावण कृष्णा अमावस्या को बैठक का सम्मान बख्शा है।

पाँचवाँ परिच्छेद

स्वर्गीय कोठारीजी के निजी सम्बन्धी मित्र और स्नेही

कोठारी छगनलालजी

कोठारी पन्नालालजी के ज्येष्ठ पुत्र और कोठारी केशरीसिंहजी के ज्येष्ठ भ्राता का नाम छगनलालजी था। इनका जन्म सं० १८७३ विक्रमी पौष कृष्णा ३० को हुआ। इनका पठन-पाठन मामूली हुआ और प्रारम्भिक २५-२६ वर्ष इन्हें भी विपत्ति में ही बिताने पड़े। सं० १८९९ में महाराणा साहब स्वरूपसिंहजी के राज्यसिंहासन पर विराजने पर इनके भी भाग्योदय का श्रीगणेश हुआ और राज्यसेवा में रहने लगे।

सं० १९०० में रोकड़ का भंडार और सं० १९०१ में कोठार तथा फ़ौज का कार्य इनके सुपुर्द हुआ। सं० १९०४ में राजनगर, पोटलां, खेरोदा इत्यादि परगनों का काम इनके सुपुर्द हुआ और सं० १९०५ मे सादड़ी, कनेरा, कुंभलगढ़, मगरा, खेरवाड़ा, रायपुर आदि परगने भी इनके अधीन किये गये। इसी प्रकार सं० १९१४ में इनके सुपुर्द श्री परमेश्वरों के भंडार तालुक के गाँवों की निगरानी हुई। सं० १९१७ मे रंगभवन का ख़ज़ाना नये सर कायम होकर कोठारी छगनलालजी को भी मोतियों की कंठी बख़्शी। महाराणा साहब स्वरूपसिंहजी की इन पर भी अच्छी कृपा रही किन्तु अपने स्वामी के स्वर्गवासी हो जाने पर महाराणा साहब शंभुसिंहजी की नाबालगी में सं० १९१९ में इन्हें और केशरीसिंहजी को कैद हुई। केशरीसिंहजी बड़े रसोड़े रखाये। छगनलालजी हवेली ही रहे। किन्तु निगरानी मुकर्रर कर दी गई। दुश्मनों के बादल हटने पर चैत कृष्णा १४ सं० १९१९ को दोनों भाई कैद से मुक्त कर दिये गये। सं० १९२० में रोकड़ के भंडार का कार्य वापस इनके सुपुर्द हुआ। कोठारी केशरीसिंहजी की हवेली श्रीजी हुजूर की पधरावणियों के अवसर पर छगनलालजी को भी मोतियों की कंठी, सिरोपाव इत्यादि की बख़्शीश होती रही है। सं० १९२७ के वर्ष इन दोनों भाइयों से तीन लाख रुपये का रुक्का लिखवाया गया। उसमे से पचास हज़ार इन्होंने दाखिल किये। सं० १९२७ मे देवस्थान और कोठारी केशरीसिंहजी के देहान्त के बाद महक्मेमाल का काम भी इनके सुपुर्द हुआ। सं० १९२९ में श्रीजी हुजूर की

कोठारी बलवन्तसिंहजी के यहा शीतलाष्टमी के दिन पधरावणी हुई। उस अवसर पर छगनलालजी को सोने के तोडे इनायत फरमाये। स० १९३३ के वर्ष छगनलालजी को सरकार गवर्नमेन्ट ने भी राय का खिताब देकर सम्मानित किया। स० १९०५ के वर्ष इन्हें जागीरी में गाव मोरजाई बख्शा किन्तु स० १९१७ में इस गॉव के बजाय गॉव सेंतुरिया बख्शा गया और स० १९१६ में एक वाडी, जो कोठारी केशरीसिंहजी की वाडी में मिली हुई थी, इन्हें भी बख्शी। कोठारी छगनलालजी का प्रथम विवाह साहबसिंहजी बीरानी की कन्या चित्रकुँवर से हुआ। उनके देहान्त हो जाने पर दूसरा विवाह अटालिये टकचन्दजी तलेसरा की पुत्री रम्भाकुँवर से हुआ। किन्तु उनका भी देहान्त हो जाने पर स० १९१७ में तृतीय विवाह नगरसेठ हुक्मीचन्दजी बापना की कन्या साहबकुँवर से हुआ। इनके प्रथम विवाह से एक कन्या बख्तावरकुँवरबाई हुई, जिनका विवाह जीतमलजी सिमेसरा से किया गया। द्वितीय विवाह से एक कन्या गभीर-कुँवरबाई हुई। इनका विवाह बछावत महता राय पन्नालालजी से स० १९१४ के वर्ष किया गया। छगनलालजी के कोई पुत्र न होने और न कोठारी केशरीसिंहजी के जायन्दा पुत्र होने से, बनेडा के माल्या कोठारी भगनलालजी के पुत्र दानमलजी को इन्होंने गोद लिया किन्तु तत्कालीन महाराणा साहब ने इनका नाम मोतीसिंहजी बख्शा।

स० १९३७ ज्येष्ठ शुक्ला ५ को कोठारी छगनलालजी का ६४ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। छगनलालजी सीधे स्वभाव के, मिलनसार और राज्य के हितैषी सेवक थे। कोठारी केशरीसिंहजी और इनमें परस्पर अच्छा स्नेह रहा। श्वेताम्बर मन्दिर-मार्गी धर्म के ये पक्के उपासक थे।

कोठारी मोतीसिंहजी

स० १९३७ के वर्ष रोकड का भंडार, टकसाल और स्टाम्प का कार्य कोठारी मोतीसिंहजी के सुपुर्द हुआ, जिसे ये बहुत वर्षों तक करते रहे। इनका पहला विवाह कटारिया महता गोपालदासजी की कन्या अनूपकुँवरबाई से हुआ। तोरण हाथी के होदे पर पधाया। द्वितीय विवाह स० १९३४ में जैतारण के भंडारी रूपचन्दजी की कन्या इन्द्रकुँवरबाई से हुआ। किन्तु इनका भी देहान्त हो जाने पर स० १९४७ में इनका तृतीय विवाह भंडारी रतनलालजी की कन्या अकुनकुँवरबाई से हुआ। किन्तु कोई पुत्र जीवित नहीं रहने और न इधर कोठारीजी बलवन्तसिंहजी के घर से यहां गोद देने के लिये एक से अधिक पुत्र अथवा पौत्र न होने से कोठारीजी बलवन्तसिंहजी की

स्वीकृति से मोतीसिंहजी ने मसूदे के कोठारी माधोसिंहजी के पुत्र दलपतसिंहजी को गोद लिया। ये सिरोही राज्य के डिप्टी प्राइम मिनिस्टर के पद पर कुछ वर्षों तक रहे। सरकार गवर्नमेन्ट से केपटन की उपाधि भी हाल ही में इन्हें मिली है और श्रीमेद-पाटेश्वरों ने बैठक का सम्मान बख़्शा है। इनका विवाह नंदराय के सचेती धूलचन्द्रजी की कन्या उगमकुमारी बाई से हुआ है। इनसे दो पुत्र गणपतसिंहजी, नरपतसिंहजी और एक कन्या गणपतकुमारी है।

कोठारी जसराजजी

रणधीरोत गोत्रोद्भव कोठारी मोतीरामजी के पौत्र और मालजी के पुत्र जसराजजी हुए। ये बड़े ही खरे व स्पष्ट विचारों के पुरुष थे और हिसाब दफ्तर में नौकरी कर अपनी जीविका उपार्जन करते थे। इनके दो पुत्र साहबलालजी व ख्यालीलालजी हुए। यही छोटे पुत्र ख्यालीलालजी, जिनको श्रीजी हुज़ूर ने बलवन्तसिंहजी का नाम बख़्शा, हमारे चरित्रनायक हैं। बलवन्तसिंहजी का केशरीसिंहजी के यहां गोद चले जाने से साहबलालजी ही जसराजजी के उत्तराधिकारी हुए। ये देवस्थान में कई वर्षों तक सीगहजात के अफ़सर एवं नायब हाकिम भी रहे। साहबलालजी बहुत ही सीधे सादे, नेक और सरल प्रकृति के पुरुष थे। साहबलालजी के कोई संतति न होने से रायपुर के कोठारी चंपालालजी के पुत्र फतहलालजी को इन्होंने गोद लिया। फ़तहलालजी ग्रेजुएट हैं और इस समय हदबस्त मे असिस्टेन्ट है। इनके इस समय एक पुत्र और दो कन्याएँ हैं। पुत्र का नाम लोकेन्द्रसिंहजी है।

महता गोविन्दसिंहजी

कटारिया गोत्रोद्भव महता बछराजजी के तीन पुत्र शेरजी, सवाईरामजी, गुमानजी को महाराणा साहब भीमसिंहजी ने अलग अलग गाँव जागीर में अता फ़रमाये। महता शेरजी ने कोई पुत्र न होने से महता गणेशदासजी को गोद लिया। ये महाराणा जवानसिंहजी के कृपापात्र रहे। इनके चार पुत्रों मे से चतुर्थ पुत्र बख़्तावरसिंहजी के गोविन्दसिंहजी हुए। इनका विवाह कोठारी केशरीसिंहजी की छोटी कन्या हुकमकुँवरबाई से सं० १९२४ मे किया गया। सं० १९३८ मे मगरा ज़िले के भीलों के बलवा करने पर इन्होंने बहुत योग्यता, दण्ड एवं भेद नीति के साथ भीलों को काबू में कर बलवे को शान्त किया। १४ वर्ष तक ये मगरा ज़िले के हाकिम रहे। बाद में ये कई अन्य हकूमतों पर तबदील होते रहे। अन्त मे सं० १९७५ में जब ये कपासन के

हाकिम थे, इनका देहान्त हो गया। कोठारीजी और गोविंदसिंहजी में परस्पर बहुत प्रेम और मित्रता का व्यवहार रहा। शादी, ग़मी इत्यादि के अवसर उपस्थित होने पर प्राय कोठारीजी इन कामों का सब भार गोविन्दसिंहजी पर छोड़ दिया करते थे और वे पूर्ण प्रेम के साथ सब प्रबन्ध करा दिया करते थे। महता गोविंदसिंहजी एक खरी प्रकृति के शुद्धहृदय, मिलनसार और प्रबन्धकुशल व्यक्ति थे। इनका व्यवहार प्रजा एवं अहलकारों के साथ नित्य सहानुभूति और न्यायपूर्ण रहा है। जिन जिन जिलों में ये हाकिम रहे, वहा की गरीब प्रजा आज भी उन्हें याद करती है। मेदपाठेश्वर भी इनसे प्रसन्न रहे और बैठक का सम्मान बख़्शा।

इनके पुत्र न होने से महता भूपालसिंहजी के छोटे पुत्र लक्ष्मणसिंहजी को इन्होंने गोद लिया। लक्ष्मणसिंहजी कई जिलों के हाकिम रहे और इस समय कापासोला ज़िले के हाकिम हैं। इनके दो पुत्र हैं। ज्येष्ठ का नाम भगवतसिंहजी है, जो वासवाड़े रेवेन्यु अफ़सर हैं। कनिष्ठ का नाम प्रतापसिंहजी है। ये शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। महता लक्ष्मणसिंहजी को और भगवतसिंहजी को भी वर्तमान महाराणा साहब ने बैठक का सम्मान बख़्शा है।

महता रघुनाथसिंहजी

कटारिया महता गोत्रोद्भव महता रघुनाथसिंहजी के पूर्वजों में से महता चन्द्रराजजी के तीन पुत्र गुमानसिंहजी, शेरसिंहजी और सवाईरामजी महाराणाजी श्री भीमसिंहजी की सेवा में रहते थे। इनमें से गुमानसिंहजी को उक्त महाराणा साहब ने आठ सौ रुपये सालाना से गाँव ग्यारडिया, माण्डी, देवपुरा, मटूणा वनोर बहमुरार कर दिये थे। इनके पुत्र ज्ञानसिंहजी ने दीवानी, फ़ौजदारी, न्यायविभाग इत्यादि सेवाएँ की थीं। इनका देहान्त सं० १८९० में हो गया। इनके कोई पुत्र न होने से इनके देहान्त होने के कई वर्ष बाद महाराणाजी श्री स्वरूपसिंहजी ने इनकी स्त्री को महता जवानसिंहजी को गोद लेने के लिये हुकुम बख़्शाया किन्तु उसके इन्कार करने पर नाराज़ हो गाँव ज़ब्त कर लिये गये और दस हजार रुपये दण्ड के किये। सं० १९०५ में गाँव ग्यारडिया और माण्डी महता जवानसिंहजी को जागीरी में बख़्शा और इन्हें ज़िला हाकिमी के पद पर भी नियुक्त किया। ज्ञानसिंहजी की स्त्री की मौजूदगी में ही महता जवानसिंहजी का देहान्त हो गया। अतः ज्ञानसिंहजी की स्त्री के देहान्त हो जाने पर सं० १९११ में रघुनाथसिंहजी को ज्ञानसिंहजी के घर पर तत्कालीन महाराणाजी श्री स्वरूपसिंहजी ने मुकर्रर फ़रमाया और बैठक भी बख़्शी। सं० १९१५ के वर्ष जब

श्री दरवार की पधरावणी महता गोपालदासजी के यहाँ हुई, तव कुछ समय के लिये इनके यहाँ भी पधार मानवृद्धि की। महता रघुनाथसिंहजी का जन्म सं० १९०१ ज्येष्ठ शुक्ला ११ का है। इनका विवाह कोठारीजी केशरीसिंहजी की वड़ी कन्या नजरकुँवरवाई से सं० १९१५ के वर्ष हुआ। ये कई वर्षों तक जिला हाकिम और मोनमीद सरहद इत्यादि पद पर रहे। सं० १९५७ के वर्ष इनका देहान्त हो गया। इनके पुत्र का नाम भीमसिंहजी है। ये इस समय वेगूँ मुनसरिम हैं और सं० १९९२ में जव ये आमेट मुनसरिम थे, वर्तमान महाराणा साहव ने वैठक भी वख्श सम्मानित किया है। इनके पुत्र का नाम जगदीशचन्द्रसिंहजी है. जो अभी विद्याध्ययन कर रहे हैं।

महता जगन्नाथसिंहजी

महता भूपालसिंहजी के वंशज कई पीढ़ियों से मेवाड़ राज्य की सेवाएँ करते आ रहे हैं। इन्हीं के पूर्वजों में महता शेरसिंहजी और सवाईरामजी महाराणाजी श्री भीमसिंहजी के समय राज्यसेवा मे रहे हैं। शेरसिंहजी तो महाराज कुमार जवानसिंहजी के खानगी कामदार भी रहे। वाद मे यह कार्य इनके भाई सवाईरामजी के सुपुर्द हुआ। सवाईरामजी के पुत्र का वाल्यावस्था में ही देहान्त हो जाने से उन्होंने अपने भाई के पुत्र गणेशदासजी के तृतीय पुत्र गोपालदासजी को गोद लिया। इन्हीं महता सवाईरामजी की एक दासीपुत्री एजाँवाई महाराणाजी श्रीस्वरूपसिंहजी की प्रीतिपात्री उपपत्नी हुई। महाराणा साहव ने गोपालदासजी को जिलों के हाकिम वना सोने के लंगर प्रदान कर उनकी मानवृद्धि की। जव महाराणा साहव स्वरूपसिंहजी का स्वर्गवास हो गया और प्रसिद्ध पासवानजी एजाँवाई महाराणा साहव के साथ सती हो गई तो इसका दारमदार गोपालदासजी पर डाला गया। फलतः उन्हें यहां से भाग कोठारिये में शरण लेनी पड़ी। महाराणाजी श्रीसज्जनसिंहजी ने वोहेडे पर सेना भेजी। उस समय गोपालदासजी भी वहां भेजे गये और इस सेवा के उपलक्ष्य में महाराणा साहव ने प्रसन्न हो कंठी, सिरोपाव आदि प्रदान कर इन्हें सम्मानित किया। इनके पुत्र भूपालसिंहजी हुए। यह पहले राशमी, मांडलगढ़ आदि जिलों के हाकिम रहे और सं० १९५१ में महाराणा साहव ने इन्हें महद्राजसभा का मेम्वर नियुक्त किया। कुछ समय वाद महक्मामाल के हाकिम भी यही हुए। सं० १९६१ वैशाख शुक्ला ११ को महक्माखास में मंत्री के स्थान पर इनकी और महसानी हीरालालजी की नियुक्ति हुई। महाराणा साहव ने इनकी प्रतिष्ठा वढ़ाने के हेतु इनकी हवेली मेहमान हो सोने के लंगर वख्श सम्मानित किया। महता भूपालसिंहजी सरल प्रकृति के और ईमानदार एवं परिश्रमी पुरुष थे किन्तु सं० १९६६ से ये वीमार रहने लग गये और

दो वर्ष वाद इनका देहान्त हो गया। इनके अस्वस्थ रहने के कारण महक्माख़ास की सेवा पुन कोठारीजी के सुपुर्द हो चुकी थी। अत इनके व महसानीजी के देहान्त के वाद भी महक्माख़ास का कार्य कोठारीजी के अधीन रहा।

इनके दो पुत्र हुए। वडे का नाम जगन्नाथसिंहजी और छोटे का लक्ष्मणसिंहजी है। इन्हीं जगन्नाथसिंहजी से कोठारीजी की वडी कन्या भोमकुँवरवाई का विवाह किया गया है। जगन्नाथसिंहजी के सुपुर्द प्रारभ में ख़ास ख़जान की सेवा की गई। पुन स्वर्गीय महाराणा साहव श्रीफतहसिंहजी की पेशी इत्यादि कार्य इनसे लिये गये और स० १९७१ में जब कोठारीजी ने अपनी अस्वस्थता के कारण कार्य छोडना चाहा तो इनके स्थान पर जोधपुर के प्रसिद्ध दीवान सर सुखदेवप्रसादजी और महता जगन्नाथसिंहजी की नियुक्ति मन्त्रिपद पर हुई। महाराणा साहव श्रीफतहसिंहजी ने इन्हें वैठक, सुवर्ण और जीकारे का सम्मान प्रदान करते हुए इनकी मानवृद्धि की और इनके हवेली महमान होकर प्रतिष्ठा वढाई। इसी प्रकार वर्तमान महाराणा साहव ने भी मॉझा, वीडा एव ताजीम वख़्श इन्हें सम्मानित किया और स० १९९३ के पौप मे जगन्नाथसिंहजी के तृतीय पुत्र जीवनसिंहजी के विवाह के अवसर पर इनकी हवेली महमान हो मानवृद्धि भी की है। इस समय जगन्नाथसिंहजी शिशुहितकारिणी सभा एव राज श्रीमहद्राजसभा के सदस्य हैं। इनकी न्यायप्रियता, सरलता और सदाचारिता के कारण लोगों को इनके प्रति विश्वास एव हृदय मे आदर है। इन वर्षों में बीमारी हो जाने के कारण इनके स्वास्थ्य में परिवर्तन हो गया है किन्तु प्रारभ से ही अत्यन्त परिश्रमी होने के सबब अब भी राजकीय कार्यों में ये पूरी मेहनत करते हैं। इनके चार पुत्र हैं। ज्येष्ठ पुत्र का नाम हरनाथसिंहजी, द्वितीय का सवाईसिंहजी, तृतीय का जीवनसिंहजी, और चतुर्थ का मनोहरसिंहजी है।

ज्येष्ठपुत्र हरनाथसिंहजी ने आगरा यूनिवर्सिटी मे वी० ए० पास किया। इस समय ये एडीशनल एकाउन्टेन्ट जनरल के पद पर नियुक्त हैं। वर्तमान महाराणा साहव कोठारीजी के प्रपौत्र-जन्म के अवसर पर जब कोठारीजी की हवेली पधारे, तब इन्हें भी सोने के लगर वख़्श सम्मानित किया और कुछ समय वाद इन्हें सुनहरी माझा भी वख़्शा। इनके तीन पुत्र हैं, जो अभी वालक हैं।

द्वितीय पुत्र सवाईसिंहजी रेवेन्यू में असिस्टेंट हैं। इनके इस समय दो कन्या विद्यमान हैं। तृतीय पुत्र जीवनसिंहजी एव चतुर्थ मनोहरसिंहजी अभी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

मुहता कानमलजी

इनके पिता का नाम चाँदमलजी है और गोत्र के मुहता हैं। इनके पूर्वजों ने मारवाड़ राज्य का प्रधाना किया था और अब भी राज्य से चाँदमलजी को जागीरी है और स्वर्ण इत्यादि के सम्मान प्राप्त हैं। मुहता शिवचंदजी के पुत्र न होने से कानमलजी इनके गोद आये किन्तु मोस्सआला मे इनकी जागीरी ज़ब्त हो गई और राज्य से अलाउन्स मुकर्रर कर दिया गया है। इनका विवाह कोठारीजी की छोटी कन्या यशकुँवरवाई से हुआ, जिनसे कई एक सन्तानें हुई किन्तु केवलमात्र एक कन्या प्रतापकुँवर ही जीवित रही। कानमलजी ने दूसरा विवाह मांडलगढ़ के महता जमनादासजी की पुत्री सूर्यकुँवर वाई से किया, जिनसे दो पुत्र और तीन कन्याएँ मौजूद हैं।

सहा पृथ्वीराज जी लोढा

जोधपुर के लोढा पृथ्वीराजजी के पूर्वज पहले जोधपुर राज्य मे उच्च पदों पर नियुक्त रहे और स्वामिभक्त सेवक हुए हैं। किन्तु बीच मे परिस्थिति विशेष अच्छी नहीं रही। पृथ्वीराजजी के तीन पुत्र विजयराजजी, मदनराजजी, शकुनराजजी और दो कन्याएँ हुई। इनमे ज्येष्ठ कन्या जोरावरकुँवर वाई का विवाह संवत् १९३३ के वर्ष कोठारीजी से हुआ और छोटी कन्या हुलासकुँवर वाई का विवाह जोधपुर ही में वहाँ के सिंगवी सोहनराजजी से हुआ है। पृथ्वीराजजी स्वर्गस्थ महाराणा साहब के राजत्व में कई वर्षों तक १००) रुपये माहवार मे यहाँ नौकर रहे। किन्तु वाद में वापस जोधपुर चले गये। पृथ्वीराजजी शुद्धहृदय, स्पष्टवक्ता और निरभिमानी व्यक्ति थे।

सेठ धनरूपमलजी गोलेछा

जयपुर के सेठ मूलचन्दजी गोलेछा के दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ का नाम धनरूपमलजी और कनिष्ठ का राजमलजी था। इनके पूर्वजों ने जयपुर राज्य की अच्छी सेवाएँ की हैं और राज्य में भी उनका वड़ा मान था। यहाँ तक कि इस समय में भी जव धनरूपमलजी का देहान्त हुआ तो इनका डोल निकाला गया था। धनरूपमलजी ने अपने जीवन काल में जीविकोपार्जन के लिये व्यापार का आश्रय लिया। इनका विवाह अजमेर के सेठ हीराचन्दजी संचेती की वहिन आनन्दकुँवर वाई से हुआ, जिनसे दो कन्याएँ एवं चार पुत्र हुए। क्रमशः दोनों कन्याओं का विवाह पिताश्री से हुआ और चार पुत्रों मे से द्वितीय पुत्र सिरहमलजी का देहान्त हो गया और तीन पुत्र वागमलजी,

कानमलजी, विनयचन्द्रजी मौजूद हैं जो जवाहरात इत्यादि का व्यापार करते हैं। धनरूपमलजी स्पष्टवक्ता सरल प्रकृति के शुद्धहृदय पुरुष थे।

महता माधवसिंहजी

महता माधवसिंहजी के पूर्वज किशनगढ के रहने वाले थे। महाराणा भीमसिंहजी के राजत्व मे महता उम्मेदसिंहजी किशनगढ से उदयपुर आये और उक्त महाराणा साहब ने सागानेर और सवाना में दो कुएँ इन्हें प्रदान किये। इनके पुत्र रघुनाथसिंहजी को जहाजपुर हाकिम बनाया तथा सीरोटी नामक गाव जागीर में बख्शा। महाराणा स्वरूपसिंहजी की इन पर पूर्ण कृपा रही। तत्पश्चात् महाराणा शम्भुसिंहजी के समय अहेलियान दरबार में भी इनसे मुख्य सेवा ली गई। स० १६०५ के चैत्र मास में महाराणा साहब ने इनकी हवेली महमान हो पैरो में पहनने के सोने के लगर बख्श सम्मानित किया और समय समय पर मानवृद्धि करते रहे। इनके पुत्र महता माधवसिंहजी बडे सुशील, सज्जन, प्रबन्धकुशल एव सच्चरित्र हुए हैं। कई एक जिलो के हाकिम रहने के बाद स० १६३१ में फौजबख्शी के पद पर नियुक्त हुए और महाराणा साहब ने प्रसन्न हो उन्हें सुवर्ण, जीकारा आदि सम्मान और गाव पाल का खेडा जागीर मे बख्शा। महाराणा साहब तथा जोधपुरनरेश यशवन्तसिंहजी और किशनगढनरेश शार्दूलसिंहजी ने इनकी हवेली पधार सम्मानित किया। महाराणा साहब सज्जनसिंहजी भी इनके यहा महमान हुए और माधवसिंहजी को फिर दुबारा सुवर्ण बख्शा। माधवसिंहजी का कोठारीजी के घर से शुरू से ही पूरा घरोपा था। यहा तक कि कोठारीजी बलवन्तसिंहजी माधवसिंहजी को काकाजी कहते थे। माधवसिंहजी के कोई पुत्र न होने से किशनगढ के बलवन्तसिंहजी महता को गोद लिया। महाराणा साहब फतहसिंहजी ने इन्हें फौजबख्शी के पद पर नियुक्त किया और पूर्ण कृपा रही। इनकी पुत्री का सम्बन्ध बछावत गोत्र के महता जोधसिंहजी के साथ हुआ, जिस विवाह में महाराणा साहब ने तत्कालीन मत्री महता पन्नालालजी के यहा महमान हो पन्नालालजी एव जोधसिंहजी को सुवर्ण बख्श सम्मानित किया। महता बलवन्तसिंहजी भी बडे सीधे साधे एव सरल प्रकृति के सज्जन पुरुष थे किन्तु थोड़ी अवस्था में इनका देहान्त हो गया। इनके पुत्र का नाम लक्ष्मणसिंहजी है। स्वर्गीय महाराणा साहब श्री फतहसिंहजी ने कई वर्षों तक इनसे फौजबख्शी का काम लिया। इस समय ये रोकड के भंडार (State Treasury) के अफसर है। लक्ष्मणसिंहजी भी शुद्धहृदय, उदार एव सरल प्रकृति के पुरुष है।

इनके एक पुत्र, दो कन्याएँ, दो पौत्र एवं एक पौत्री है।

इनके पुत्र का नाम केशरीसिंहजी है। ये इस समय मुन्सिफ के पद पर नियुक्त है। लक्ष्मणसिंहजी की ज्येष्ठ कन्या रतनकुँवरबाई का विवाह इन्दौर के प्रसिद्ध दीवान सर सिरेहमलजी बापना के छोटे पुत्र प्रतापसिंहजी से हुआ है और छोटी कन्या का विवाह मुझ से किया गया है। वर्तमान महाराणा साहब ने लक्ष्मणसिंहजी एवं केशरी-सिंहजी को बैठक बख़्श सम्मानित किया है।

सहा नेणचन्दजी मट्टा

यह ओसवाल जाति में मट्टा गोत्र के महाजन थे और मंडी में नाज तथा आढ़त के प्रसिद्ध व्यापारी थे। इनके पिता का नाम जालमचन्दजी था। कोठारी केशरीसिंहजी का द्वितीय विवाह इनकी बहिन इन्द्रकुँवरबाई से हुआ। यद्यपि कोठारीजी की माता और कोठारीजी के मध्य अनबन रही किन्तु नेणचन्दजी कोठारीजी के साथ सदा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार रखते थे। इनके पुत्र जीतमलजी हुए और जीतमलजी के भूरीलालजी मट्टा हैं किन्तु प्रायः ये सब ही जायन्दा पुत्र न होने से क्रमशः गोद आते रहे हैं।

सहा जवेरचन्दजी डागल्या

ये मोटे गांव के निवासी थे और कोठारीजी के सगे मामा थे। इन्होंने कोठारी जी की जन्मदात्री माता के देहान्त हो जाने पर दो तीन वर्ष तक पूरा प्रेम रख कोठारीजी का पालन पोषण किया। इनके वंश में इस समय कालूलालजी डागल्या मौजूद हैं।

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी दधिवाड़िया गोत्र के चारण थे। इनके पूर्वज रुन के सांखले राजाओं के पोलपात देवल गोत्र के चारण थे। उनको दधिवाड़िया गाँव शासन उदक में मिला, जिससे वे दधिवाड़िया कहलाये। जब सांखलों का राज्य जाता रहा, तब उन्होंने मेवाड़ के महाराणा की शरण ली। उनके साथ उनके पोलपात चारण जेतसिंहजी भी मेवाड़ में चले गये, जिन्हें महाराणा साहब ने नाहरमगरा के पास धारता और गोठीपा गाँव दिये। जेतसिंहजी के चार पुत्र महपा, मांडन, देवा और बरसिंहजी हुए। देवा के वंशज धारता और खेमपुर मे है

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी

और वरसिंहजी के वंशज गोठीपे में हैं। महपा के पुत्र आसकरणजी और इनके चत्राजी हुए।

चत्राजी के पुत्र चामुंडदासजी और इनके हरिदासजी हुए। हरिदासजी के पुत्र अर्जुनजी, इनके केशरीसिंहजी और केशरीसिंहजी के पुत्र मयारामजी हुए। मयारामजी के पुत्र कनीरामजी को महाराणा भीमसिंहजी ने ढैंसिंगपुरा और जालरा प्रदान किये। कनीरामजी के पुत्र रामदानजी और रामदानजी के कायमसिंहजी हुए। कायमसिंहजी के चार पुत्र हुए। उनके नाम ओनाडसिंहजी, श्यामलदासजी, ब्रजलालजी और गोपालसिंहजी थे। इन्हीं श्यामलदासजी को महाराणाजी श्रीसज्जनसिंहजी ने अपना पूर्ण विश्वासपात्र होने से कोठारी बलवन्तसिंहजी का संरक्षक नियुक्त किया। इन्होंने कोठारीजी के प्रति प्रेम और पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए उनकी पूरी देखरेख की। इनको कोठारीजी के धर्मपिता, सच्चे हितैषी एवं दुःख के सच्चे साथी और आदर्श मित्र अथवा गुरु कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी।

महाराणाजी श्रीस्वरूपसिंहजी के समय ये राज्यसेवा में रहते थे। महाराणाजी श्रीशंभुसिंहजी ने विक्रम सं० १६२८ में इन्हें उदयपुर राज्य का इतिहास लिखने की आज्ञा दी। इन्होंने कार्य शुरू किया किन्तु महाराणा साहब का स्वर्गवास हो जाने से यह कार्य रुक गया।

महाराणाजी श्रीसज्जनसिंहजी के समय ये ही श्यामलदासजी महाराणा साहब के प्रीतिपात्र और मुख्य सलाहकार हुए। इन महाराणा साहब ने इन्हें कविराजा की उपाधि, सोना, माँझा, बीडा, ताजीम आदि प्रथम दर्जे के सम्मान प्रदान कर इनकी प्रतिष्ठा बढाई और महद्राजसभा का सदस्य भी नियत किया। महाराणा साहब ने कृपाभाव प्रदर्शित करते हुए जो सम्मान कविराजाजी को प्रदान किये, उनके विषय में एक काव्यषट्पदी बनाकर महाराणा साहब सज्जनसिंहजी से इन्होंने अर्ज किया। वह नीचे उद्धृत किया जाता है—

> जिम जुहार ताजीम, पाय लगर हिम पट के।
> पूरण बाँह पसाव, खला अदवा मन खटके॥
> जाहर छड़ी जलेब, छाप कागल वड छापण।
> मॉझो पाग मझार, थरू बीडो जस थापण॥
> कविदास तेण कविराज कर, कठिन अफ विधि का पिया।
> कर शुभ निगाह श्यामल सुकर सज्जन राण समापिया॥१॥

इसके अतिरिक्त सं० १९३९ मार्गशीर्ष शुक्ला ६ के दिन मेवाड़नाथ की और साथ ही जोधपुरनरेश जसवन्तसिंहजी व किशनगढ़नरेश शार्दूलसिंहजी की पधरावणी कविराजाजी के प्रसिद्ध श्यामलबाग में हुई। इस अवसर पर भी उक्त कविराजाजी ने निम्नलिखित दोहा श्रीजी हुजूर में अर्ज किया था—

संवत ग्रह गुन अंक शशी, आश्विन चवन्द अदान।
रसतिथि को पावन कियो, मज्जन श्यामलदास ॥१॥

कविराजाजी की गिनती मुख्य मुसाहबों में थी और उस स्वामिभक्ति के कारण प्रत्येक ही महाराणा साहब की कविराजाजी पर पूर्ण कृपा रही।

मेवाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल इम्पी ने मेवाड़ का इतिहास बनाने के लिये महाराणा साहब से आग्रह किया। इस पर कविराजाजी को वीरविनोद नामक इतिहास लिखने की आज्ञा दी गई और इस कार्य के लिये एक लाख रुपये की स्वीकृति हुई। कविराजाजी ने अपने अधीन इतिहास कार्यालय स्थापित कर अपनी सहायता के लिये बड़े बड़े विद्वानों को सम्मिलित किया और भरसक परिश्रम लेते हुए वीरविनोद नामक बृहद् इतिहास तैयार किया, जिसकी समाप्ति स्वर्गीय महाराणाजी साहब फतहसिंहजी के समय हुई। अंग्रेजी सरकार ने कविराजाजी की योग्यता की कदर करते हुए इन्हें महामहोपाध्याय का खिताब दे प्रतिष्ठा बढ़ाई। महाराणाजी श्रीसज्जनसिंहजी के समय विद्या की उन्नति, राज्य का सुधार, सेटलमेन्ट, जमाबन्दी का प्रबन्ध, महद्राजसभा की स्थापना, नगर की शोभा में वृद्धि और प्रजाहित के जो जो उत्तम कार्य हुए, उनमें ये ही कविराजाजी मेवाड़नाथ के मुख्य सलाहकार थे। पूज्य पितामह के पूजनीय होने के कारण मेरे कथन में पाठकों को संदेह भी रह जाय, अतः पंडित गौरीशंकरजी के थोड़े से वाक्य नीचे उद्धृत कर देने उचित हैं—"वह विद्यानुरागी, गुणग्राहक, स्पष्टवक्ता, भाषा का कवि, इतिहास का प्रेमी, अपने स्वामी का हितैषी और नेक सलाह देने वाला था। उसकी स्मरणशक्ति इतनी तेज़ थी कि किसी भी ग्रंथ से एक बार पढ़ी हुई बात उसको सदा स्मरण रहती थी। महाराणा सज्जनसिंह के समय अनेक विद्वानों तथा प्रतिष्ठित पुरुषों का बहुत कुछ सम्मान होता रहा, जिसमें उसका हाथ मुख्य था। महाराणा फतहसिंह के समय भी उसकी प्रतिष्ठा पूर्ववत् ही बनी रही।" जिस प्रकार कविराजा श्यामलदासजी उदयपुर राज्य के एक विद्वान् कवि, उत्तम लेखक और राज्यभक्त सेवक थे, इनके समकालीन जोधपुर के कविराजा मुरारदानजी भी इन्ही गुणों से अलंकृत, जोधपुर

के राजभक्त सेवक, कविराजों एवं अन्य राजाओ के अयाचक सज्जन पुरुष थे । इन्हें कई एक रईस हजारों ही रुपयों की जागीरें देना चाहते थे, लेकिन इन्होंने स्वीकार नहीं की और मारवाडनरेश के अतिरिक्त किसी के आगे हाथ न फैलाया। इनका मारवाड राज्य में बडा मान था और ये वहा के मुख्य मुसाहबो में थे। मारवाड के सब ही नरेशो की इन पर असीम कृपा रही। यहाँ तक कि जब इनके पुत्र का जन्म भी नहीं हुआ था, जोधपुर महाराज साहब ने कितनेक परगनों का कार्य गणेशदान के नाम पर कर इनके सुपुर्द कर दिया और फ़रमाया कि जब तुम्हारा पु हो, उसका नाम गणेशदान रख देना। पुत्रोत्पत्ति होने पर उनका नाम गणेशदानजी ही रक्खा गया। इनके घर मे औरतों तक को सोना पहनने का सम्मान प्राप्त था तथा इन्हे प्रथम दर्जे के सब ही सम्मान प्राप्त थे। इन्हीं गणेशदानजी का विवाह यहाँ के कविराजाजी की पुत्री कल्याणकुँवर से हुआ और इसका कुल प्रबन्ध कोठारीजी ने किया। गणेशदान जी के कोई पुत्र न होने से महरदानजी गोद आये। किन्तु उनका भी थोडी उम्र में ही देहान्त हो गया। अब उनके पीछे नाबालिग बच्चे रह गये हैं। "सब दिन होत न एक समान" का पद ऐसे समयो पर ही याद आता है।

कविराजा मुरारदानजी के साथ कोठारीजी का परस्पर बहुत प्रेम रहा है और यहाँ क कविराजाजी की कन्या का सम्बन्ध हो जाने के बाद तो मुरारदानजी क घर से कोठारीजी का विशेष घरोपा सा सम्बन्ध हो गया था। इनके वशज गणेशदानजी इत्यादि ने भी वही सम्बन्ध कोठारीजी के साथ रक्खा है।

राज्य के भक्त, चारण जाति के रत्न एव कोठारीजी के सच्चे हितैषी कविराजा श्यामलदासजी ने अपने अतिम समय मे सन्यास ग्रहण किया और स० १९५१ ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को इनका देहान्त हो गया। इनके कोई पुत्र न होने से इनके उत्तराधिकारी इनके छोटे भाई गोपालसिंहजी के पुत्र जसकरणजी हुए। इन्हें महाराणा साहब श्रीफतहसिंहजी ने श्यामलदासजी के सब ही सम्मान अता फ़रमाये। कई वर्षों तक इनकी देखरेख कोठारीजी के और बाद में महता भूपालसिंहजी तथा जगन्नाथसिंहजी के अधीन रही। कोठारीजी ने जसकरणजी को सुयोग्य बनाने की बहुत कुछ कोशिश की किन्तु सफलता न हुई और फलत शराब इत्यादि दुर्व्यसनों मे पड जाने के कारण मध्य आयु मे ही इनका देहान्त हो गया। इनके पुत्र रघुनाथदानजी हुए। किन्तु इन्हें बचपन ही से मिर्गी की बीमारी के दौरे होते रहने के कारण इनका भी अल्प आयु ही में देहान्त हो गया। इनकी सतान मे से भी कोई पुत्र जीवित न रहा। अत शक्तिदानजी रघुनाथदानजी के उत्तराधिकारी नियत किये गये और वशपरपरागत सब ही सम्मान इन्हें मेवाडनाथ ने बख्शे हैं।

बेदले राव बख्तसिंहजी

ठिकाने बेदला के सरदार उदयपुर राज्य के प्रथम दर्जे के उमरावों में से हैं। राव इनका ख़िताब है और जाति से चौहान-राजपूत हैं । इन्हीं उमरावों के वंशधरों मे राव सबलसिंहजी की कन्या का विवाह महाराणा संग्रामसिंहजी द्वितीय के साथ हुआ था । राव सवलसिंहजी ने, औरंगज़ेब के साथ जब उक्त महाराणा साहब की लड़ाइयाँ हुई, उनमे अच्छी वीरता का परिचय दिया । इनके पूर्वजों ने भी युद्ध आदि अवसरों पर मेवाड़ राज्य की अच्छी सेवाएँ कीं और उसी के फलस्वरूप इनको ठिकाने बेदले के स्वामी नियत कर मेवाड़ राज्य से जागीर दी गई है ।

इन्हीं सवलसिंहजी के वंश मे बख़्तसिंहजी 'द्वितीय' हुए । ये बड़े बुद्धिमान्, स्वामिभक्त, साहसी, नीतिनिपुण और प्रवन्धकुशल सरदार थे । सं० १८५७ के ग़दर के समय भी इनसे सेवा ली गई और राज्य के कई विशेष उल्लेखनीय अवसर उपस्थित होने पर उन्हे सुलझाने मे इनका मुख्य हाथ रहा है । महाराणा शंभुसिंहजी की नावालिग़ी के समय रीजेन्सी कौन्सिल के भी ये मेम्बर रहे । इसी प्रकार महाराणा सज्जनसिंहजी के राजत्व में भी ये इजलास ख़ास के मेम्वर रहे और सरकार गवर्नमेन्ट ने भी इन्हे 'राव वहादुर' और 'सी० आई० ई०' की उपाधियों से भूषित किया । उक्त रावजी और कोठारी केशरीसिंहजी के मध्य पूरा स्नेह रहा और कोठारी वलवन्तसिंहजी के साथ भी इन्होंने सहानुभूतिपूर्ण सद्व्यवहार रक्खा । वख़्तसिंहजी के पीछे तख़्तसिंहजी, कर्णसिंहजी और नहारसिंहजी यथाक्रम ठिकाने के अधिकारी हुए । इन सब ने भी कोठारीजी के घराने के साथ पूर्ववत् प्रेम वनाये रक्खा। बेदले के वर्तमान राव नहारसिंहजी हैं । इन्हे भी सरकार गवर्नमेन्ट से 'राव वहादुर' का ख़िताब मिला है और राज्य श्री महद्राजसभा के सदस्य भी हैं ।

इन्हीं नहारसिहजी के चाचा ठाकुर राजसिंहजी, गोविन्दसिंहजी और गोविन्द-सिंहजी के पुत्र मनोहरसिंहजी ने भी कोठारीजी के घराने के साथ इनके पूर्वजों की भाँति प्रेम वनाये रक्खा है । राजसिंहजी वृद्ध, प्रवन्धकुशल एवं योग्य सरदार हैं। गवर्नमेन्ट से इन्हे 'राव वहादुर' की उपाधि मिली हुई है और श्रीजी हुजूर ने भी ताज़ीम का सम्मान वख़्शा है ।

गोविन्दसिंहजी वर्तमान महाराणा साहव की सेवा मे आजन्म रहे और पूर्ण कृपापात्र ही नहीं किन्तु विश्वस्त सेवक थे । इनका अल्पायु में देहान्त हो जाने से इनके वाद इनके पुत्र मनोहरसिंहजी मेदपाटेश्वरों के कृपापात्र हुए और इन्हें

राव की पदवी, ताजीम व भूपालनगर इत्यादि गाव जागीर मे बख्श सम्मानित फ़रमाया है।

वर्तमान महाराणा साहब की सेवा मे बाल्यकाल से ही गिरधारीसिंहजी के भी रहने से गोविन्दसिंहजी और गिरधारीसिंहजी मे भी परस्पर बराबर स्नेह रहा है।

सरदारगढठाकुर मनोहरसिंहजी

सरदारगढ के स्वामी सिंह डोडिया के पुत्र धवल के वशज हैं और ठाकुर इनकी पदवी है। आदि काल में ये काठियावाड प्रान्त मे शार्दूलगढ के निवासी थे किन्तु महाराणा लक्ष्मणसिंहजी (लाखा) की माता के द्वारका की यात्रा को जाते समय काठियावाड में काबो से घिर जाने पर राव सिंह मेवाड की सेना मे शामिल होकर लडता हुआ मारा गया। उनकी सेवा से प्रसन्न हो उक्त महाराणा ने सिंह के पुत्र धवल को अपने यहाँ बुला लिया और नदराय, रतनगढ आदि अच्छी जागीर देकर अपना सरदार बनाया। इनके वशजो ने समय समय पर मेवाडराज्य की ओर से कई एक लडाइयों मे अनुपम वीरता एव स्वामिभक्ति का परिचय दिया है। इन्ही के वशधरों में ठाकुर सरदारसिंहजी को महाराणा जगत्सिंहजी द्वितीय ने लावे का ठिकाना दिया और उक्त ठाकुर ने लावे में क़िला बना उसका नाम सरदारगढ रक्खा। इन्हीं के वश मे मनोहरसिंहजी सरदारगढ के स्वामी हुए। महाराणा सज्जनसिंहजी के राजत्व काल में ये इजलास ख़ास और बाद मे महद्राजसभा के मेम्बर रहे। मनोहरसिंहजी सत्यवक्ता, कार्यदक्ष, योग्य एव स्वामिभक्त सेवक थे। महाराणा साहब सज्जनसिंहजी ने उक्त ठाकुर के उत्तम गुणो के कारण प्रसन्न हो इन्हे अपने प्रथम श्रेणी के सरदारों मे सम्मिलित किया। कोठारी केशरीसिंहजी के साथ तो इनका अत्यन्त प्रेम था ही किन्तु केशरीसिंहजी के देहान्त के बाद बलवन्तसिंहजी के साथ भी इन्होने बहुत ही प्रेम एव सहानुभूति रक्खी। उनकी तो इच्छा थी कि केशरीसिंहजी के पीछे बलवन्तसिंहजी भी वैसे ही योग्य बन जायँ और इस इच्छा को प्रत्यक्ष रूप मे परिणत करने के लिये समय समय पर ये सहायक भी होते रहते थे। इनके पीछे सोहनसिंहजी के बाद सोहनसिंहजी के पौत्र अमरसिंहजी सरदारगढ के वर्तमान ठाकुर हैं।

पुरोहित श्यामनाथजी

इनके पूर्वज करीब ४०० वर्ष पूर्व रणथभोर के चौहानों के पुरोहित थे और विक्रम सवत् १४९४ से इनके वशजों का मेवाड दरबार की सेवा मे आना पाया जाता

है। समय समय पर इनके पूर्वजों ने मेवाड़ राज्य की विविध सेवाएँ की हैं और उनके पारितोषिक स्वरूप मेवाड़ राज्य से जागीरी में ग्राम एवं विविध सम्मान भी प्राप्त होते रहे है। महाराणा साहब के दरबार के प्रबन्धक (Master of Ceremony) का कार्य भी इनके वंशजों के अधीन रहा है। इन्हीं के वंश मे रामनाथजी हुए। उनका महाराणा भीमसिंहजी और महाराणा जवानसिंहजी के समय राज्यसेवाओं में मुख्य हाथ रहा। महाराणा भीमसिंहजी ने इन्हे हाथी, सोने के लंगर तथा उमन्ड ग्राम देना चाहा परन्तु इन्होंने हाथी और सोने के लंगर लेने से इनकार कर उनके बदले सदाव्रत जारी किये जाने की महाराणा साहब से प्रार्थना की, जिसे स्वीकार करके लंगर का कोठार कायम कराकर सदाव्रत दिये जाने की व्यवस्था करा दी गई। महाराणाजी श्री जवानसिंहजी के भी ये कृपापात्र रहे। इन्हीं रामनाथजी के दो पुत्र श्यामनाथजी और प्राणनाथजी हुए। रामनाथजी का देहान्त हो जाने पर उनका कार्य इनके पुत्र श्यामनाथजी के अधीन किया गया। इन्हीं श्यामनाथजी को सं० १८८८ मे जालिमपुरा और सं० १९०३ में ओवरा नामी ग्राम जागीर मे मिले और महाराणा जवानसिंहजी तथा महाराणा स्वरूपसिंहजी के समय ये मुसाहिबों मे थे। महाराणा शंभुसिंहजी के समय रिजेन्सी कौन्सिल के सदस्यों मे भी इनकी नियुक्ति हुई। उस समय भी इन्होंने पूर्ण स्वामिभक्ति का परिचय देते हुए राज्यसेवा की। ये योगाभ्यासी थे। अंतिम दिनों मे इन्होंने संन्यास ग्रहण किया। इनके पुत्र पद्मनाथजी महाराणाजी श्रीसज्जनसिंहजी के राजत्व मे इजलास खास, महद्राजसभा आदि के सदस्य रहे। एक स्वामिधर्म के नाते कोठारीजी केशरीसिंहजी के समय तथा बाद मे भी इनके घराने वालों ने कोठारीजी के साथ मैत्रीभाव रक्खा। पद्मनाथजी के तीन पुत्र शंभुनाथजी, मथुरानाथजी और देवनाथजी हुए। शंभुनाथजी को वर्तमान महाराणा साहब ने जीकारे का सम्मान बख्शा था। इनका, करीब दो वर्ष हुए, देहान्त हो चुका है और इनके दोनों भाई मथुरानाथजी तथा देवनाथजी राज्यसेवा मे हैं। वर्तमान महाराणा साहब ने प्रसन्न हो इन दोनों भाइयों को जीकारा, सुवर्ण और देवनाथजी को ताज़ीम बख्श मान मे वृद्धि की है।

भट्ट संपतरामजी

इनके पूर्वज पहले बाँसवाड़े के रहने वाले थे। महाराणा संग्रामसिंहजी द्वितीय के समय मे भट्ट मुरलीधरजी उदंवर बाँसवाड़ा से उदयपुर आये और महाराणा साहब ने गूंदली इत्यादि गाँव इन्हें जागीर मे बख्शे। ये सरकार मे ज्योतिष, वैद्यक तथा पाठपूजा आदि कार्य करते थे। इनके पुत्र गंगाधरजी हुए और गंगाधरजी के पौत्र व निर्भयरामजी

के पुत्र भट्ट सपतरामजी हुए। ये भी अपने पूर्वजों की भाँति उपरोक्त राज्यसेवा करते रहे। जब कोठारी केशरीसिंहजी की कोडियों की थैली कोई चुराकर ले गया और जीविका का सहारा न रहा तो केशरीसिंहजी एव छगनलालजी दोनों ही भाइयों ने कुछ समय इन्हीं सपतरामजी के यहाँ नौकरी की। बाद में महाराज स्वरूपसिंहजी के पास नौकर हुए। उसी समय से कोठारी केशरीसिंहजी भट्टजी का उपकार मानते हुए नित्य उनके कृतज्ञ रहे और पारस्परिक प्रेम की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। केशरीसिंहजी के स्वर्गवास के बाद उक्त भट्टजी ने कोठारी बलवन्तसिंहजी के प्रति पूर्ववत् ही स्नेह रक्खा और कोठारीजी ने भी बराबर स्नेह निभाया। भट्टजी के वंश में इस समय केशरीलालजी और गोवर्धनलालजी हैं।

दधिवाडिया चमनसिंहजी

दधिवाडिया चारण कायमदानजी—कमजी—के चार पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र का नाम ओनाडसिंहजी था। खमपुर के दधिवाडिया शेरजी के अपुत्र देहान्त हो जाने पर तत्कालीन महाराणा साहब स्वरूपसिंहजी की आज्ञानुसार स० १६१६ में ओनाडसिंहजी शेरजी के उत्तराधिकारी नियत हुए। महाराणा साहब स्वरूपसिंहजी से लेकर महाराणा साहब सज्जनसिंहजी तक तीनों ही नरेशों की इन पर पूरी कृपा रही। ओनाडसिंहजी की बीमारी में महाराणा साहब सज्जनसिंहजी इनकी हवेली आराम-पुरसी के लिए भी पधारे। इन्हीं ओनाडसिंहजी के पुत्र चमनसिंहजी हुए। चमनसिंहजी कविराजा श्यामलदासजी के सगे भतीजे थे और कोठारीजी के साथ इनका विशेष सपर्क रहने से कोठारीजी के व इनके मध्य भी बहुत मेल-जोल हो गया। कोठारीजी के साथ इनकी विशेष सहानुभूति रही और कोठारीजी के नगरनिर्वासन के समय में भी ये साथ देने को सन्नद्ध रहे। स० १६७५ के वर्ष इनका देहान्त हो गया। उक्त चमनसिंहजी कवि, विद्वान्, वयोवृद्ध और स्वामिभक्त सेवक थे। इनके तीन पुत्र करणीदानजी, भैरुसिंहजी, खेमराजजी हुए। ज्येष्ठ पुत्र करणीदानजी भी हिन्दी एव सस्कृत के अच्छे कवि, सच्चरित्र, विद्वान् और सरल प्रकृति के पुरुष हैं। द्वितीय पुत्र भैरुसिंहजी का हाल ही में देहान्त हो गया। तृतीय खेमराजजी मसुदे नौकर हैं और विद्वान तथा सज्जन पुरुष हैं। इन तीनों ही भाइयों ने भी नित्य कोठारीजी एव इनके घराने के साथ पूर्ववत् ही सद्व्यवहार रक्खा है।

लाला केसरीलालजी

मुन्शी माधुरामजी माथुर 'कायस्थ' एक योग्य व्यक्ति हुए हैं, जो पूर्वकाल में मेरते 'मारवाड' के रहने वाले थे और मारवाड की तरफ़ से इन्हें जागीरी भी थी। उक्त

मुन्शी फ़ारसी एवं संस्कृत के अच्छे विद्वान् और कवि थे। बादशाही जमाने में इनका अच्छा मान रहा है। इनके प्रपौत्र मुन्शी चांदुलालजी महाराणाजी श्री भीमसिंहजी के समय मे उदयपुर आये और राज्यसेवा में रहने लगे। इनके पुत्र केसरीलालजी हुए। इन्होंने महाराणा साहब सज्जनसिंहजी और महाराणा साहब फ़तहसिंहजी के समय में सेवाएँ की हैं और मोतमीद इत्यादि पदों पर रहने के बाद श्री बड़े हुजूर ने उन्हें अपना जुडीशियल सेक्रेटरी बनाया। इस पद पर ये करीब २४ वर्ष तक रहे। करीब ५० वर्ष की आयु मे इन्होंने नौकरी छोड़ अपना शेष जीवन ईश्वराराधन, महात्माओं के सत्संग और धार्मिक पुस्तकावलोकन मे व्यतीत किया। योगाभ्यास का भी इन्हें शौक था और पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज तथा पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के भी ये अच्छे भक्त थे। कोठारीजी के साथ इनका ठेठ से ही प्रेम रहा। यहाँ तक कि कोठारीजी के नगर-निर्वासन के समय में भी ये साथी बनने को तैयार हुए। कोठारीजी का भी इनके साथ अच्छा प्रेम एवं मित्रता का व्यवहार रहा है। इनका देहान्त मार्च सन् १९३० ईस्वी मे हो गया। उक्त लालाजी वृद्ध, फारसी के विद्वान्, कलम के मुन्शी एवं धार्मिक विचारों के पुरुष थे। इनके तीन पुत्र हैं। उनमे से ज्येष्ठ हरभजनलालजी महद्राजसभा के मेम्बर, द्वितीय भगवतीलालजी देवस्थान में नायब हाकिम और तृतीय कन्हैयालालजी एम० ए० (M. A.) हैं, जो अर्से तक महाराणा कालेज के प्रिंसिपल रह चुके हैं।

महता उग्रसिंहजी

इनके पूर्वज पहले समय मे राजपूत थे। किन्तु बाद में जैन धर्म अंगीकार करने पर इनकी गणना भी ओसवालों मे हुई। इनके पूर्वजों मे जालजी महता एक प्रसिद्ध पुरुष हुए, जो जालोर के राव मालदेव चौहान के विश्वस्त सेवक थे। जब मालदेव ने अपनी पुत्री का सम्बन्ध महाराणाजी श्री हम्मीरसिंहजी के साथ किया और उक्त महता जालजी को भी दहेज मे दिया, तब ही से इनके पूर्वज मेवाड़ में आये और राज्य की अच्छी-अच्छी सेवाएँ की हैं। चित्तौड़ का राज्य प्राप्त करने के समय भी उक्त महता जालजी ने बहुत सहायता दी और उसके पारितोषिक स्वरूप महाराणा साहब ने इन्हें अच्छी जागीरी भी प्रदान की। इन्हीं के वंश मे महता रामसिंहजी हुए, जिन्होंने समय समय पर मेवाड़ के चार नरेशों के राजत्व मे प्रधाना किया और इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर तत्कालीन महाराणा साहबों ने इन्हे अच्छी जागीर और उच्च सम्मान अता फ़रमाये। इनके समय के अंतिम महाराणा साहब स्वरूपसिंहजी ने तो सं० १९००

में इन्हें काकाजी की उपाधि और ताजीम का सम्मान भी बख्शा किन्तु शत्रुओं के प्रपंच से कुछ ही दिनों बाद हिसाबी आय-व्यय के संदेहात्मक आरोप में रामसिंहजी से भी दस लाख रुपये के दंड का रुक्का लिखवा लिया गया। यहीं तक मामला खतम न हुआ। सं० १६०३ में ऐसी बात मशहूर हुई कि महाराज शेरसिंहजी के पुत्र शार्दूलसिंहजी महाराणा साहब को जहर दिलाने के प्रयत्न में हैं और अन्य भी कई व्यक्ति इसमें शामिल हैं। इसमें रामसिंहजी का भी नाम लिया गया। फलतः रामसिंहजी को मेवाड़ छोड़ चला जाना पड़ा। जब महाराणा साहब को सब असली ब्यौरा मालूम हुआ तो उन्होंने रामसिंहजी को वापस बुलाना चाहा किन्तु इसी बीच वे इस संसार से कूच कर चुके थे। रामसिंहजी के पाँच पुत्रों में से तृतीय पुत्र जालिमसिंहजी को सं० १६१८ में महाराणा साहब शंभुसिंहजी ने उदयपुर बुलाया और जिला हाकिम बनाया। कोठारी केशरीसिंहजी का इनके साथ विशेष स्नेह रहा। इनके विषय में रायबहादुर गौरीशंकरजी ओझा उदयपुर राज्य के इतिहास में लिखते हैं कि "विक्रम सं० १६२५ में वह (महता जालिमसिंह) छोटी सादड़ी का हाकिम हुआ और तीन साल तक उस पद पर रहा पर तनख्वाह कभी न ली। जब प्रधान कोठारी केशरीसिंह ने उक्त जिले के आय-व्यय के हिसाब की जाँच की, तब उसने उसकी कारगुजारी से प्रसन्न हो उसके भोजन खर्च के लिये प्रति दिन तीन रुपये दिये जाने की व्यवस्था करा दी और तीनों सालों का वेतन भी दिला दिया।" इनके कार्यों से प्रसन्न हो बरोडा नामी गाँव भी श्रीजी हुजूर ने इन्हें जागीर में बख्शा। इनका देहान्त सं० १६३६ में हो गया। इनके तीन पुत्र हुए। ज्येष्ठ अक्षयसिंहजी, द्वितीय केशरीसिंहजी, और तृतीय उम्मेदसिंहजी।

उम्मेदसिंहजी कपासन चित्तौड़ इत्यादि कई एक जिलों पर वर्षों तक हाकिम रहे। कोठारीजी के साथ इनका विशेष प्रेम रहा। ये जहाँ कहीं भी हाकिम रहे, कोठारीजी इनसे मिलने उसी ज़िले में जाया करते थे। उम्मेदसिंहजी की बीमारी आदि कई अवसरों पर भी कोठारीजी का इनसे विशेष संपर्क रहा और समय-समय पर पूर्ण प्रेम एवं मित्रता का व्यवहार प्रदर्शित करते रहे। कुछ वर्ष पूर्व उम्मेदसिंहजी का देहान्त हो गया। ये मिलनसार, मुन्तज़िम और अनुभवी पुरुष थे। इनके ज्येष्ठपुत्र शिवनाथसिंहजी का भी मध्य आयु में ही देहान्त हो गया और इस समय इनके छोटे पुत्र सज्जनसिंहजी हैं, जो मुनसरिम हैं। इनके दो पुत्र हैं, जिनके नाम प्रतापसिंहजी और रणजीतसिंहजी हैं।

इधर महता अक्षयसिंहजी कई वर्षों तक जिलों पर हाकिम रहे। इनके दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ का नाम जीवनसिंहजी और कनिष्ठ का अमरनसिंहजी है। जीवनसिंहजी ने

प्रारंभ में रावली दुकान में कोठारीजी के पास काम किया। फिर कई जिलों के हाकिम रहे और इस समय राज-श्री महद्राजसभा के सदस्य हैं। ये वृद्ध, अनुभवी, मिलनसार, मधुरभाषी एवं हमदर्द सज्जन हैं। मेदपाटेश्वरों की इनके घराने पर पूर्ण कृपा रही और स्वर्ण, जीकारा आदि सम्मान भी इन्हें अता फरमाये हैं। इनके छोटे भाई जसवंतसिंहजी को केशरीसिंहजी के पुत्र न होने से गोद रखवा दिया है, जो इस समय राजनगर जिले के हाकिम हैं। जीवनसिंहजी एवं इनके पूर्वजों का भी कोठारीजी के घराने के साथ सदा सद्व्यवहार रहा है। जीवनसिंहजी के ज्येष्टपुत्र तेजसिंहजी महता एक योग्य पुरुष हैं। वर्तमान मेदपाटेश्वरों की सेवा में वर्षों तक प्राइवेट सेक्रेटरी का कार्य इन्होंने सफलतापूर्वक संचालित किया और सं० १९९२ के वर्ष में इनकी मंत्री के पद पर नियुक्ति हुई है। तेजसिंहजी स्वामिभक्त, परिश्रमी और राज्य के हितैषी सेवक हैं। कृतज्ञता के भाव भी इनमें पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। वर्तमान मेदपाटेश्वरों की इन पर वहुत कृपा रही और इन्हें जागीरी, सोना, ताज़ीम इत्यादि उच्च सम्मान अता फरमाये हैं। कोठारीजी के प्रति इन्होंने नित्य आदर की एवं उच्च दृष्टि रक्खी है। सं० १९८४ के वर्ष कोठारीजी को कर्ज की ज़रूरत हुई, तव भी वर्तमान महाराणा साहव की सेवा में इन्हीं की मारफत अर्ज़ी नजर कराई। उस पर श्री जी हुजूर ने खावंदी फरमा विना व्याज कर्ज़ वख्शाया। इनके छोटे भाई मोहनसिंहजी ने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। यहाँ वर्षों तक ये महक्मा माल के हाकिम रहे और इस समय वाँसवाड़े के दीवान हैं। स्काउट आश्रम एवं विद्याभवन की स्थापना इन्हीं के उद्योग का फल है। मोहनसिंहजी विद्याप्रेमी, चतुर और सरलस्वभावी पुरुष हैं। कोठारीजी प्राचीन सभ्यता, रीति, रिवाज आदि के पूर्ण समर्थक थे। इनके और मोहनसिंहजी के विचारों में वहुत मतभेद था। किन्तु कोठारीजी के चरित्रगठन, चरित्रवल, स्पष्टवादिता और स्थिर उद्देश्य एवं दृढ़ विचार होने की समय समय पर इन्होंने भी खुले दिलों प्रशंसा की है। मनुष्य की धर्मदृढ़ता और चरित्रवल में वह शक्ति है कि वह अपने से भिन्न आचार, भिन्न विचार एवं भिन्न उद्देश्य के पुरुष से भी प्रशंसा कराये विना नहीं रह सकती। इनके छोटे भाई चन्द्रसिंहजी हैं, जो असिस्टेन्ट ट्राफ़िक सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं।

शुद्धिपत्र

लेखक के दो शब्द

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१२	स्वामिसवा	स्वामिसेवा
३	१०	आमा न	आमा ने
३	१९	गुरजा	गुरजी

जीवनचरित्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२१	खडवा	खडव
४	१७ टी०	विरुद्ध	बखिलाफ
५	२१ टी०	एकत्रित	एकट्ठा
५	२७ टी०	स्थान पर	एवज
६	१ टी०	कोठारीजी	कोठारी
६	१२ टी०	अत में	आख़िरकार
१४	६ टी०	पनालालजस्य	पनालालरा कस्य
१७	५ टी०	खिलअत	खिलअत वगैरह
१७	६ टी०	निममें से	जिनमें से
१७	९ टी०	जल्द	बहुत ही जल्द
१९	१२ टी०	उदयपुर	उदेपुर म
१९	१३ टी०	मदर	बमदुर
२०	५ टी०	उदयपुर	कोठी उदेपुर
२१	२ टी०	चले गये	विलायत को चले गये
२१	५ टी०	कुछ	कुल
२१	५ टी०	कहा	कह दिया
२१	७ टी०	श्यामनाथ	सुन्दरनाथ
२१	१२ टी०	रेजीडेन्ट	रेजीडेन्सी
२१	१३ टी०	महलों से	महलों में
२१	१३ टी०	फैलाकर	फैला अक्सर
२२	३ टी०	लोगों	अक्सर लोगों
२४	२३	महाराज	करणार्थी के महाराज

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४	२३	घाय	धाय
२४	२६	गवर्नर	गवर्नर जनरल
२५	३	लायक	विराजमानलायक
२५	१०	जवानी	कुछ जवानी
२५	१०	कर्नल हर्चीसन	फिर करनल हिचनसन
२५	२१	कुछ	कुछ २
२५	२२	कोशिश	बहुत कोशिश
२५	२२	लिखना	हमेसह लिखना
२९	४	ऐश	नशे और ऐश
२९	४	के नशे में	में
२९	१९	खिलाफ	विरुद्ध
२९	२१	तन्देही	बड़ी तन्दिही
३०	२	में	में भी
३१	७	साहब	साहिब भी
३१	७	नवयुवक थे तथा	नई उम्र और
३१	८	कहे अनुसार महाराणा साहिब	कहने पर
३१	९	अधिकारी	लोग
३१	१२	महाराणा साहब	यहाँ महाराणा साहिब
३१	२ टी०	बुर्दबार	अक्लमन्द और बुर्दबार
३१	५ टी०	दिल से	अपने दिल से फौरन
४०	७ टी०	उनके	उसके
४०	७ टी०	लोगों ने	जहाँ तक हो सका लोगों ने
४१	७ टी०	की तरफ	के सबब
४१	१६ टी०	सरकार	सर्दार
४१	२६ टी०	भूतन को	भूत्तिन को
४२	१ टी०	हडताल	हटनाल
४२	२ टी०	महिपाल ही	महिपालहि
४२	३ टी०	केहरीसिंह	केहरिसिंह
४२	८ टी०	क्लिन	क्षीन
४२	१० टी०	यह	यहै
५२	२३	डुलना	ढुलना
५८	३	एवज	एवज
८१	३०	कोठारीजी को ही	कोठारीजी को भी
८३	२	वाल्टर राजपूत	वाल्टरकृत राजपुत्र
९२	१७	समीर	समोर
१०९	१७	काल्हसलजी	काल्हलालजी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११४	३	१९०३	१९०४
१२४	१८	१९८७	१९८१
१२४	२२	उपदेश किया	उपदेश दिया जिसका आशय था
१२७	२५	मींगा	मींढा
१३२	१७	मेवे की	मेवे के
१५१	१६	बिमारीह	बीमारीह
१५१	१६	निबल पणो	निरबलपणो
१५४	२८	रुणावस्था	करुणावस्था
१५८	६	पालक	पोपक
२०१	११	वजीरद्दौला	वजीरद्दौला
२१८	१	इनक	इनका